कृषि चेतना

अंक-4 2021

भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान

लुधियाना-141004

वार्षिक पत्रिका

अंकः 4 वर्षः 2021

कृषि चेतना

भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान

लुधियाना 141004

संपादक मण्डल:
बी.एस. जाट
प्रदीप कुमार
ममता गुप्ता
भारत भूषण
मनेश चन्द्र डागला

प्रकाशक:
निदेशक
भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान
पी.ए.यू. परिसर, लुधियाना-141004
दूरभाष: 0161-2440047
फैक्स: 0161-2430038
ई-मेल: pdmaize@gmail.com
वैबसाइट: iimr.icar.gov.in

नोट: इस पत्रिका में प्रकाशित सभी लेख, रचनायें तथा उनमें व्यक्त विचार एवं चित्र लेखकों के निज़ी हैं, संपादक अथवा प्रकाशक इसमें प्रकाशित किसी भी विचार अथवा चित्र के लिए उत्तदरायी नहीं हैं।

आवरण पृष्ठ पर दिए गए चित्रों का योगदान :
डॉ. भूपेन्द्र कुमार, डॉ. प्रदीप कुमार एवं डॉ. बी.एस. जाट

मुद्रक:
प्रिंटिंग सर्विस कंपनी
मॉडल टाऊन, लुधियाना- 141001
दूरभाष: 0161-2410896, 09888021624
ई-मेल: decentpublish@gmail.com

निदेशक की कलम से ...

प्रिय साथियों,

भारतीय जनसंख्या का मुख्य व्यवसाय, आय स्रोत और आजीविका कृषि है। इसके साथ–साथ यह राष्ट्र के पोषण के लिए भी उत्तरदायी है। वर्तमान समय में भारतीय कृषि विदेशी व्यापार में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। भा.कृ.अनु.प.– भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, भारत में मक्का अनुसंधान का एक नोडल संस्थान है। जलवायु परिवर्तन के चलते फसल विविधीकरण और कृषि स्थिरता के लिए मक्का में उच्च क्षमता है। यह उन कुछ फसलों में से एक है जो खाद्य, सब्जी, चारा, और उद्योगों में व्यापक रूप से उपयोग में आती है। खाद्य और उद्योग के विभिन्न क्षेत्रों में बढ़ती मांग को पूरा करने के मकसद से पर्याप्त उत्पादन को सुनिश्चित करने के लिए संस्थान वर्तमान चुनौतियों के लिए कार्यरत है। इसके अलावा, लोगों की भोजन की आदतों में मक्का को शुमार करने के लिए, विशेष प्रौद्योगिकी पर काम किया जा रहा है है। दुग्ध उद्योग को बढ़ावा देने के लिए चारा मक्का फसल के अनुसंधान पर जोर दिया जा रहा है। किसानों को मक्का आधारित फसल प्रणालियों की ओर रुख करने और एक ही समय में पर्यावरणीय स्थिरता में योगदान करने के लिए प्रोत्साहित संरक्षण कृषि मॉड्यूल विकसित किए जा रहे हैं। मक्का में कुशल पोषक तत्व प्रबंधन हेतु नवीन तकनीकों का विकास किया जा रहा है। आर्थिक रूप से सक्षम एकल फसली एवं अन्तर फसली प्रणाली में मक्का को शामिल करने के लिए प्रयास भी किए जा रहे हैं। बदलती जलवायु के तहत, जैविक और अजैविक दोनों प्रकार के तनावों के प्रबंधन के लिए प्रजनन सामग्री के आनुवंशिक आधार को व्यापक बनाकर उन्नत संकर विकसित करने के साथ बेहतर उत्पादन तकनीकों को विकसित करने का निंरतर प्रयास किया जा रहा है ।

मुझे हमारे संस्थान की हिंदी पत्रिका ''कृषि चेतना'' के चौथे अंक को प्रस्तुत करने में प्रसन्नता महसूस हो रही है। भारतीय किसान प्रायतः अंग्रेजी भाषा में लिखित एवं प्रकाशित अनुसंधान आलेखों को समझने में सक्षम नहीं है। जबकि हमारे देश में कृषि का समृद्ध ज्ञान संसाधन अंग्रेजी भाषा में उपलब्ध हैं। चूंकि किसान अग्रेजी भाषा के कारण मौजूदा ज्ञान संसाधनों का उपयोग करने में सक्षम नहीं हैं, इसलिए इस समस्या को

हल करने के लिए तथा ज्ञान के प्रचार–पसार में हिंदी भाषा को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। इसलिए, भारतीय किसानों को कृषि अनुसंधान, विकसित नवीन तकनीकियों और अन्य गतिविधियों से अवगत कराने के लिए इस ज्ञान का हिंदी भाषा में उपलब्ध करवाना बहुत आवश्यक है। इस दृष्टि से, हमारे संस्थान की हिंदी पत्रिका ''कृषि चेतना'' किसानों के साथ अधिक कुशलता से संवाद करने की एक पहल है। पत्रिका के इस अंक में विभिन्न फसलों के उत्पादन की आधुनिक तकनीकों, जैव प्रौद्योगिकी की भूमिका, तकनीकी ज्ञान, फसलों में बीमारियों एवं कीटों का प्रबंधन, मृदा एवं जल संरक्षण, सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का महत्व, कृषि क्षेत्र का भारत की अर्थव्यवस्था में योगदान देने एवं किसानों को आत्मनिर्भर बनाने आदि से सम्बधित लेख शामिल हैं। मैं इस अंक के संकलन में समर्पण एवं सक्रिय भागीदारी के लिए संपादकीय मंडल को धन्यवाद देता हूँ। मुझे उम्मीद है कि हमारे संस्थान के इस प्रयास से हमारे किसानों के ज्ञान में वृद्धि होगी और देश के विकास में किसान महत्वपूर्ण योगदान देगा।

आपका

सुजय रक्षित

अनुक्रमणिका

क्रम संख्या	विवरण	पृष्ठ संख्या
	निदेशक की कलम से	i
1.	किसानों की आय वृद्धि एवं पोषण सुरक्षा में संकर मक्का की भूमिका – कामिनी सिंह, लाल सिंह गंगवार, ब्रह्म प्रकाश, ओम प्रकाश, सुमन्त प्रताप सिंह, पल्लवी यादव एवं अश्विनी दत्त पाठक	1–3
2.	जैव संवर्धित मक्का–कुपोषण को कम करने के लिए विज्ञान का एक पौष्टिक आशीर्वाद – प्रियजोय कर, सीमा श्योराण, दिव्यता जोशी, रोमन शर्मा एवं बी.एस.जाट	4–6
3.	मक्का के आयुर्वेदिक एवं औषधीय उपयोग – श्याम बीर सिंह, आकांक्षा पांडेय एवं विवेक कुमार सिंह	7–9
4.	खाद्य एवं पोषण सुरक्षा में कटाई उपरांत प्रौद्योगिकी की भूमिका – भारत भूषण, मनेश चंद्र डागला, बहादुर सिंह जाट, सुमित कुमार अग्रवाल, सुधीर कुमार एवं प्रदीप कुमार	10–11
5.	मक्का में मूल्यवर्धन – सीमा श्योराण एवं प्रियाजोय कर	12–14
6.	नई तकनीक एवं उन्नतशील बीजो का प्रयोग कर मक्का की खेती से कमाएं ज्यादा मुनाफा – सुमन्त प्रताप सिंह, प्रबल प्रताप सिंह एवं कामिनी सिंह	15–18
7.	गन्ने के साथ मक्का की सह–फसली/अन्तः फसली खेती से कमाएं भरपूर मुनाफा – ओम प्रकाश, ब्रह्म प्रकाश, पल्लवी यादव एवं कामिनी सिंह	19–22
8.	मध्य प्रदेश में मक्का/लोबिया/मक्का+लोबिया–आलू फसल चक्र में पोषक तत्व प्रबन्धन – शिव प्रताप सिंह, कल्पना शर्मा, संजय कुमार शर्मा, मुरलीधर ज सदावर्ती, सुभाष कटारे, वी के दुआ, संजय रावल, श्याम कुमार गुप्ता एवं वाई पी सिंह	23–29
9.	साईलेजः पशुओं के लिए चारा और फीड सुरक्षा हेतु बेहतर विकल्प – प्रदीप कुमार, बी.एस. जाट, भारत भूषण, सुमित कुमार अग्रवाल, सुधीर कुमार, मनेश चन्द्र डांगला एवं मुकेश चौधरी	30–34
10.	एफ्लाटॉक्सिन–इसके हानिकारक प्रभाव और मक्का – श्रावनी देबनाथ एवं सोनाली बिस्वास	35–40
11.	टर्सिकम पर्ण झुलसा (टीएलबी): वर्तमान स्थिति एवं स्थायी प्रबंधन रणनीतियां – जीवन बी, राज शेखरा एच, देवेन्द्र शर्मा, चंदन महाराना एवं के. के. मिश्रा	41–42
12.	आत्मनिर्भरता के पथ पर अग्रसर भारतीय किसान – डॉ. संतराम यादव	43–47
13.	आत्मनिर्भर भारत में कृषि क्षेत्र का योगदान – मिथिलेश तिवारी, प्रियंका सिंह, दिलीप कुमार एवं अखिलेश कुमार सिंह	48–49

14. मृदा और जल संरक्षण : कृषि उत्पादन के लिये चुनौती 50–54
– पवन कुमार, आनंद कुमार गुप्ता, मनोज कुमार, दिनेश कुमार, दिनेश कुमार जीनगर, सास्वत कुमार कर, सादिकुल इसलाम एवं अक्षय धीरज

15. राष्ट्रीय कृषि बाजार (ई–नाम) 55–56
– दिव्यता जोशी, अंजली चुनेरा और प्रियजोय कर

16. कृषि उत्पादकता बढ़ाने में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी की भूमिका 57–63
– संगीता श्रीवास्तव एवं राघवेन्द्र कुमार

17. विश्व में ट्रांसजेनिक फसलों की स्थिति 64–66
– कृष्ण कुमार, पूजा शर्मा, अभिषेक झा, भूपेंद्र कुमार, प्रांजल यादव एवं सुजय रक्षित

18. सौर ऊर्जा द्वारा पशु आहार उबालने के लिए नॉन–ट्रेकिंग सौर चूल्हे की डिजाइन, विकास और प्रदर्शन मूल्यांकन 67–72
– सुरेन्द्र पुनियाँ, ए.के. सिंह एवं दिलीप जैन

19. चुकंदर में जैव सूचना तकनीक से जैविक ऊर्जा एवं औद्योगिक उपयोगिता की संभावनाएँ 73–78
– राघवेन्द्र कुमार, संगीता श्रीवास्तव, मीर आसिफ इकवाल, सारिका जयसवाल एवं दिनेश कुमार

20. चुकंदर के बीजोत्पादन की तकनीकी 79–81
– धर्मेद्र कुमार

21. चुकंदर : एक बहू–उपयोगी फसल 82–83
– संतेश्वरी, वरूचा मिश्रा, धर्मेद्र कुमार एवं आशुतोष कुमार मल्ल

22. पौष्टिक हरे चारे के लिए जई की खेती 84–86
– डा. उत्तम कुमार

23. जीरे की खेती : मुख्य रोग एवं प्रबंधन 87–89
– मंजु कुमारी, महेश कुमार पूनियाँ एवं शक्ति सिहं भाटी

24. चने की उन्नत खेती के लिए जरूरी नुक्से 90–93
– सतपाल सिंह

25. उन्नत तकनीकों द्वारा अमरूद से उच्च गुणवत्तायुक्त उत्पादन एवं अधिक आमदनी प्राप्त करें 94–98
– नरेश बाबू, तरूण, सुभाष एवं अरविंद कुमार

26. जैविक खेती का समगतिशील खेती/टिकाऊ खेती/ सस्टेनेबल एग्रीकल्चर में महत्व एवं प्रोत्साहन 99–102
– सतीश कुमार सिंह, मनीष बी. पटेल, कानुभाई एच. पटेल एवं पिनाकिन के. परमार

किसानों की आय वृद्धि एवं पोषण सुरक्षा में संकर मक्का की भूमिका

कामिनी सिंह[1], लाल सिंह गंगवार[1] ब्रह्म प्रकाश[1], ओम प्रकाश[1], सुमन्त प्रताप सिंह[2], पल्लवी यादव[3] एवं अश्विनी दत्त पाठक[1]

[1]भा.कृ.अनु.प – भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ, उत्तर प्रदेश
[2]नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उत्तर प्रदेश
[3]चन्द्र भानु गुप्ता कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बख्शी का तालाब, लखनऊ, उत्तर प्रदेश
संवादी लेखक का ई–मेलः kaminipkv@gmail-com

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत खाद्यान्नों तथा अन्य कृषि उत्पादों की भारी कमी से जूझ रहा था। वर्ष 1947 में देश की जनसंख्या लगभग 30 करोड़ थी जो कि वर्तमान की जनसंख्या का लगभग एक–चौथाई है लेकिन खाद्यान्न उत्पादन कम होने के कारण उतने लोगों तक भी अनाज की आपूर्ति करना असंभव था। गेहूँ और धान की औसत पैदावार 800 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर के आसपास थी। रासायनिक उर्वरकों का उपयोग अधिकतर रोपण फसलों में किया जाता था। खाद्यान्न फसलों में किसान गोबर से बनी खाद का ही उपयोग करते थे। पहली दो पंचवर्षीय योजनाओं (1950–60) में सिंचित क्षेत्र के विस्तार व उर्वरकों के उत्पादन बढ़ाने पर जोर दिया गया लेकिन इन सबके बावजूद खाद्यान्न संकट का कोई स्थायी समाधान नहीं निकल सका। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से ही वैश्विक स्तर पर अनाज व कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिये शोध किये जा रहे थे तथा अनेक वैज्ञानिकों द्वारा इस क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया जा रहा था। इसमें प्रोफेसर नार्मन बोरलाग प्रमुख थे जिन्होंने गेहूँ की बौनी किस्मों का विकास किया था, जबकि भारत में हरित क्रांति का जनक डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन को माना जाता है। भारत में, मक्का पर क्रमबद्ध अनुसंधान का प्रारम्भ वर्ष 1957 में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना (मक्का) से ही किया गया। यह भारत में किसी भी फसल पर आरंभ की गई पहली अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना थी। वर्ष 1960 के मध्य में भारत में खाद्यान्न समस्या की स्थिति अत्यंत दयनीय हो जाने के कारण जब पूरे देश में अकाल की स्थिति बनने लगी। ऐसी परिस्थितियों में भारत सरकार ने विदेशों से विभिन्न फसलों के संकर बीज मंगाए। अपनी उच्च उत्पादकता के कारण इन बीजों को उच्च उत्पादक किस्में कहा जाता था। सर्वप्रथम उच्च उत्पादकता किस्मों को वर्ष 1960–63 के दौरान देश के 7 राज्यों के 7 चयनित जिलों में प्रयोग किया गया और इसे गहन कृषि जिला कार्यक्रम नाम दिया गया। यह प्रयोग सफल रहा तथा वर्ष 1966–67 में भारत में हरित क्रांति को औपचारिक तौर पर अपनाया गया। मुख्य तौर पर हरित क्रांति देश में कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिये लागू की गई अत्यंत सफल नीति थी। इसके अंतर्गत अनाज उगाने के लिये प्रयुक्त पारंपरिक बीजों के स्थान पर उन्नत किस्म के बीजों के प्रयोग को बढ़ावा दिया गया। पारंपरिक बीजों के स्थान पर उच्च उत्पादक किस्मों के प्रयोग में सिंचाई के लिए अधिक पानी, उर्वरक, कीटनाशक की आवश्यकता होती थी। अतः सरकार ने इनकी आपूर्ति हेतु सिंचाई योजनाओं का विस्तार किया तथा उर्वरकों आदि पर अनुदान देना प्रारंभ किया। प्रारंभ में उच्च उत्पादक किस्मों का प्रयोग गेहूँ, चावल, ज्वार, बाजरा और मक्का में ही किया गया तथा गैर खाद्यान्न फसलों को इसमें शामिल नहीं किया गया। परिणामस्वरूप भारत में अनाज उत्पादन में अत्यंत वृद्धि हुई।

संकर मक्का की नींव

भारत में गेहूँ और चावल के बाद मक्का तीसरा सबसे ज़्यादा पसंद किया जाने वाला खाद्यान्न है। कर्नाटक, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु और तेलंगाना जैसे भारत के चार राज्य, देश के कुल मक्का उत्पादन में आधे से अधिक (लगभग 55%) का योगदान देते हैं। मक्का उत्पादन में आधुनिक तकनीकियों की अहम भूमिका रही है जिसके फलस्वरूप हाल के वर्षों में मक्का ने उत्पादन वृद्धि और उत्पादकता के मामले में धान एवं गेहूं जैसे मुख्य अनाज को पीछे छोड़ दिया है। आज भारत में बहुतायत में संकर मक्का की बुआई होती है। इनमें कुछ विशेष प्रकार के उत्पाद जैसे स्वीटकॉर्न, पॉपकॉर्न, बेबी कॉर्न और गुणवत्ता प्रोटीन मक्का (क्यूपीएम) शामिल हैं। उत्पादकों को इन उत्पादों की अच्छी कीमतें भी मिलती हैं। आर्थिक लाभ को ध्यान में रखते हुए आने वाले समय में देश में मक्का उत्पादन में और इजाफा हो सकता है। ऐसा अच्छी गुणवत्ता वाले बीज इस्तेमाल करने और अधिक उत्पादन देने एवं कीटों से लडने वाली संकर किस्मों की उपलब्धता से संभव हो

सका है। वर्ष 1950 में अमेरिका की मक्का संकर को भारत में आजमाने की कोशिश की गयी थी किन्तु प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण सफलता नहीं मिल सकी और इसके फलस्वरूप भारतीय जलवायु की परिस्थितियों के अनुकूल अच्छी गुणवत्ता वाले संकर किस्मों के शोध को बढ़ावा मिला। हाल के दिनों में किसानों के बीच में मक्का की एकल संकरण संकर (सिंगल–क्रॉस हाइब्रिड) अत्यंत लोकप्रिय हुई है। ये संकर किस्में न केवल अधिक उत्पादकता वाली हैं, बल्कि ये बीज अपेक्षाकृत सस्ते हैं और इनका उत्पादन भी सरल है। मक्का के कई व्यावसायिक इस्तेमाल भी हैं। कुल मक्का उत्पादन का मात्र 23 प्रतिशत हिस्सा भोजन के तौर पर और शेष मुर्गी के चारे के रूप में, मवेशी एवं मत्स्यपालन या स्टार्च आदि के लिए इस्तेमाल होता है। कुल मक्का उत्पादन का 50 प्रतिशत से अधिक हिस्से का इस्तेमाल मुर्गियों के आहार के रूप में ही किया जाता है। अब मक्का की संकर किस्म उपलब्ध होने से यह क्षेत्र अधिक मात्रा में मक्का का उपभोग कर सकता है, क्योंकि इनमें लाइसिन और मेथिओनेन जैसे अमीनो अम्ल पाए जाते हैं, जो मुर्गियों के लिए अत्यंत लाभकारी होते हैं।

निर्यात बाजार में भी भारतीय मक्का अपना झंडा बुलंद करने में सफल रहा है। वर्ष 2010 से भारत से सालाना 35–50 लाख टन मक्का का निर्यात दक्षिण–पूर्व एशियाई देशों को हो रहा है। स्वीट कॉर्न एंव बेबी कॉर्न के उत्पादन ने यूरोपीय बाजार के द्वार भी खोल दिए हैं। इन फसलों के कटने के साथ ही इनका तत्काल निर्यात करने के लिए निर्यात कंपनियाँ तेजी से आगे आ रही हैं। मिसाल के तौर पर पंजाब के लुधियाना में पैदा होने वाले बेबी कॉर्न (एयरटेल कंपनी द्वारा) कटने के कुछ ही घंटों बाद यूरोप पहुंच जाती है। इन सुविधाओं के विस्तार के साथ विशेष प्रकार के मक्कों का निर्यात आने वाले समय में और अधिक बढ़ेगा।

संकर मक्का के उत्पादन में अनुसंधान संस्थानों का योगदान :

(अ) भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा विकसित संकर

भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली ने संकर मक्का की कई उन्नत किस्में विकसित की हैं जो लाइसिन और ट्रिप्टोफेन जैसे अमीनो अम्लों के साथ–साथ प्रो–विटामिन–ए में भी समृद्ध, जोकि दुनिया का पहला मक्का है। मक्का के दाने में कार्बोहाइड्रेट की मात्रा अधिक (65–75:) और प्रोटीन की मात्रा कम (7–12:) होती है तथा प्रोटीन में आवश्यक अमीनो अम्ल जैसे लाइसिन एवं ट्रिप्टोफेन भी काफी कम मात्रा में होते हैं। लाइसिन एवं ट्रिप्टोफेन आवश्यक अमीनो अम्ल होते हैं जिन्हें शरीर द्वारा संश्लेषित नहीं किया जा सकता है और भोजन के द्वारा ही इनकी आपूर्ति की जानी चाहिये। यद्यपि विटामिन–ए समृद्ध मक्का कुछ अन्य स्थानों पर भी विकसित की जा चुकी है फिर भी ये नए संकर अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि यह न केवल विटामिन–ए बल्कि अन्य दो आवश्यक अमीनो अम्लों से भी समृद्ध है। इस संशोधित मक्का में दो जीन शामिल हैं। पहला, ओपेक–2 जीन जो लाइसिन और ट्रिप्टोफेन की मात्रा को बढ़ाता है तथा दूसरा, सीआरटीआरबी1 जीन, जिसके परिणामस्वरूप कैरोटिनॉएड (बीटा–कैरोटीन, अल्फा–कैरोटीन और बीटा–क्रिप्टोक्सैंथिन) अधिक मात्रा में प्राप्त होते हैं जो कि शरीर में पहुँचकर विटामिन–ए में परिवर्तित हो जाते हैं। यह मक्का भुखमरी से लड़ने में कारगर हथियार सिद्ध हो सकता है। यह व्यापक आबादी को कुपोषण से छुटकारा दिला सकने में सक्षम है। इसके साथ ही यह वैश्विक भूख सूची में भारत की रैंकिंग (2018 में 119 देशों की सूची में भारत 103वें स्थान पर था) में सुधार ला सकता है। इस अनुसंधान द्वारा विकसित मक्का के कुछ उन्नत संकरों का विवरण निम्न प्रकार है।

(1) पूसा विवेक क्यूपीएम 9 उन्नत (संकर)– यह देश की उच्च प्रोविटामिन–ए युक्त संकर मक्का ही पहली किस्म है। उच्च प्रोविटामिन–ए (8.15 पीपीएम), लाइसीन (2.67 प्रतिशत) तथा ट्रिप्टोफैन (0.74 प्रतिशत) जो कि प्रचलित संकर किस्मों {प्रोविटामिन–ए 1.0–2.0 पीपीएम), लाइसिन (1.5–2.0 प्रतिशत) तथा ट्रिप्टोफैन (0.3–0.4 प्रतिशत) की तुलना में अधिक है। इसकी औसतन पैदावार लगभग 55.9 क्विंटल/हेक्टेयर (उत्तरी पहाड़ी क्षेत्र), 59.2 क्विंटल/हेक्टेयर (दक्षिणी प्रायद्वीप क्षेत्र) फसल पकने की अवधि लगभग 93 दिन (उत्तरी पहाड़ी क्षेत्र), 83 दिन (दक्षिणी प्रायद्वीप क्षेत्र) है। खरीफ मौसम में जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड के पहाड़ी क्षेत्र, उत्तर पूर्वी राज्यों, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना तथा तमिलनाडु राज्यों के लिए यह संकर अत्यंत उपयुक्त है।

(2) पूसा एचएम 4 उन्नत (संकर)– इस संकर में ट्रिप्टोफैन 0. 91 प्रतिशत तथा लाइसिन 3.62 प्रतिशत है जो कि प्रचलित संकरों की तुलना में अधिक {ट्रिप्टोफैन (0.3–0.4 प्रतिशत) तथा लाइसिन (1.5–2.0 प्रतिशत)} है। इसकी औसतन पैदावार लगभग 64.5 क्विंटल/हेक्टेयर हैं। फसल पकने की अवधि लगभग 87 दिन है। यह संकर खरीफ मौसम में पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तराखंड (मैदानी क्षेत्र), उत्तर प्रदेश (पश्चिमी क्षेत्र) राज्यों के लिए उपयुक्त है।

(3) पूसा एचएम 8 उन्नत (संकर) – इस किस्म में ट्रिप्टोफैन (1. 06 प्रतिशत) तथा लाइसीन (4.18 प्रतिशत) की प्रचुर मात्रा है जो कि प्रचलित संकर किस्मों की तुलना में ट्रिप्टोफैन (0.3–0.4

प्रतिशत) तथा लाइसिन (1.5–2.0 प्रतिशत)} अधिक है। इसकी औसतन पैदावार 62.6 क्विंटल/हेक्टेयर है। फसल पकने की अवधि लगभग 95 दिन है। खरीफ मौसम में महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना तथा तमिलनाडु राज्यों के लिए उपयुक्त है।

(4) पूसा एचएम 9 उन्नत (संकर)– इस किस्म में ट्रिप्टोफैन 0. 68 प्रतिशत तथा लाइसिन 2.97 प्रतिशत है जो कि प्रचलित संकरों की तुलना में अधिक {ट्रिप्टोफैन (0.3–0.4 प्रतिशत) तथा लाइसीन (1.5–2.0 प्रतिशत)} है । इसकी औसतन पैदावार 52.0 क्विंटलध्हैक्टर है। फसल पकने की अवधि लगभग 89 दिन है। यह संकर खरीफ मौसम में बिहार, झारखंड, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश (पूर्वी क्षेत्र) तथा पश्चिम बंगाल राज्यों के लिए उपयुक्त है।

(ब) भाकृअनुप–भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना, पंजाब के द्वारा डीएमआरएच 1301, डीएमआरएच 1308, डीएमआरएच 1305, आईएमएचबी 1532, आईएमएचबी 1539 डीएमआरएचपी 1402, आईएमएचक्यूपीएम 1530, आईक्यूपीएमएच 1601, आईक्यूपीएमएच 1705, आईएमएचपी 1540 और आईएमएचपी 1535 आदि संकर मक्का की अनेक उच्च गुणवत्ता पूर्ण किस्में विकसित की गई हैं। इस संस्थान द्वारा 'मक्का 'नामक एक द्विभाषी मोबाइल ऐप लॉन्च किया गया हैं। इस ऐप (अंग्रेजी और हिंदी) में वीडियो, फसल के चयन, कीट और उर्वरक समाधान, उर्वरक / कीटनाशक गणना, फसल की खेती के तरीके, मशीनीकरण, समाचार / अपडेट और किसानों को सलाह जैसी अनेक विशेषताएं हैं। यह संस्थान द्वारा भाकृअनुप–पूर्वोत्तर पर्वतीय क्षेत्र परिसर, उमियाम, मेघालय के साथ मिलकर 'पूर्वोत्तर क्षेत्र में मक्का उत्पादन की उन्नत प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देना' नामक एक परियोजना की शुरूआत की गयी हैं ताकि इन क्षेत्रों में बेहतर मक्का उत्पादन प्रौद्योगिकियों को विकसित किया जा सके।

(स) भाकृअनुपदृ विवेकानंद पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा (उत्तराखंड) द्वारा विकसित संकर

भाकृअनुपदृ विवेकानंद पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा (उत्तराखंड) ने खेती की उन्नत विधियों के साथ अनेक प्रकार की संकर किस्में विकसित की हैं। इनमें से विवेक मेज हाइब्रिड 45 एक अगेती पकने वाली (85–90 दिन) तथा उच्च उत्पादन क्षमता वाली (50–55 क्विंटलध्हैक्टर) किस्म है जो टर्सिकम तथा मेडिस पत्ती झुलसा की सहिष्णु हैं। यह संकर जम्मू व कश्मीर, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड में उगाए जाने के लिए वर्ष 2013 में केन्द्रीय किस्म विमोचन समिति द्वारा जारी की गयी थी। इसके पौधे की ऊंचाई 200–205 सें.मी. होती है जिसमें लंबे बेलनाकार भुट्टे लगते हैं जिन पर श्रेष्ठ छिलका ढका होता है। इस किस्म के दाने भारी (1000 दानों का औसत भार 335 ग्रा.), पीले रंग के व बनावट में अर्ध पिचके होते हैं। इसमें 'हरे बने रहने का गुण' है जिससे इस किस्म का पौधा पके हुए भुट्टे तोड़ने के पश्चात् हरे चारे के रूप में उपयोग में लाए जाने की दृष्टि से उपयुक्त है।

(द) चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार द्वारा विकसित संकर

चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार ने मक्का की नई संकर विकसित की है। यह नई संकर न केवल रूप रंग बल्कि, स्वाद और दूसरे गुणों में भी विदेशी मक्का जैसी है। चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय के क्षेत्रीय अनुसंधान केंद्र, उझानी (करनाल) में यह किस्म विकसित की गई तैयार की गई है। इसे मंजूरी के लिए राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद और राज्य स्तर पर राज्य किस्मीय विमोचन समिति को भेजा गया। मंजूरी के बाद किसानों को उत्पादन के लिए बीज दिया जाएगा। यह संकर किसानों के लिए आय का नया स्त्रोत बनेगी। फिलहाल पॉपकॉर्न के लिए अधिकतर मक्का आयात किया जाता है। पॉपकॉर्न के लिए अब अमेरिका से मक्का नहीं खरीदना होगा। यह संकर पॉपकॉर्न के लिए अत्यंत उपयुक्त है। इसकी गुणवत्ता को और बेहतर बनाने के प्रयास भी किए जा रहे हैं। इससे पहले विश्वविद्यालय 11 किस्में विकसित कर चुका है। जिन में बेबी कॉर्न और स्वीट कॉर्न की किस्में मुख्य हैं।

मक्का के अन्य प्रमुख संकर

धान्या हाइब्रिड मक्का (डीएमएच 8255)– इसकी बुआई सम्पूर्ण वर्ष पर्यत्त कभी भी की जा सकती हैं। इस फसल की अवधि लगभग 115 – 120 दिन हैं। इसकी गुणवत्ता, उत्कृष्ट ओज, और हरा रहना (चारे के उद्देश्य से इस्तेमाल किया जा सकता है) है।

धान्या हाइब्रिड मक्का (एमएम 1107)– इस संकर की बुआई का समय खरीफ/रबी हैं। इस फसल की अवधि लगभग 105–110 दिन हैं। यह बेहतर गुणवत्ता वाली उपज और अच्छी भंडारण क्षमता वाली संकर हैं।

सिन्जेंटा एनके 6240 हाइब्रिड मक्का– यह संकर खरीफ/रबी बुआई के लिए उपयुक्त हैं। इसकी गुणवत्ता व्यापक अनुकूलनशीलता हैं।

सिन्जेंटा एनके 30 हाइब्रिड मक्का– यह संकर खरीफ बुआई के लिए उपयुक्त है। इस फसल की पकने की अवधि लगभग 80–90 दिन हैं। उष्णकटिबंधीय वर्षा, उच्च तनाव/ सूखा जैसी प्रतिकूल परिस्थितियों के लिए यह संकर अत्यंत उपयुक्त है।

जैव संवर्धित मक्का – कुपोषण को कम करने के लिए विज्ञान का एक पौष्टिक आशीर्वाद

प्रियजोय कर[1], सीमा श्योराण[1], दिव्यता जोशी[2],रोमन शर्मा[1] एवं बी.एस.जाट[1]

[1]भा.कृ.अनु.प. – भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना, पंजाब

[2]पंजाब कृषि विश्वविद्यालय , लुधियाना, पंजाब

संवादी लेखक का ई–मेलः priyajoy.kar@icar.gov.in

मक्का (Zea mays L-) दुनिया भर के मनुष्यों और जानवरों के लिए पोषक तत्व प्रदान करने वाला एक महत्वपूर्ण अनाज है। इसके अलावा, यह स्टार्च, तेल, प्रोटीन अल्कोहल पेय, खाद्य मिठास और, हाल ही में, ईंधन के उत्पादन के लिए एक बुनियादी कच्चा माल है। विकासशील देशों के 230 मिलियन निवासियों के आहार में मक्का कैलोरी का एक प्रमुख स्रोत है। मक्का का उपयोग पशु चारा और औद्योगिक उपयोग के लिए कच्चे माल के रूप में भी किया जाता है। विकसित देशों में, अनाज का एक बड़ा हिस्सा पशुओं को खिलाने के रूप में तथा खाद्य और गैर–खाद्य उपयोग के लिए औद्योगिक कच्चे माल के रूप में उपयोग किया जाता है। दूसरी ओर, विकासशील देशों में उत्पादित मक्का का उपयोग मानव भोजन के रूप में किया जाता है, हालांकि पशु आहार के रूप में भी इसका उपयोग बढ़ रहा है।

पिछले चार दशकों में मक्का उत्पादन में सुधार के साथ–साथ उत्पादकता में भी महत्वपूर्ण विकास हुआ है, जिसके परिणामस्वरूप कई विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में प्रति व्यक्ति उपलब्धता बढ़ी है। अनाज आधारित आहार पर निर्भरता से विकासशील देशों में पोषण संबंधी कमियों में बढ़ोतरी होगी, जहां पशु उत्पाद या तो महंगे हैं या अपर्याप्त हैं। इसलिए मक्का जैसे मुख्य अनाज के पोषण गुणों में सुधार पर ध्यान देना अत्यावश्यक है, जिसका सब–सहारा अफ्रीका, लैटिन अमेरिका और दक्षिण एशिया के कई हिस्सों में बड़े पैमाने पर मानव भोजन के रूप में सेवन किया जाता है।

वैचारिक प्रस्तावनाः– 'जैव संवर्धन' सूक्ष्म पोषक तत्वों के घनत्व को बढ़ाने के लिए खाद्य फसलों का प्रजनन है। ग्राहम और सहकर्मियों (2001) ने सुझाव दिया कि अनाजों की व्यापक खपत के कारण, जैव संवर्धन सूक्ष्म पोषक तत्वों के कुपोषण को कम करने का एक प्रभावी और टिकाऊ तरीका हो सकता है। जैव संवर्धित फसलों के संबंध में एक महत्वपूर्ण लाभ यह है कि आवर्ती लागत कम है, जिसका लाभ दुनिया भर के सभी विकासशील देशों को मिल सकता है। क्वालिटी प्रोटीन मक्का (फच्ड) एक उत्कृष्ट तकनीकी है जिसमें सामान्य मक्का के रूप में लाइसिन और ट्रिप्टोफैन की मात्रा दोगुनी होती है।

बायो–फोर्टिफिकेशन गरीबों को मिल रहे खाद्य पदार्थों के पोषक तत्वों में सुधार कर सकता है जो गरीबों तक अधिक सूक्ष्म पोषक तत्व पहुंचाने के लिए तुलनात्मक रूप से सस्ता, लागत प्रभावी एवं दीर्घकालिक साधन प्रदान करता है। यह दृष्टिकोण न केवल गंभीर रूप से कुपोषित लोगों की संख्या को कम करेगा जिन्हें उपचार की आवश्यकता होती है, बल्कि उन्हें बेहतर पोषण की स्थिति बनाए रखने में भी मदद मिलेगी। इसके अलावा, जैव संवर्धन कुपोषित ग्रामीण आबादी तक पहुंचने का एक व्यावहारिक साधन प्रदान करता है जिनकी वाणिज्यिक रूप से विपणन किए गए संवर्धित खाद्य पदार्थों और पूरक आहार तक पहुंच सीमित होती है।

क्वालिटी प्रोटीन मक्का (फच्ड): क्वालिटी प्रोटीन मक्का पोषक रूप से बेहतर अनाज है जिसमें लाइसिन और ट्रिप्टोफेन एमिनो एसिड की मात्रा सामान्य मक्का से ज्यादा होती है। क्यूपीएम में, ओपेक–2 (वचुंनम–2) उत्परिवर्ती जीन प्रोटीन अंश के संश्लेषण को कम करता है, इस प्रकार लाइसिन और ट्रिप्टोफैन मात्रा को बढ़ाता है। सामान्य मक्का की तुलना में, फच्ड में क्रमशः 44% और 33% अधिक लाइसिन, और ट्रिप्टोफैन होता है। इसके अलावा ल्यूसीन की मात्रा कम होने के कारण नियासिन की उपलब्धता भी सामान्य मक्का की तुलना में अधिक होती है।

मानव में परीक्षणों से पता चला है कि कुपोषण से ग्रस्त क्षेत्रों में क्यूपीएम आधारित आहार की उपलब्धता से बच्चों में प्रोटीन की कमी दूर हुई है। एक वयस्क की दैनिक प्रोटीन की आवश्यकता को पूरा करने के लिए सामान्य मक्का की तुलना में, फच्ड की 40: कम

मात्रा की आवश्यकता होती है। अतः फच्ड आधारित आहार निम्न सामाजिक–आर्थिक वर्ग के बच्चों में प्रोटीन कुपोषण को कम करने के लिए एक बेहतर विकल्प है। अपने उच्च ऊर्जा घनत्व, कम फाइबर सामग्री और अधिक स्वादिष्टता के कारण मक्का पोल्ट्री फीड के लिए सबसे पसंदीदा अनाज है और पोल्ट्री फीड फॉर्मूलेशन में क्यूपीएम को शामिल करने से लाइसिन और ट्रिप्टोफैन की कमी को पूरा करने के लिए महंगे अमीनो अम्ल सप्लीमेंट की आवश्यकता समाप्त हो जाएगी ।

हाई–लाइसिन मक्काः मक्का के दानों में लाइसिन की मात्रा बढ़ाने के लिए जेनेटिक इंजीनियरिंग के प्रयासों को लक्षित किया गया है। बीज में लाइसिन की मात्रा में वृद्धि लाइसिन उपचय और लाइसिन अपचय की इंजीनियरिंग के माध्यम से हासिल की है। हालाँकि बड़े पैमाने पर अपनाने के लिए सामाजिक स्वीकृति और जैव–सुरक्षा के मुद्दे जैसी बाधाएं शामिल हैं।

उच्च प्रो–विटामिन ए मक्का : कालानुक्रमिक भूख से प्रभावित देशों में विटामिन की कमी के कारण कई विकारों जैसेय क्षीण आयरन मोबिलाइजेशन, सामान्य विकास में रुकावट, अंधापन, निराशाजनक प्रतिरक्षा प्रतिक्रियाएं, संक्रमण के लिए संवेदनशीलता का बढ़ना और बचपन में मृत्यु दर में वृद्धि आदि होने की संभावनाएं बढ़ जाती हैं। मक्का उप–सहारा अफ्रीका और लैटिन अमेरिका जैसे क्षेत्रों में प्रमुख प्रधान भोजन है जहां पर विटामिन ए की कमी के लक्षण प्रचुर मात्रा में होते हैं। बड़ी चुनौती, यह सुनिश्चित करना है कि नई जैव संवर्धित किस्में बीज उत्पादन, खाद्य प्रसंस्करण गुणवत्ता, स्वाद और अन्य विशेषताओं सहित सभी महत्वपूर्ण लक्षणों

जैव संवर्धित मक्का की विभिन्न किस्में,उपज एवं उनका अनुकूलन क्षेत्र

फसल की किस्म	अनुकूलन का क्षेत्र	औसत उपज (टन/ हेक्टेयर)	मौसम
शक्तिमान –5 (एमएचक्यूपीएम 09–08)	उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा और छत्तीसगढ़ दोनों में खरीफ और रबी मौसम।	8.20	रबी
शक्तिमान –3	बिहार	9.5	खरीफ और रबी
शक्तिमान –4	बिहार	12	खरीफ और रबी
पूसा एचएम–8 उन्नत (एक्यूएच–8)	महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना और तममिलनाडु	6.3	खरीफ
पूसा एचएम –9 उन्नत (एक्यूएच –9)	बिहार, झारखंड, ओडिशा, उत्तरप्रदेश और पश्मि बंगाल	5.2	खरीफ
पूसा एचएम –4 उन्नत (एक्यूएच –4)	पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तराखंड और उत्तरप्रदेश	6.4	खरीफ
पूसा विवेक क्यूपीएम–9 उन्नत (एपीक्यूएच –9)	जम्मू– कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, मिजोरम, एसके, असम, त्रिपुरा, नागालैंड, मणिपुर, अरुणाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु और तेलंगाना	5.6	खरीफ
प्रताप क्यूपीएम हाइब्रिड –1 (ईएचक्यू–16)	राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़	5.9	खरीफ
एचक्यूपीएम –4	हिमालयन बेल्ट को छोड़कर देश भर में	5.4	खरीफ
एचक्यूपीएम –7	कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु और महाराष्ट्र	7.2	खरीफ
विवेक क्यूपीएम 9 (एफक्यूएच–4567)	जम्मू–कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक और महाराष्ट्र	5	खरीफ

के लिए प्रतिस्पर्धी हो, जो किसानों और उपभोक्ताओं के लिए स्वीकार्यता निर्धारित करती हैं।

आयरन और जिंक युक्त मक्काः आयरन से संबंधित कमियां संज्ञानात्मक विकास, वृद्धि, प्रजनन और उत्पादकता आदि को प्रभावित करती हैं। जिंक की कमी से एनोरेक्सिया, अवसाद, क्षीण विकास, प्रजनन जीव विज्ञान में बदलाव, गैस्ट्रोइंटेस्टाइनल समस्याओं तथा कमजोर प्रतिरक्षा आदि विकारों को बढ़ावा मिलता है जो दुनिया की लगभग 49ः आबादी को प्रभावित करता है। मक्का जर्मप्लाज्म में बीज सूक्ष्म पोषक तत्व (जैसे आयरन और जिंक) की आनुवंशिक विभिन्नता को ध्यान में रखते हुए आयरन ६ जिंक समृद्ध कुलीन मक्का जर्मप्लाज्म काफी महत्वपूर्ण साबित होगा।

कम फाइटेट मक्काः मक्का में कम आयरन आनुवांशिक विविधता के कारण मक्का के दाने में आयरन और इसकी जैव उपलब्धता बढ़ाने के प्रयास सीमित हैं। लो फाइटेट म्यूटेशन के आनुवांशिकी और पाथवे लक्षण वर्णन के संबंध में बहुत प्रभावशाली प्रगति हुई है और मक्का के बीजों में हाई–फाइटेज विशेषता के कारण सफल इंजीनियरिंग में उत्साहजनक परिणाम प्राप्त हुए हैं। भविष्य को देखते हुए, कम फाइटेट मक्का की किस्मों को विकसित करने के प्रयासों को उच्च उपज के साथ–साथ अजैविक और जैवटिक तनावों के लिए सहिष्णुता तथा वांछनीय सस्य विशेषताओं को सुनिश्चित करना होगा ।

निष्कर्षः बायो–फोर्टिफिकेशन एक बहुविषयक विज्ञान है जिसमें पादप प्रजनकों, आनुवंशिकीविदों, पोषण विशेषज्ञों, अर्थशास्त्रियों, बीज प्रणाली विशेषज्ञों और कृषि विस्तार विशेषज्ञों के समन्वित प्रयासों की आवश्यकता होती है। भविष्य को देखते हुए, मक्का में कई नए संभावित जैव संवर्धन के लक्ष्य खोजे जा सकते हैं। पोषक तत्वों के बेहतर अवशोषण और उपयोग के लिए प्रीबायोटिक्स जैसेय इंसुलिन, राफिनोज और स्टैचोज की सघनता शामिल हैंय मक्का एंडोस्पर्म (भ्रूणपोष) में एस्कॉर्बिक एसिड के उच्च स्तर के परिणामस्वरूप सूक्ष्म पोषक तत्वों की जैव उपलब्धता और टोकोफेरॉल ६ विटामिन ई की उच्च सांद्रता में वृद्दि हो सकती है, जिसमें बहुत सारे लाभकारी एंटीऑक्सीडेंट गुण होते है।

जैव संवर्धन की रणनीतियों में पादप प्रजनन और उन्नत सस्य विज्ञान प्रथाओं को शामिल किया जाना चाहिए, क्योंकि जिंक और आयरन जैसे सूक्ष्म पोषक तत्व मिट्टी की गुणवत्ता और खेती की प्रथाओं पर अत्यधिक निर्भर हैं। जब जैव संवर्धित मक्का को नियमित रूप से सेवन किया जाता है, तो मानव के शरीर में जीवन में सूक्ष्म पोषक तत्वों के भंडार के स्तर को बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता हैं जिसके परिणामस्वरूप जनसंख्या में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी दूर हो सकती है। किसानों और उपभोक्ताओं द्वारा जैव संवर्धित किस्मों का कुशल प्रसार और स्वीकृति विभिन्न सामाजिक–आर्थिक कारकों जैसेय उम्र, शिक्षा, जागरूकता और बड़े पैमाने पर मास मीडिया एक्सपोजर आदि पर निर्भर करती है। जैव संवर्धित बीजों के कम अपनाने के पीछे उपज की क्षमता के बारे में रहस्यमयीकरण, मक्का प्रोसेसर और वैज्ञानिकों के बीच कमजोर संबंध तथा सरकारी सब्सिडी की कमी आदि कुछ संभावित कारण हैं। सरकार द्वारा प्रायोजित स्वास्थ्य कार्यक्रमों में जैव–संवर्धित उत्पादों को शामिल करने से पोषण की स्थिति और उनके तेजी से प्रसार में सुधार लाने और मदद मिलेगी। किसानों, उपभोक्ताओं और नीति निर्माताओं में जागरूकता बढ़ाने और उन्हें अपनाने की दिशा में किए गए प्रयासों से विभिन्न क्षेत्रों में जैव–संवर्धित संकर मक्का की लोकप्रियता और उनके व्यापक प्रसार को बढ़ाने में मदद मिलेगी। केवल जैव–संवर्धित फसलों द्वारा सभी जनसंख्या समूहों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी को दूर नहीं किया जा सकता, लेकिन निश्चित रूप से पोषण सुरक्षा प्राप्त करने के लिए यह एक बहुत ही प्रभावशाली और दीर्घकालिक साधन हैं।

मक्का के आयुर्वेदिक एवं औषधीय उपयोग

श्याम बीर सिंह, आकांक्षा पांडेय एवं विवेक कुमार सिंह
क्षेत्रीय मक्का अनुसन्धान व बीज उत्पादन केंद्र
भा.कृ.अनु.प. – भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, विष्णुपुर बेगुसराय, बिहार
संवादी लेखक का ई–मेलः singhsb1971@rediffmail-com

हमारे देश में मक्का एक महत्वपूर्ण फसल है। मक्का या मकई जिसका वानस्पतिक नाम जिया मेज है। इसकी उत्पत्ति लगभग 10000 वर्षों पूर्व दक्षिणी मेक्सिको में हुई थी। वहां पर इसका पहली बार घरेलू करण किया गया था। भारत में मक्का, धान व गेहूं के बाद उगाई जाने वाली तीसरी सबसे महत्वपूर्ण अनाज वाली फसल है। यह एक बहु उपयोगी फसल है, क्योंकि इसका उपयोग मानव एवं पशुआहार में प्रमुख रूप से किया जाता है। इसके अतिरिक्त औद्योगिक उत्पादों में भी इसका बहुतायत से उपयोग किया जाता है। मक्का के दाने विभिन्न रंगों के होते हैं जिसमें पीले, सफेद, काले, नीले, भूरे, बैंगनी, हरे, लाल इत्यादि सभी प्रकार के रंगों होते हैं। भारतवर्ष में अधिकतम पीली मक्का की खेती की जाती है लेकिन भारत के पर्वतीय क्षेत्रों जैसे जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश व पूर्वी भारत के कुछ प्रदेश तथा गुजरात व राजस्थान के कुछ जनजाति बहुल क्षेत्रों में सफेद मक्का की खेती भी की जाती है। जो कि वहां के जनजातीय लोगों का प्रमुख आहार है। मक्का विभिन्न प्रकार की होती है जैसे डेंट कौन, पॉप कॉर्न, स्वीट कॉर्न, वॅक्सी कॉर्न, पॉडकॉर्न इत्यादि। भारत में मक्का की खेती करने वाले राज्यों में कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, तेलंगाना, बिहार, गुजरात, राजस्थान मुख्य राज्य हैं।

अगर मक्का के दानों की पोषकता की बात करें तो इसमें कार्बोहाइड्रेट (66.2%), प्रोटीन (11.1%), नमी की मात्रा (11.6 से 20%), वसा (2.17 से 4.43%), राख (1.1 से 2.5%), फाइबर (2.7%) और मिनरल्स (1.5%) प्रमुख घटक हैं। मक्का के सौ ग्राम दानों से लगभग 86 कैलोरी ऊर्जा मिलती हैं। सामान्य मक्का की तुलना में उच्च गुणवत्ता युक्त मक्का जिसे हम क्यू.पी.एम. भी कहते हैं, उसकी पोषकता अधिक होती है क्योंकि इसमें 70 से 100% तक ज्यादा लाइसिन और ट्रीप्टोफेन नाम के दो आवश्यक अमिनो अम्ल पाए जाते हैं।

भारत में मक्का का उपयोग मुर्गी दाना (47%), औद्योगिक उत्पादों (14%), पशु आहार (13%), मानव आहार (13%), प्रसंस्कृत उत्पादों (7%) में किया जाता है तथा शेष 6% का निर्यात किया जाता है। मक्का का उपयोग विभिन्न प्रकार के उत्पादों जैसे कॉर्न मिलग्रिड्स, स्टार्च, मैदा, स्नैक्स के रूप में व्यापक पैमाने पर किया जाता है। मक्का से रोटी बनाई जाती हैं जो उत्तरी भारत के कई राज्यों में बड़ी पसंद की जाती हैं इसको सरसों के साग के साथ बहुत पसंद किया जाता है। पंजाब में मक्का की रोटी और सरसों का साग एक लोकप्रिय व्यंजन है। मक्का के अनाज व इसके अन्य रूपों से विभिन्न खाद्य उत्पाद जैसे बिस्किट्स, पास्ता, नूडल्स, लड्डू, बर्फी, हलवा इत्यादि बनाये जाते हैं। बेबी कॉर्न या शिशु मक्का से बनने वाला सूप, मिक्सवेज, खीर, अचार या मुरब्बा प्रमुख व्यंजन हैं। पॉपकॉर्न की माँग तो सभी मॉल्स, पीवीआर, सिनेमा हॉल्स, रेलवे स्टेशन्स, बस स्टैंड्स तथा पंजाब व जम्मू कश्मीर के विशेष पर्व 'लोहड़ी' पर बहुत अधिक होती है। स्वीट कॉर्न का बहुतायत में विभिन्न रूपों में प्रयोग किया जाता है।

मक्का के खाद्य पदार्थों के अलावा अगर हम बात करें मक्का के आयुर्वेदिक औषधीय उपयोगों की, तो मक्का का बहुत सी औषधीय रूपों में प्रयोग किया जाता है, मक्का स्वाद के साथ–साथ सेहत के लिए बहुत ही फायदेमंद है इसमें विटामिन ए, बी 1, बी 2, बी 9, बी 12, सी, ई, इसके अलावा खनिजों में कैल्शियम, आयरन फास्फोरस, पोटैशियम, जिंक, सोडियम, कॉपर, सेलेनियम, इत्यादि पोषक तत्व पाए जाते हैं। इसमें अच्छी मात्रा में फाइबर व कोलेस्ट्रॉल बिलकुल भी नहीं होता है। मक्का के औषधीय गुणों के अनुसार आयुर्वेदिक व औषधीय उपयोग निम्नलिखित हैं:

- मक्का में कैरोटिन, विटामिन ए मौजूद होने के कारण यह हमारी आंखों के लिए बहुत ही लाभदायक है तथा यह आँखों की देखने की क्षमता को बनाये रखती है। पके हुए भुट्टे में पाया जाने वाला कैरोटीनायड विटामिन–ए का अच्छा स्रोत होता है।
- मक्का के भुट्टे खाने से दांत मजबूत होते हैं।
- मक्का हमारे इम्यूनिटीया रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में भी

मदद करता है क्योंकि इसमें फाइटोस्ट्रोल नामक तत्व मौजूद होता है।

- मक्का में प्रचुर मात्रा में विटामिन ए तथा आयरन पाया जाता है। जो रक्त को बढ़ाने में सहायता करता है। जो खून की कमी को दूर करके एनीमिया नामक रोग से बचाता है। कुछ लोगों, विशेषकर महिलाओ में खून की कमी पायी जाती है, उन्हें एनीमिया या खून की कमी को दूर करने के लिए सही मात्रा में मक्का का सेवन रोजाना करना चाहिए।
- मक्का में बहुत सारे खनिज, विटामिन व पोषक तत्व होने के कारण यह कैंसर जैसी बीमारियों से लड़ने में मदद करता है। मक्का में बीटा क्रिप्टोक्सेंथिन (cryptoxanthin) पाया जाता है जो फेफड़ों के कैंसर के जोखिम को कम करता है। मक्का में प्रचुर मात्रा में फाइबर होने के कारण यह कोलेस्टरोल को कम करता है जिससे बड़ी आंत (कोलन) कैंसर का जोखिम कम होता है।
- मक्का हमारी हड्डियों को मजबूत करने में सहायता करता है, क्योंकि मक्का के पीले दानों में फॉस्फोरस, मैग्नीशियम, जिंक व कैल्शियम जैसे पोषक तत्वों की मात्रा पाई जाती है यह ऑस्टियोपोरोसिस नामक हड्डियों के रोग की रोकथाम में बहुत सहायक है।
- फ्रीरेडिकल्स के कारण त्वचा की परेशानियाँ व झुर्रियां होती है। मक्का का सेवन करने से हमारी त्वचा भी ठीक रहती है। इसमें पाए जाने वाले विटामिन ए, विटामिन सी और कई महत्वपूर्ण एंटी–ऑक्सिडेंटस जैसे कि लाइकोपीन की मात्रा अधिक होने के कारण स्किन पिगमेंटेशन का खतरा कम होता है, ये स्किन को टैनिंग से बचाने और त्वचा को नुकसान पहुंचाने से रोकते हैं। जिससे त्वचा की चमक बनी रहती है साथ ही इनके एंटी–एजिंग प्रभावों के कारण यह स्किन को जवां भी बनाए रहती है। मक्का के स्टार्च के प्रयोग से भी त्वचा खूबसूरत और मुलायम बन जाती है।
- मक्का को उबालने के साथ ही इसका तेल, मक्का स्टार्च को सीधे त्वचा पर लगा सकते हैं।
- कॉर्नआयल में असंतृप्त फैटीएसिड्स (Unsaturated fatty acids) होते है जो रक्त के कोलेस्टरोल को कम करते है कॉर्नआयल का प्रयोग बहुत से स्वादिस्ट व्यंजन जैसे कि सॉसमेओनी, विनेग्रेटेस बनाने में भी किया जाता है, कई सौंदर्य प्रसाधनों (beauty products) को बनाने में भी कॉर्नआयल का प्रयोग किया जाता है।
- मक्का को कोलेस्ट्रोलफाइटर माना जाता है इसमें मौजूद विटामिन सी, बायोफ्लेवोनॉयड्स, कोलेस्ट्रॉल लेवल को कम करता है जो कि दिल के मरीजों के लिए बहुत ही लाभदायक होता है। सभी खाना पकाने के तेलों की तुलना में मक्का के तेल में फाइटोस्टेरॉल की मात्रा सबसे अधिक होती है। फाइटोस्टेरॉल आंतों के कोलेस्ट्रॉल के अवशोषण को कम करके सीरम निम्न घनत्व लिपोप्रोटीन (एलडीएल) और कुल कोलेस्ट्रॉल सांद्रता को कम करता है।
- आजकल हम देखते हैं कि लोग कब्ज की बीमारी से जूझ रहे होते हैं ऐसे में मक्का का सेवन करने से पाचन क्रिया ठीक रहती है क्योंकि इसमें फाइबर तत्व मौजूद होते हैं जो पाचन तंत्र को मजबूत बनाये रखते है और आंत्र की मांसपेशियों को चिकना बनाए रखती है।
- मक्का का दालिया खाने से पाचन ठीक रहता है जिससे मल नरम रहता है, जो बवासीर के होने वाले खतरे को कम करता है।
- आजकल की कार्य शैली व जीवनशैली तनाव से भरी होती है, बहुत से लोग उच्च रक्तचाप या हाई ब्लड़प्रेशर व डायबिटीज के रोगी होते है। कम व्यायाम व शारीरिक परिश्रम का आभाव डायबिटीज का मुख्य कारण होता है। मक्का में जटिल कार्बोहाइड्रेट होते हैं जो रक्त में अचानक इंसुलिन क्रैश और स्पाइक्स को रोकते हैं। मक्का में कई प्रकार के फेनोलिक फाइटोकेमिकल्स मौजूद होते है जो उच्च रक्तचाप यानी हाई ब्लड़प्रेशर से सुरक्षा प्रदान करते है।
- मक्का शारीरिक रूप से कमजोर बच्चों व व्यक्तियों का वजन बढ़ाने में भी मदद करता है शारीरिक रूप से कमजोर बच्चे या व्यस्क जो अपना वजन बढ़ाना चाहते हैं उनको मक्का तथा उससे बने खाद्य उत्पादों का सेवन करना चाहिए। मक्का के अनाज में पर्याप्त मात्रा में कैलोरी व कार्बोहाइड्रेट की मात्रा होती है जो वजन बढ़ाने में सहायक होता है। मक्का स्वस्थ तरीके से वजन बढ़ाने में जादू की तरह काम करता है। इससे आपकी बॉडी को स्वस्थ कैलोरी मिलती है ।
- मक्का में फोलिक एसिड और जैंथीन पोषक तत्व होता है जो कि गर्भवती महिलाओं के लिए फायदेमंद होता है।

- मक्का के भुट्टे खाने के बाद बलरी (भुट्टे का एक भाग) को बीच में तोड़कर सूंघने से जुकाम में फायदा होता है।
- भुट्टे की बलरी को जलाने में भी प्रयोग किया जाता है इसकी राख को गुनगुने पानी के साथ खाने से खांसी का इलाज होता है व सांस के रोगों से भी बचा जा सकता है।
- मौसम में बदलाव के कारण जब खांसी होती है तो भुने हुवे मक्का के दानो का सेवन करने से खांसी में आराम मिलता है।
- भुट्टे को पकाने से इसमें 50% एंटीऑक्सीडेंट्स बढ़ जाते हैं जो कि बढ़ती उम्र को रोकता है।
- शिशु के विकास के लिए भी मक्का कारगर साबित है मक्कस के ताजे दूधिया दाने को पीसकर उसे धूप में रखने के बाद जो शेष तेल बच जाए उसे छानकर बच्चों के पैरों में मालिश करने से उनके पैर मजबूत होंगे जिससे बच्चा जल्दी चलने लगता है।
- मक्का के तेल को पीने से शरीर शक्तिशाली होता है प्रतिदिन एक चम्मच तेल और चीनी को मिलाकर शर्बत बनाकर पीने से शक्ति बढ़ती है और प्रति चम्मच 15 से 122 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है।
- मक्के का आटा का प्रयोग लिवर के लिए लाभकारी होता है ।
- सिर्फ मक्का ही नहीं भुट्टे के सिल्क में भी कई औषधीय गुण होते हैं, जो हमारी सेहत के लिए बहुत लाभकारी हैं । मक्का के भुट्टे के बालों जिन्हें सिल्क भी कहते हैं, उसमें पोटेशियम, कैल्शियम, विटामिन B2 और अन्य पोषक तत्व मौजूद होते हैं।
- भुट्टे के सिल्क का सेवन करने से हार्ट फेल्योर और किडनी स्टोन का खतरा कम होता है।
- भुट्टे के सिल्क से बनी चाय का उपयोग करने से किडनी में जमा टॉक्सिन और नाइट्रेट को शरीर से बाहर निकालने में मदद मिलती है। भुट्टे के सिल्क एंटी इन्फ्लामेट्री एजेंट की तरह काम करते हैं, जो यूरिनरी ट्रेक्ट इंफेक्शन के लिए उपयोगी होता है। यह आमतौर पर यूरिनरीट्रैक्ट लाइनिंग या परत को ठीक करती है और पेशाब में होने वाली जलन को दूर करता हैं।
- भुट्टे के सिल्क की चाय पीने से ब्लड शुगर के मरीजों के लिए फायदा होता है और यह शरीर में इंसुलिन की मात्रा कंट्रोल करता है ।
- मक्का के सिल्क का काढ़ा कमर दर्द में भी आराम करता है।
- कॉर्न सिल्क में स्टिगमास्टरोल मौजूद होता है जो कि दिल की बीमारी और ह्रदयघात से बचाव करता है।
- कॉर्नसिल्क को ताजा या सूखाकर दोनों रूप में इस्तेमाल करते हैं इसका उपयोग ब्लड इन्फेक्शन, यूरिनरीसिस्टम में सूजन, जन्म से दिल की समस्या और चक्कर आने जैसी बीमारियों से रोकथाम में मदद मिलती है ।
- यह गठिया के मरीजों के लिए भी फायदेमंद होता है और इसमें विशेष रूप से फायदा करती है।
- पतंजलि अनुसंधान संस्थान की एक रिपोर्ट के अनुसार मक्का प्रकृति से मधुर, ठंडा, रूखा, खाकर मन संतुष्ट करने वाला, पित्त का स्राव बढ़ाने वाला, मूत्र संबंधी बीमारियों को दूए करने वाला, पोषक, शक्ति बढ़ाने वाला, भूख बढ़ाने वाला, बलवर्धक, कफ और पित्त कम करने वाला होता है। जबकि कच्चा मक्का पुष्टिकारक तथा रुचिकारक होता है। मक्का हृदय की पेशियों को उत्तेजित करता है, रक्तचाप बढ़ाता है, मूत्र संबंधी बीमारियों में औषधियों की तरह काम करता है एवं पाचन तंत्र को बेहतर करता है।

मक्का के अधिक सेवन से होने वाले नुकसान

- मक्का खाने के साथ–साथ जहां अत्यधिक फायदे होते हैं लेकिन इसका अत्यधिक सेवन करने या असंतुलित मात्रा में सेवन करने से कुछ नुकसान भी हो सकते हैं मक्का में सैलूलोज होता है जो कि अघुलनशील फाइबर होता है जिससे हमारे शरीर की रचना पचा नहीं पाती है।
- मक्का के कच्चे दानों को खाने से पेट फूलने या ब्लोटिंग की समस्या बढ़ सकती है। इसीलिए, मक्के के कच्चे दानों का सेवन सीमित मात्रा में ही करना चाहिए।
- कच्चा मक्का खाने से बच्चों को दस्त की समस्या हो सकती है अतः मक्का को हमेशा पका कर ही खाना चाहिए।
- मक्का का अधिक सेवन करने से पेट में दर्द की समस्या हो सकती है।

खाद्य एवं पोषण सुरक्षा में कटाई उपरांत प्रौद्योगिकी की भूमिका

भारत भूषण[1], मनेश चंद्र डांगला[1], बहादुर[1] सिंह जाट, सुमित कुमार अग्रवाल[1], सुधीर कुमार[2] एवं प्रदीप कुमार[1],
[1]भा.कृ.अनु.प. – भारतीय मक्का अनुसधान सस्थान, लुधियाना, पंजाब
[2]भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि जैव प्रौद्योगिकी संस्थान, रांची, झारखंड
संवादीलेखक का ई–मेलः buddingbiochemist@gmail-com

आज के समय में खाद्य और पोषण सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए खाद्य उपोत्पाद (food by-products) को कम करना एक बड़ी चुनौती है। यह अनुमान है कि विश्व भर में खाद्य का एक तिहाई भाग बर्बाद किया जाता है। खाद्य हानि को कम करना खाद्य की उपलब्धता बढ़ाने के लिए एक महत्वपूर्ण अवसर माना जा सकता है। यह ग्रामीण विकास और आजीविका में सुधार में योगदान देगा जिससे विश्व पटल पर गरीबी के स्तर में गिरावट आएगी। कटाई उपरांत मक्का में होने वाले नुकसान का आंकलन किया जाए तो यह 2% से 40% तक होता है जो कि मुख्य रूप से सीमान्त और मध्यम वर्ग किसानों के खेतों में होता है जहां शिक्षा के अभाव में कटाई, सुखाने और भंडारण की प्रौद्योगिकियों का अनुप्रयोग नही होता है।

अनाज भंडारण को प्रभावित करने वाले प्राथमिक कारकों में अनाज नमी, तापमान, और सापेक्ष आर्द्रता है। मक्का को भंडारण के दौरान खराब करने वाले कारण कृंतक कीड़े और सूक्ष्म–जीव हैं दोनों कारक मक्का दानों की रासायनिक संरचना और वजन में परिवर्तन लाते हैं जो अंततः उसकी गुणवत्ता को प्रभावित करते है। मक्का में भंडारण के समय कुछ कीटों के प्रति आनुवंशिक प्रतिरोध–तंत्र की पहचान की गई है लेकिन उच्च उपज के साथ–साथ कीड़ों के लिए प्रतिरोधक क्षमता वाली मक्का की किस्में सीमित है। मक्का के कटाई उपरांत नुकसान को कम करने के लिए भंडारण तकनीक, जैसे कि बहुपरत साइलो का मूल्यांकन किया गया है। इन तरीकों को बड़े पैमाने पर प्रयोग में लाया जा सकता है। स्थानीय तकनीकों का सुधार, प्रसार और किसानों को उचित प्रशिक्षण से कटाई उपरांत भण्डारण नुकसान को कम करने में सहायक हो सकते है।

माइकोटोक्सिन उत्पन्न करने वाले कवको मुख्य रूप से, एस्परजिलस, फुजेरियम और पेनिसिलियम के प्रति मक्का अति संवेदनशील है। विशेष रूप से एस्परजिल्स फ्लेवस द्वारा प्रत्युत्पन्न अत्यधिक मात्रा में होने से खाद्य विषाक्त होने का खतरा बना रहता है। अफ्लाटोक्सिन मनुष्यों और जानवरों के स्वास्थ्य, पोषण और खाद्य सुरक्षा को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। साथ ही साथ फसल संदूषण से अर्थव्यवस्था को भी नुकसान होता है। मक्का की एस्परजिल्स और कीट प्रतिरोधी किस्मों का विकास किया जाना चाहिए। हाल ही में एफ्लाटोक्सिन संदूषण को कम करने के लिए प्रो–विटामिन 'ए' की क्षमता का प्रदर्शन किया गया है।

पूरे अनाज और फाइबर की उच्च मात्रा के उपभोग से मनुष्यों में हृदय रोग, मधुमेह प्रकार–2 और समग्र मृत्यु दर कम में आती है। इसी कारण से मक्का को स्थायी आहार और पोषण की आवश्यकता के रूप में प्रस्तावित किया गया है। स्वीट कॉर्न का सेवन पूरे दानें के रूप में किया जाता है। स्वीट कॉर्न के दानों की ब्लांचिंग करके पैकेजिंग और भण्डारण के लिए ठंडी हवा से भाप दिया जाता है। कैनिंग मक्का के लिए प्रक्रिया समान रूप से शुरू होती है, लेकिन दाना निकलने के बाद, मक्का को धोया जाता है और सूखा कर डिब्बे में रखा जाता है जिसमें उबलता हुआ नमकीन घोल मिलाया जाता है और बाद में कैन को सील कर ठंडा किया जाता है।

मक्का का ज्यादातर सेवन परिष्कृत आटे के रूप में होता है क्योंकि अंतिम उत्पाद का रंग और कोमलता जैसी खाद्य विशेषताओं के लिए लोग आदी हो चुके हैं और उसी रूप में उपयोग किया जाता है। फिर भी,उपभोक्ता वरीयताएँ और पोषण संबंधी प्रभाव को ध्यान में रखते हुए साबुत अनाज मक्का की खपत के कई उदाहरण हैं जिसमें स्थानीय तौर पर उपलब्ध अनाजों का मिश्रण कर व्यंजन बनाए जाते है जिनका विस्तार, प्रचार या समायोजन किया जा सकता है। उदाहरणतयाः जल से भीगे या

उबले खाद्य पदार्थ, निक्षतकरण (nixtamalization), पॉपकॉर्न, भुनी मक्की और हरी मक्का। पत्थर से कूट कर के बनाए गए ग्रिट भी साबुत अनाज का ही एक रूप है। अपरिष्कृत आटे के प्रयोग पर जोर देने से पहले उस आटे की स्थिरता और शैल्फ जीवन पर अतिरिक्त शोध की आवश्यकता है। अपरिष्कृत आटे से बनने वाले उत्पाद, जो उपभोक्ताओं को स्वीकार्य हो, को संपूर्ण विकसित करने के लिए खाद्य विज्ञान और प्रौद्योगिकी की आवश्यकता होगी। बहु–विषयक दृष्टिकोण को अपना कर मक्का को सम्पूर्ण दानें के रूप में, उच्च एंटीऑक्सिडेंट सहित, कम वसा सामग्री, और कुछ रूपात्मक विशेषताएं सुनिश्चित कर स्वास्थ्य योग्य उत्पादों के लिए प्रयोग में लाना चाहिए।

''ग्रीन'' या ''ताजा'' मक्का भी एक किस्म की मक्का है जिसे दूधिया अवस्था आने पर काटा जाता है और भूनने या उबालने से पकाया जाता है। ताजा मक्का सड़क पर रेहड़ी विक्रेताओं के लिए एक उच्च मूल्य का उत्पाद होता है, क्योंकि यह परिपक्व अनाज की कीमत से पांच गुना ज्यादा कीमत पर तक बेचा जा सकता है। भारत, ब्राजील, चीन, केन्या, मैक्सिको, नाइजीरिया और तंजानिया शीर्ष ताजा–मक्का उपभोक्ताओं में से हैं। ताजा मक्का के पोषण मूल्य और वैश्विक महत्व के बावजूद यह कम अध्ययनरत विषय रहा है। सामान्य मक्का की तुलना में क्यू.पी.एम. जैसी ताजा मक्का में ग्लूटेलिन प्रोटीन अधिक और जीन प्रोटीन कम होता है जिस से लाइसीन और ट्रिप्टोफेन अमीनो अम्ल की मात्रा बढ़ जाती है। विभिन्न रंग और विशेषताओं वाली ताजा मक्का के उबालने और भुनने के बाद पोषक तत्वों और खनिजों की प्रतिधारण क्षमता में विविधता पाई गयी है।

मक्का की खाद्य सुरक्षा में महत्त्व और विकास की कड़ी को पूरी तरह से नहीं समझा जा सकता अगर निक्षतकरण प्रक्रिया को शामिल नहीं किया गया हो। इस प्रक्रिया में अनाज को आठ या अधिक घंटे के लिए गर्म पानी में रखा जाता है और उसमें क्षारीय पदार्थ जैसे हैराखया चूने जैसी सामग्री मिलाई जाती है। असंसाधित अनाज की तुलना में निक्षतकरण द्वारा भौतिक परिवर्तन के कारण संसाधित मक्का दानों में विशेष रूप में सुधार हो जाता है। इस से रासायनिक संरचना और कार्य–क्षमता में भी परिवर्तन आता है। पेरिकारप का आंशिक रूप में रह जाना और फाइटिक अम्ल में कमी भौतिक और रासायनिक परिवर्तनों में प्रमुख हैं। nixtamalized दानों के पीसने में आसानी होने के अतिरिक्त इस से बनने वाले उत्पादों के पोषण मूल्य, परिवर्तित स्वाद और सुगंध, शेल्फ लाइफ में वृद्धि और मायकोटॉक्सिन की कमी होना इस विधि को प्रचलित बनाए हुए है। उदाहरण के लिए टॉर्टिला चिप्स बनाने में पहले इनकी बेकिंग की जाती है जिसमें पानी कम हो जाता है और फिर जब उसे तला जाता है तो तेल का अवशोषण कम होता है। टॉर्टिला वयस्कों के लिए 38.8% प्रोटीन, 45.2% कैलोरी और 49.1% कैल्शियम प्रदान करता है। इसके अलावा एक टॉर्टिला आहार फाइबर का 6% योगदान देता है।

परंपरागत अमादक पेय पदार्थों के उत्पादन के तरीकों में भिगोना, अंकुरण, पीसना, छानना और किण्वन शामिल हैं। अधिकांश पेय पदार्थों में मक्का के गेहूँ, जौ, बाजरा और ज्वार संयोजन शामिल हैं। सूक्ष्म–जीव स्टार्च और शर्करा को लैक्टिक अम्ल में परिवर्तित करते हैं जो परिरक्षक का काम भी करता है। किण्वित उत्पाद इसलिए अच्छे हैं क्योंकि यह प्रोबायोटिक्स का स्रोत माने जाते हैं और आंत को स्वस्थ रखने में सहायक है। पूरे मक्का दानों का आटा बना कर उसे 4 से 5 दिन तक किण्वित करना और उसके बाद उसे मक्का, केले या विशेष प्रकार के कद्दू के पत्तों में लपेट कर उबलने के लिए रखा जाता है। अंकुरित मक्का को किण्वित कर के बने पेय पदार्थ मीठे और लाजवाब बनते हैं।

मानव उपभोग के लिए मक्का एक प्रमुख फसल है और यह मानव की संस्कृतिक और परम्परागत फसल होने के कारण इसकी भावी आवश्यकता निरंतर बनी रहेगी। उपभोक्ता मांग–संचालित अनुसंधान और रणनीतियों का चुनाव कर के मानव जाति का स्वास्थ्य बनाए रखने में गुणवत्ता वाली मक्का की निरंतर उपलब्धता महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी। मक्का उत्पादन के विभिन्न चरणों में परिवर्तन द्वारा मक्का–आधारित खाद्य पदार्थों से उच्च पोषण लाभ प्राप्त किया जा सकता है। जैव–संवर्धित (बायोफोर्टिफाइड) मक्का का उपयोग या अन्य अनाज, फलियां और सब्जियां को मक्का के साथ मिला कर उपयोग खाद्य और पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करता है।

मक्का में मूल्यवर्धन

सीमा श्योराण एवं प्रियाजोय कर
भा.कृ.अनु.प. – भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना, पंजाब
संवादी लेखक का ई–मेलः priyajoy.kar@icar-gov-in

विश्व स्तर पर, मक्का सबसे महत्वपूर्ण मोटे अनाजों में से एक है। कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन और कुछ महत्वपूर्ण विटामिन और खनिजों की उच्च मात्रा के कारण मक्का को ''गरीब आदमी का पोषक'' के रूप में भी जाना जाता है। भारत में, कुल मक्का के लगभग 60% अनाज को फीड के रूप में, 14% औद्योगिक उद्देश्यों के लिए, 17% भोजन के रूप में, 7% प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों के रूप में, और 4% बीज सहित अन्य प्रयोजनों के लिए उपयोग किया जाता है। मक्का के बहुत मूल्य वर्धित उत्पाद हैं जिनमें मक्का स्टार्च, तरल ग्लूकोज, डेक्सट्रोज मोनोहाइड्रेट, निर्जल डेक्सट्रोज, सोर्बिटोल, कॉर्न ग्लूटेन आदि शामिल हैं। भारत में, स्टार्च का प्रमुख स्रोत मक्का है और कपड़ा उद्योग में इसकी सबसे अधिक मांग है। मक्का की उत्पादन क्षमता एवं विभिन्न उपयोगों के कारण इसे "अनाजो की रानी" के रूप में जाना जाता है। मक्का के पौधे के प्रत्येक भाग का आर्थिक मूल्य होता है। दाने, पत्ते, डंठल, टैसल और सिल्क सभी को विभिन्न प्रकार के खाद्य और गैर–खाद्य उत्पादों का उत्पादन करने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। परंपरागत रूप से मक्का को रोटी बनाने के लिए मिलों में आटे में परिवर्तित किया जाता है। पूरे देश में मक्का के भुट्टों को भूनकर खाया जाता है जो फाइबर से भरपूर होता है। यह पशु तथा पोल्ट्री फीड और कॉर्न फ्लेक्स निर्माण इकाइयों के लिए एक महत्वपूर्ण कच्चा माल है।

अपनी अनूठी विशेषताओं और पोषण संबंधी संरचना की विशेषता के आधार पर, मक्का को गुणवत्ता वाले प्रोटीन मक्का, बेबी कॉर्न, स्वीट कॉर्न, पॉप कॉर्न, ग्रीन इयर कॉर्न, हाई ऑयल कॉर्न, चारा मक्का आदि में वर्गीकृत किया जाता है। सामान्य और विशेष मक्का के कई मूल्यवर्धक उपयोग है । क्वालिटी प्रोटीन मक्का (क्य.पी.एम.) में सामान्य मक्का के मुकाबले आवश्यक अमीनो एसिड जैसे ट्रिप्टोफैन और लाइसिन प्रचुर मात्रा में होने के कारण पोषण लाभ प्रदान करता है। बेबी कॉर्न बहुत छोटे और अपरिपक्व मक्का का रूप है जिसे 45–50 दिन में काट लिया जाता है। बेबी कॉर्न को सलाद, सब्जी, अचार, कैंडी, मुरब्बा आदि के रूप में उपयोग में लिया जाता है। बेबी कॉर्न की कटाई के पश्चात प्राप्त होने वाले चारे को पशुओं के लिए एक फीड के रूप में प्रयोग किया जा सकता है जिससे पशुओं को वर्ष भर हरा चारा मिलता रहेगा। स्वीट कॉर्न सामान्य कॉर्न की तुलना में ज्यादा मीठा होता है। पॉपकॉर्न में जब दाने को गर्म किया जाता है, तो वे फट जाते हैं और बड़े फ्लेक्स (पॉपिंग) का उत्पादन करते हैं। विशेष मक्का से विविध मूल्य वर्धित उत्पाद जैसे पारंपरिक खाद्य पदार्थ, शिशु आहार, स्वास्थ्य खाद्य पदार्थ, स्नैक्स और नमकीन, बेक्ड आदि तैयार किये जाते हैं। इन उत्पादों के अलावा, मक्का का उपयोग स्टार्च, विशेष रसायन, इथेनॉल, परिष्कृत मक्का का तेल, सोर्बिटोल, केक मिक्स, कैंडी, कार्बोनेटेड पेय और सौंदर्य प्रसाधन जैसे औद्योगिक उत्पादों को तैयार करने के लिए किया जाता है। मक्का को मुख्य रूप से ऊर्जावान फसल के रूप में उगाया जाता है, लेकिन इसके विभिन्न विशिष्ट संस्करणों, जैसे कि उच्च–तेल मक्का, उच्च–लाइसिन मक्का, मोमी (वैक्सी) मक्का, एमाइलोज मक्का, फ्लिट मक्का, सफेद मक्का, पॉपकॉर्न और स्वीट कॉर्न का उपयोग काफी होता है। सफेद मक्का, या पीले मक्का के कई अलग–अलग प्रकार के स्नेक्स या फ्लेकिंग ग्रिट्स निकाले जा सकते हैं और इसे अनाज, नाश्ते में भोजन, कई अलग–अलग प्रकार के स्थिर खाद्य पदार्थों, केक, ब्रेड, चिप्स, पटाखे, टॉर्टिला और कई अन्य में बदला जा सकता है। मक्का विविध रूपों में बड़े पैमाने पर युवाओं के बीच बहुत तेजी से प्रसिद्ध हो रही हैं । भौगोलिक स्थान और खाद्य सुरक्षा के आधार पर मक्का का उपयोग निर्भर करता है। हालाँकि,पशु चारा और, तेजी से, इथेनॉल उत्पादन के लिए विकसित राष्ट्र मक्का पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं। इथेनॉल और पशु चारा में रुचि वैश्विक उद्योग के संगठन को आकार देने में मदद करती है।

हालांकि प्रजनन सिद्धांत सभी मक्का प्रकारों के लिए समान हैं, केवल एक निश्चित सीमा तक विशिष्ट प्रकार का चयन दृष्टिकोण जरूरी है। विशिष्ट प्रकार के मक्का, उनके लक्षणों के आनुवंशिक नियंत्रण के कारण, पादप प्रजनन प्रक्रियाओं के दौरान, गैर–नियंत्रित परागण को रोकने के लिए विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। विशेष मक्का के मूल्यांकन में विशिष्ट प्रक्रियाएं जैसे पॉपकॉर्न में मात्रा और परत की गुणवत्ता का आकलन, मीठा मक्का में शक्कर का निर्धारण और फसल की परिपक्वता, उच्च तेल मक्का में तेल का निर्धारण आदि आवश्यक हैं । इन लक्षणों के लिए अधिक मात्रा में आनुवंशिक विविधता होने के कारण सफल चयन के लिए आवश्यक तकनीकी संभावनाओं से सहज होते है।

विपणन और वितरणः मक्का के अंतिम उपयोगों को प्राथमिक रूप से तीन भागों विभाजित किया जा सकता है :

(1) मानव उपभोग (2) ईंधन के लिए इथेनॉल और (3) पशु चारा प्रमुख आउटपुट

मानव उपभोग के लिए नियत मिलिंग खंड को कणाकार द्वारा वर्गीकृत किया जाता है जिसमे आटा, ग्रिट्स, भोजन, चोकर और गुठली शामिल हैं। सभी प्रधान उत्पादों जैसे रोटी, दलिया, टॉर्टिलास, कॉर्नब्रेड, ब्रुअरीज और अन्य पारंपरिक व्यंजनों के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। इसके अलावा अन्य खाद्य उत्पादों मक्का का तेल, मक्का स्टार्च और मिठाइयों में भी इस्तेमाल किया जा सकता है। इथेनॉल के लिए मक्का का उपयोग पिछले दशक में खासकर विकसित अर्थव्यवस्थाओं में तेजी से विकसित हुआ है।

मक्का का उपयोग 3,000 से अधिक उत्पादों में किया जाता है, जिसमें एडहेसिवस, एंटीबायोटिक्स, ऑटोमोबाइल, बेबीफूड, नाश्ते के अनाज, डिब्बाबंद सब्जियां, पनीर स्प्रेड, चॉकलेट उत्पाद, प्रिंटिंग, सौंदर्य प्रसाधन, क्रेयॉन और चाक, मिठाई पाउडर, डाई, खाद्य तेल, कीटनाशक, केचप, पशुधन फीड, माल्टेड उत्पाद, कागज निर्माण, फार्मास्यूटिकल्स, ड्रग्स और कालीन, जूता पॉलिश, शीतल पेय, कपड़ा, गेहूं की रोटी, दही, चमड़ा आदि शामिल हैं।

मक्का से तैयार मूल्य वर्धित उत्पादन के वलपौष्टिक होते हैं बल्कि तैयार करने में भी आसान होतेहैं।मक्का के पोषण संबंधी प्रोफाइल को ध्यान में रखते हुए, इन उत्पादों से न केवल मक्का के उपयोग में विविधता आएगी, बल्कि यह मानव स्वास्थ्य के लिए विशेष रूप से कुपोषण से निपटने में भी लाभदायक होगा। गृहिणियों के बीच गुणवत्ता वाले प्रोटीन मक्का और बेबी कॉर्न के आधार पर मूल्यवर्धित उत्पादों को विकसित और लोक प्रिय बनाने की आवश्यकता है ताकि वे अपने दैनिक आहार में इन व्यजनों को शामिल करें। निर्जलीकरण से डिब्बाबंदी कर के बेबी कॉर्न को औद्योगिक उत्पादों द्वारा उद्यमशीलता की गतिविधि के रूप में लिया जा सकता है। मक्का के बढ़े हुए उपयोग से किसानों को मक्का के उत्पादन में सुधार करने में मदद मिलेगी, जो अप्रत्यक्ष रूप से किसानों के आर्थिक मानकों को बेहतर बनाने में मदद कर सकता है। स्वयं सहायता समूहों, खाद्य उद्योगो आदि के माध्यम से मक्का आधारित मूल्य वर्धित उत्पादों के व्यावसायी करण की दिशा में भी प्रयास आवश्यक हैं।

ब्रूइंग, पशु आहार और प्रसंस्कृत खाद्य उद्योग विकसित हो रहे है जिससे मक्का की मांग में आवक आई है । मक्का का

मक्का के विभिन्न उत्पाद स्टार्च एल्कोहल कार्न ऑयल ग्लुकोज

विश्व स्तर पर, मक्का उत्पादन का सबसे बड़ा हिस्सा पशु चारे के रूप में उपयोग किया जाता है। अमेरिका,यूरोपीय संघ (ईयू), चीन, और ब्राजील भोजन के रूप में मक्का की खपत का 70: हिस्सा है।

उपयोग ज्यादातर पारंपरिक शराब बनाने वालों द्वारा किया जाता है, लेकिन इसका उपयोग औद्योगिक क्षेत्र द्वारा भी किया जाता है, जिसने पारंपरिक सोडा और बियर पर ध्यान केंद्रित किया है।

अर्ध–औद्योगिक स्तर पर अन्य विपणन आउटलेट संभव हैं, लेकिन उन्हें अपने उप–उत्पादों के लिए मूल्य प्राप्त करने के लिए विभिन्न अनाज किस्मों और खेती की तकनीक की आवश्यकता होगी। यहाँ फिर से, मक्का मूल्य श्रृंखला में मूल्य वृद्धि को बढ़ाने की महत्वपूर्ण क्षमता है।सामन्य (पीला) मक्का बड़े पैमाने पर पशु चारा उद्योग में उपयोग किया जाता है जबकि सफेद मक्का भोजन (स्टार्च, पॉप–कॉर्न, स्वीट कॉर्न आदि) के रूप में खाया जाता है।

भारत में मक्का को खरीफ, रबी और बसंत में उगाया जाता है लेकिन पूरे मक्का उत्पादन में खरीफ मक्का का योगदान 80 फीसदी से अधिक है। देश में उत्पादित मक्का का मुख्या भाग पोल्ट्री फीड के उत्पादन के लिए प्रयोग किया जाता है। यह अनुमान है कि पोल्ट्री उद्योग से मक्का की मांग में लगभग 6 प्रतिशत की वृद्धि होगी। पोल्ट्री क्षेत्र की बढ़ती मांग से 2020 तक 30 मिलियन टन से अधिक मक्का की खपत में वृद्धि की संभावना है। देश में मक्का की पैदावार का मौजूदा स्तर (3 मीट्रिक टन/ हेक्टेयर) वैश्विक औसत 6 मीट्रिक टन / हेक्टेयर से काफी पीछे है, और विशेष रूप से पारंपरिक मक्का उगाने वाले क्षेत्रों में संकर मक्का को अपनाने से उपज में सुधार की बहुत गुंजाइश है। । फीड और स्टार्च क्षेत्र की बढ़ती मांग के साथ, मक्का की समग्र मांग तेजी से बढ़ने की संभावना है। भारत के पास अपनी बाजार हिस्सेदारी बढ़ाने और वैश्विक मक्का बाजार में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने की बहुत बड़ी क्षमता है।

हाय राम ये कोरोना

हाय राम ये, कैसा आया कोरोना
विश्व का हर देश, इसके आगे हो रहा बौनाहाय राम ये, कैसा आया कोरोना

न दवा, न इंजेक्शन, न इलाज, इसका
लगता चीन ने किया, कोई जादू टोना
हाय राम ये, कैसा आया कोरोना

हो इटली, स्पेन, भारत या अमेरिका
हर देश,हर चौनल, पर एक ही रोना
हाय राम ये, कैसा आया कोरोना

हाथ सूख गए, पड़ गयी झूरियाँ भी भाई
जान बचाने की, नई नियमावली है आई
हर बीस मिनट, बाद बीस सेकंड तक, हातों को है धोना
हाय राम ये, कैसा आया कोरोना

न बड़े–बूढ़ों, को चरण–स्पर्श
न छोटों को, गले लगना–लगाना
सोशल डिस्टन्सिंग, सब करो न
हाय राम ये, कैसा आया कोरोना

आंखों पे, चश्मा कानो मे फोन
नाक–मुँह पे, लगा मास्क
पहचान का, भी गुम होना
हाय राम ये, कैसा आया कोरोना

स्वच्छता अभियान सब अपना रहे है
जो कुछ न करते थे,
वे भी साफ कर रहे, घर का हर कोना
हाय राम ये, कैसा आया कोरोना

बंद हुआ मॉल, सिनेमाघर और होटल जाना
न हुई शॉपिंग, न मोहतरमा का कुछ फरमाना
मुरझा गई सुंदर सूरत, वह चेहरा सलोना
हाय राम ये, कैसा आया कोरोना

कुवारों, पर इस विपदा की कहानी अजब हो गई
कोई हुआ परवाना, तो कोई शमा हो गई
किसी की रुक गई शादी, तो किसी का न हुआ गोना
हाय राम ये, कैसा आया कोरोना

हो चर्चा, संगोष्ठी या कवि सम्मेलन
हर तरफ छा रहा, एक ही विलेन
लगता जिंगदगी भर पड़ेगा इसको ढ़ोना
हाय राम ये, कैसा आया कोरोना

हुई हवा स्वच्छ, जल निर्मल
जिसे देख मन हो रहा मगन
लगता है डर
न हो जाय, यमराज–दर्शन
आओ करे ऐसे यत्न, भविष्य में फिर से, ऐसा हो ना
हाय राम ये, कैसा आया कोरोना

सोनिया चौहान
भाकृअनुप – राष्ट्रीय कृषि अर्थशास्त्र और नीति अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

नई तकनीक एवं उन्नतशील बीजो का प्रयोग कर मक्का की खेती से कमाएं ज्यादा मुनाफा

सुमन्त प्रताप सिंह[1], प्रबल प्रताप सिंह[2] एवं कामिनी सिंह[3]
[1]आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उत्तर प्रदेश
[2]बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश
[3]भा.कृ.अनु.प. – भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ, उत्तर प्रदेश
संवादी लेखक का ई–मेलः sumants605@gmail.com

खरीफ फसलों में धान के बाद मक्का प्रदेश की मुख्य फसल है। मक्का की खेती, दाने भुट्टे एवं हरे चारे के लिए की जाती है। मक्का का अधिकतर क्षेत्र वर्षा पर आधारित है, जिसके कारण उत्पादकता कम है। मक्का की अच्छी उपज के लिए आवश्यक है कि समय से बुवाई, निकाई–गुड़ाई खरपतवार नियंत्रण, उर्वरकों की संतुलित मात्रा का प्रयोग, समय से सिंचाई एवं कृषि रक्षा साधनों को उपयोग करना चाहिए। संस्तुत सघन पद्धतियां अपनाकर संकर एवं संकुल प्रजातियों की उपज सरलता से 35–40 कु. प्रति हे० प्राप्त की जा सकती है। मक्का अल्प अवधि की फसल होने के कारण बहु फसली खेती के लिए इसका अत्यन्त महत्व है।

भूमि उपयुक्तता एव खेत की तैयारी

मक्का की खेती के लिए उत्तम जल निकास वाली बलुई दोमट भूमि उपयुक्त होती है। पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा अन्य दो या तीन जुताइयां देशी हल या कल्टीवेटर या रोटावेटर द्वारा करनी चाहिए।

मक्का की उन्नतशील प्रजातियाँ

अधिकतम उपज प्राप्त करने हेतु उन्नतिशील प्रजातियों की बुआई करनी चाहिए। बुवाई के समय एवं क्षेत्र अनुकूलता के अनुसार प्रजाति का चयन करना चाहिए।

बुवाई का समय

शीघ्र पकने वाली मक्का की बुवाई जून के अन्त तक कर लेनी चाहिए। एव देर से पकने वाली मक्का की बुवाई मध्य मई से मध्य जून तक पलेवा करके करनी चाहिए। जिससे वर्षा प्रारम्भ होने से पहले ही खेत में पौधे भली भांति स्थापित हो जायें और बुवाई के 15 दिन बाद एक निराई भी कर देनी चाहिए।

बीजोपचार

बीज बोने से पूर्व यदि शोधित न किया गया हो तो 1 किग्रा० बीज को थीरम 2.5 ग्राम या 2 ग्राम कार्बेन्डाजिम से बोने से पहले शोधित कर लें।

चित्र सं 1 मक्का की खेती मक्का की दाने की आकार एवं संरचना।

तालिका सं. 1 विभिन्न क्षेत्रों के लिए संस्तुत प्रजातियों की सूची, विशेषतायें तथा उपज क्षमता निम्न तालिका में दर्शायी गई है

क्रमांक	प्रजाति का नाम	पकने की अवधि	उपज (कु./हे.)
क)संकर			
1	सरताज	100–110	45–50
2	दकन–107	90–95	40–45
3	गंगा–11	100–105	45–50
4	एच.क्यू.पी.एम.5 एच.क्यू.पी.एम.8	105–110	50–55
5	मालवीय संकर मक्का–2	90–95	40–45
6	जे.एच.–3459	80–85	35–40
7	एक्स –1123 (3342)	80–85	35–40
8	एमएमएच–113	80–85	35–40
9	विवेक संकर मक्का–27	75–80	25–30
10	बायो–9682	85–95	40–45
ख.	संकुल		
1	पूसा कम्पोजिट–2	85–90	35–40
2	नवजोत	85–90	35–40
3	आजाद उत्तम	80–85	30–35
4	प्रभात	100–110	40–45
5	सूर्या	75–80	25–30
6	कंचन	75–80	25–30
7	प्रगति	80–85	30–35
8	गौरव	80–85	30–35

भूमिदृशोधन तथा जिंक का प्रयोग

दीमक का प्रकोप जिन क्षेत्रों में होता है वहां अन्तिम जुताई पर क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. की 2.5 लीटर मात्रा को 5 लीटर पानी में घोलकर 20 किलोग्राम बालू में मिलाकर प्रति हे. की दर से बुवाई के पहले मिट्टी में मिला दें। और जिंक तत्व की कमी के कारण पत्तियों के नस के दोनों और सफेद लम्बी धारियां पड़ जाती हैं। जिन क्षेत्रों में गत वर्ष ऐसे लक्षण दिखाई दिये हों उनमें अन्तिम जुताई के साथ 20 किलोग्राम जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर की दर से भूमि में मिलाकर बीज बोना चाहिए।

बीज दर

देशी छोटे दाने वाली प्रजाति के लिए 16–18 किग्रा. संकर के लिए 20–22 किग्रा./हे. एवं संकुल प्रजातियों के लिए 18–20 किग्रा.प्रति हेक्टर।

बुवाई की विधि

बुवाई हल के पीछे कूंडों में 3.5 सेमी. की गहराई पर करें। लाइन से लाइन की दूरी अगेती किस्मों में 45 सेमी. तथा मध्यम एवं देर से पकने वाली प्रजातियों में 60 सेमी. होनी चाहिये। इसी प्रकार अगेती किस्मों में पौधे से पौधे की दूरी 20 सेमी. तथा मध्यम एवं देर से पकने वाली प्रजातियों में 25 सेमी. होनी चाहिए।

निराई–गुड़ाई एवं खरपतवार नियंत्रण

मक्का की खेती में निराई गुड़ाई का अधिक महत्व है। निराई गुड़ाई द्वारा खरपतवार का नियंत्रण होता है। पहली निराई जमाव के 15 दिन बाद कर देना चाहिए और दूसरी निराई 35–40 दिन बाद करनी चाहिए। मक्का में खरपतवारों को नष्ट करने के लिए

1. एट्राजीन 2 किग्रा. प्रति हे. अथवा 800 ग्राम प्रति एकड़ मध्यम से भारी मृदाओं में तथा 1.25 किग्रा.प्रति हे. अथवा 500 ग्राम प्रति एकड़ हल्की मृदओं में बुवाई के तुरन्त 2 दिनों में 500 ली प्रति हे. अथवा 200 ली प्रति एकड़ पानी में मिलाकर स्प्रे करना चाहिए।

2. हार्डी खरपतवारों जैसे कि वन पट्टा (ब्रेचेरिया रेप्टान्स), रसभरी (कोमेलिया वैफलेन्सिस) को नियन्त्रित करने हेतु बुवाई के दो दिनों के अन्दर एट्राटाफ 600 ग्राम प्रति एकड़. स्टाम्प 30 ई.सी. या

ट्रेफ्लान 48 ई.सी. (ट्रेफ्लूरेलिन) प्रत्येक 1 लीटर प्रति एकड़ अच्छी तरह से मिलाकर 200 लीटर पानी के साथ प्रयोग करने पर अच्छे परिणाम आते है।

कीट

1. तना छेदक कीट

इसकी पूर्ण विकसित सूंड़ी 20–25 मिमी. लम्बी, गन्दे भूरे सफेद रंग की होती है। इसका सिर काला होता है तथा शरीर पर चार भूरी धारियॉ पाई जाती है। इसका प्रौढ़ पीले भूरे रंग का होता है। इस कीट की सूड़ियॉ तनों में छेद करके अन्दर ही खाती रहती हैं। फसल के प्रारम्भिक अवस्था में प्रकोप के फलस्वरूप मृतगोभ बनता है परन्तु बाद की अवस्था में प्रकोप होने पर पौधे कमजोर हो जाते है, भुट्टे छोटे आते हैं तथा हवा चलने पर पौधा बीच से टूट जाता है। रोकथाम हेतु कार्बोफयूरान 3 जी 20 कि.ग्रा. अथवा फोरेट 10 जी० 20 किग्रा० अथवा डाईमेथोएट 30 प्रतिशत ई०सी० 1.0 ली० प्रति हे० अथवा क्यूनालफास 25 प्रतिशत ई०सी० 1.50 लीटर। उपरोक्त रसायन में से किसी एक रसायन को प्रति हे० 500–600 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिये।

2. प्ररोह मक्खी

यहा घरेलू मक्खी से छोटे आकार की होती है जिसकी सूंड़ी जमाव के प्रारम्भ होते ही फसल को हानि पहुॅचाती है। हानि के फलस्वरूप मृतगोभ बनता है। रोकथाम हेतु कार्बोफ्यूरान 3 जी 20 कि.ग्रा. अथवा डाईमेथोएट 30 प्रतिशत ई०सी० 1.0 ली० प्रति हे० अथवा क्यूनालफास 25 प्रतिशत ई०सी० 1.50 लीटर। उपरोक्त रसायन में से किसी एक रसायन को प्रति हे० 500–600 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

3. पत्ती लपेटक कीट

इस कीट की सूंड़ी हल्के पीले रंग की होती है जो पत्तियों के दोनों किनारों को रेशम जैसे सूत से लपेट कर अन्दर ही रहती है तथा अन्दर से हरे पदार्थ को खुरचकर खाती है। रोकथाम हेतु क्वीनालफॉस 30 मिलीलीटर या ट्राइजोफॉस 30 मिलीलीटर या क्लोरेन्ट्रानीलीप्रोल 3 से 4 मिलीलीटर या स्पीनोसेड 4 से 5 मिलीलीटर प्रति 15 लीटर छिड़काव करना चाहिए ।

4 कटुआ

कटुआ कीड़ा काले रंग की सूंडी है, जो दिन में मिट्टी में छुपती है। रात को नए पौधे मिट्टी के पास से काट देती है। रोकथाम हेतु कटे पौधे की मिट्टी खोदे, सुंडी को बाहर निकालकर नष्ट करें एवं स्वस्थ पौधों की मिट्टी को क्लोरोपायरीफास 10 ई सी 3 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी से भिगोए।

5 सैनिक सुंडी

सैनिक सुंडी हल्के हरे रंग की, पीठ पर धारियॉ और सिर पीले भूरे रंग का होता है। बड़ी सुंडी हरी भरी और पीठ पर गहरी धारियाँ होती हैं। यह कुंड मार के चलती है। सैनिक सुंडी ऊपर के पत्ते और बाली के नर्म तने को काट देती है। अगर सही समय पर सुंडी की रोकथाम न की तो फसल में 3 से 4 क्विंटल झाड़ कम कर देती है। अगर 4 सैनिक सुंडी प्रति वर्गफुट मिलें तो इनकी रोकथाम आवश्क हो जाती है रोकथाम हेतु 100 ग्राम कार्बरिल 50 डब्लू पी या 40 मिलीलीटर फेनवेलर 20 ई सी या 400 मिलीलीटर क्वीनालफॉस 25 प्रतिशत ई सी प्रति 100 लीटर पानी प्रति एकड़ छिड़काव करना चाहिए ।

रोग

1 पत्ती झुलसा–

पत्ती झुलसा निचली पत्तियों से शुरु होकर ऊपर की ओर बढ़ता है। लंबे, अंडाकार, भूरे धब्बे पत्ती पर पड़ते हैं, जो पत्ते की निचली सतह पर ज्यादा साफ दिखते हैं। रोकथाम हेतू 2.5 ग्राम मेन्कोजेब या 3 ग्राम प्रोबिनब य 1 मिलीलीटर फेमोक्साडोन 16.6 प्रतिशत. सायमेक्सानिल 22.1 प्रतिशत एस सी या 2.5 ग्राम मेटालैक्सिलदृएम या 3 ग्राम सायमेक्सेनिल. मेंकोजब प्रति लीटर पानी में छिड़कें 10 दिन बाद फिर छिड़काव करें।

2 भूरा धारीदार मृदुरोमिल आसिता रोग–

भूरा धारीदार मृदुरोमिल आसिता रोग में पत्ते पर हल्की हरीया पीली, 3 से 7 मिलीमीटर चौड़ी धारीयॉ पड़ती हैं, जो बाद में गहरी लाल हो जाती है। नम मौसम में सुबह के समय उन पर सफेद या राख के रंग की फंफूद नजर आती है। रोकथाम हेतु लक्षण दिखने पर मेटालेक्सिल मेंकोजेब 30 ग्राम प्रति 15 लीटर पानी का

छिड़काव करें, 10 दिन बाद पुनः दोहराएं ।

3. रतुआ

पत्तों की सतह पर छोटे, लाल या भूरे, अंडाकार, उठे हुए फफोले पड़ते है। ये पत्ते पर अमूमन एक कतार में पड़ते हैं। रोकथाम हेतु हैक्साकोनाजोल या प्रोपिकोनाजोल 15 मिलीलीटर प्रति 15 लीटर पानी में छिड़कें,15 दिन बाद पुनः दोहराएं।

4. तुलासिता रोग

इस रोग में पत्तियों पर पीली धारीयां पड़ जाती है। पत्तियों के नीचे की सतह पर सफेद रूई के समान फफूंदी दिखाई देती हैं। ये धब्बे बाद में गहरे अथवा लाल भूरे पड़ जाते है। रोगी पौधों में भुट्टे कम बनते हैं। या बनते ही नहीं हैं। रोगी पौधे बौने एवं झाड़ीनुमा हो जाते हैं। इनकी रोकथाम हेतु जीरम 80 प्रतिशत 2 किलोग्राम मैंकोजेब 75 प्रतिशत अथवा जीरम 27 प्रतिशत के 3 ली० हे० की दर से छिड़काव आवश्यक पानी की मात्रा में घोलकर करना चाहिए।

उर्वरकों का प्रयोग

देर से पकने वाली संकर औरं संकुल प्रजातियों के लिए क्रमशः 120 : 60 : 60 व शीघ्र पकने वाली प्रजातियों के लिए 100 : 60 : 40 तथा देशी प्रजातियों के लिए 80 : 40 : 40 किग्रा. नत्रजन, फास्फोरस तथा पोटाश प्रति हेक्टयर उपयोग करना चाहिए। गोबर की खाद 10 टन प्रति हेक्टेयर प्रयोग करने पर 25 प्रतिशत नत्रजन की मात्रा कम कर देनी चाहिए। बुवाई के समय एक चौथाई नत्रजन, पूर्ण फॉस्फोरस तथा पोटाश कुड़ों में बीज के नीचे डालना चाहिए। अवशेष नत्रजन तीन बार में बराबर–2 मात्रा में टापड्रेसिंग के रूप में करें। पहली टापड्रेसिंग बोने के 25–30 दिन बाद दूसरी नर मंजरी से आधा पराग गिरने के बाद अवस्था संकर मक्का में बुवाई के 50–60 दिन बाद एवं संकुल में 45–50 दिन बाद आती हैं।

जल प्रबन्धन

पौधों को प्रारम्भिक अवस्था तथा सिल्किंग से दाना पड़ने की अवस्था पर पर्याप्त नमी आवश्यक है। अतः यदि वर्षा न हो रही हो तो आवश्यकतानुसार सिंचाई अवश्य करना चाहिए। सिल्किग के समय पानी न मिलने पर दाने कम बनते है, वर्षा के बाद खेत से पानी के निकास का अच्छा प्रबन्ध होना चाहिए, अन्यथा पौधे पीले पड़ जाते है और उनकी बढवार रूक जाती है।

कटाई एवं मड़ाई

फसल पकने पर भुट्टों को ढंकने वाली पत्तियां जब 75 प्रतिशत झड़ जाएं तब पीली पड़ने लगती हैं। इस अवस्था पर कटाई करनी चाहिए। भुट्टों की तुड़ाई करके उसके पत्ती को छीलकर धूप में सुखाकर हाथ या मशीन द्वारा दाना निकाल देना चाहिए।

PGS-INDIA GREEN

गन्ने के साथ मक्का की सह-फसली/अन्तः फसली खेती से कमाएं भरपूर मुनाफा

ओम प्रकाश[1], ब्रह्म प्रकाश[1], पल्लवी यादव[2] एवं कामिनी सिंह[1]
[1]भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ, उत्तर प्रदेश
[2] चन्द्र भानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बक्शी का तालाब, लखनऊ, उत्तर प्रदेश
संवादी लेखक का ई–मेलः dromprakashiisrlucknow@gmail-com

देश की बढती जनसंख्या और बढ़ते शहरीकरण से कृषि जोत का कम होना सबसे बड़ी समस्या है। इसके अलावा खेती योग्य भूमि का जिस प्रकार से लगातार दोहन हो रहा है उससे मृदा की उर्वरा शक्ति क्षीण होती जा रही है। इसके फलस्वरूप प्रति इकाई फसलोत्पादन घटता जा रहा है। खेती के प्राकृतिक संसाधनों (मृदा, जल, वायु इत्यादि) का सदुपयोग करते हुए एक समय में आवश्यकता के अनुरूप अन्तःफसल के रूप में उगा कर ही दिन–प्रति–दिन बढती कीमतें और कम आमदनी से कृषि घाटे को कम किया जा सकता है। यदि किसान अपने पास उपलब्ध सीमित संसाधनों से अन्तः फसल उत्पादन पद्धति अपनाएं तो एकल फसल पद्धति की अपेक्षा प्रति इकाई क्षेत्र भूमि से अधिकाधिक लाभ अर्जित किया जा सकता है। गन्ना तथा मक्का की अन्तः फसल पद्धति का टिकाऊपन की उत्पादन क्षमता बढ़ाने एवं आर्थिक लाभ कमाने की दृष्टि से गन्ने के साथ हरे भुट्टों के लिए मक्का की सह–फसली खेती का विशेष योगदान है।

अंतःफसल का आशय

किसी फसल के बीच में दूसरी फसल को उगाने की विधि को अन्तःफसली सस्यन अथवा अंतर्वर्ती फसल पद्धति कहते हैं। जब दो या दो से अधिक फसलों को समान अनुपात में उगाया जाता है, तो इसे अंतःफसल कहते हैं या अलग अलग फसलों को एक ही खेत में, एक ही साथ कतारों में उगाना ही अंतःफसल कहलाता है। इस विधि से प्रथम फसल के बीच खाली स्थान का उपयोग दूसरी फसल उगाकर किया जाता है। इस प्रकार पहले उगाई जाने वाली फसल को मुख्य फसल तथा बाद में उगाई गई फसल को गौण फसल कहते हैं।

गन्ना में मक्का की अन्तःफसल उत्पादन पद्धति में फसल विविधीकरण की संभावनाएं

गन्ना भारत वर्ष की प्रमुख नकदी फसलों में से एक है। भारत में लगभग 50 लाख किसान अपनी आजीविका के लिए गन्ने की खेती पर ही निर्भर हैं और इतने ही खेतिहर मजदूर भी गन्ने के खेतों में काम करके अपनी आजीविका चलाते हैं।

मक्का मोटे अनाजों की श्रेणी की एक प्रमुख खाद्य फसल है। भारत के अधिकांश मैदानी भागों से लेकर 2700 मीटर ऊँचाई वाले पहाड़ी क्षेत्रों तक, मक्के की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। भारत में आंध्र प्रदेश, बिहार, कर्नाटक, राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में मक्के की खेती व्यापक रूप से की जाती है। राजस्थान में मक्का का सर्वाधिक क्षेत्रफल है, जबकि मक्के का सर्वाधिक उत्पादन आंध्र प्रदेश में होता हैं। जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, पूर्वोत्तर राज्यों, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, गुजरात व झारखंड में भी बड़े क्षेत्र में मक्के की खेती की जाती है। मक्का अन्य मोटे व प्रमुख खाद्यानों में सर्वाधिक वृद्धि दर दर्ज करने वाली फसल है। शरदकालीन गन्ने में मक्का की अन्तःफसल उत्पादन पद्धति में फसल विविधीकरण की निम्नलिखित संभावनायें हैं:

❖ गन्ने की बुवाई प्रायः वर्ष की तीन ऋतुओं शरदकालीन, बंसत एवं ग्रीष्मकाल में की जाती है। गन्ने के कुल क्षेत्रफल का 6–8 प्रतिशत शरदकाल में, 60–65 प्रतिशत बसंतकाल में और 20–25 प्रतिशत ग्रीष्मकालीन में बोया जाता हैं।

❖ मक्के की किस्में सूर्या एवं श्वेता बंसतकालीन गन्ने तथा फरवरी में शुरू की गई धान में मक्का की अन्तःफसल हेतु उपयुक्त पायी गयी है। क्योकि मक्का कम अवधि की फसल होने के कारण गन्ने में ब्यान्त प्रारम्भ होने के समय तक तथा अत्यधिक गर्मी पड़ने के पहले ही पक कर तैयार हो जाती है।

मक्का उपयोग के लाभ

मक्के का औषधि की तरह विभिन्न रूपों में सेवन करने से निम्नलिखित शारीरिक परेशानियों में लाभ मिलता है:

❖ मक्के को भोजन में प्रयोग करने से शरीर को कार्बोहाइड्रेट की

सारिणी 1: गन्ने के साथ मक्का की फसल को उगाने हेतु प्रमुख सस्य क्रियाएं

प्रमुख सस्य क्रिया	गन्ना हेतु	मक्का हेतु
भूमि की किस्म	देमट बलुई दोमट, काली कपास मृदा, भूरी या लाल दोमट मृदा	सभी प्रकार की मृदा में उगाया जा सकता है तथा बलुई, दोमट मिट्टी खेती के लिए बेहतर समझी जाती है
खेती की तैयारी	खेत की एक गहरी जुताई के बाद दो से तीन हैरो/कल्टीवेटर से जुताई करके खेत को भुरभुरा करने के बाद पाटा लगा लगाकर बुवाई के लिये तैयार करना चाहिए	
बीज शोधन	गन्ने के टुकड़ों को 0.25 प्रतिशत (100 लीटर पानी में 250 ग्राम) कार्बेण्डाजिम फफूंदीनाशी के घोल में लगभग 20 मिनट तक डुबोकर बुवाई करें।	2–3 ग्राम थीरम या बाविस्टीन कवकनाशी से प्रति कि.ग्रा. मक्का के बीज का शोधन करने के बाद ही बुवाई करनी चाहिए
बुवाई की दूरी, अन्तः फसल की ज्यामिती एवं बुवाई का तरीका	गन्ना को पंक्ति से पंक्ति 90 से.मी. की दूरी पर बोएं। 1:1 अथवा 1:2 पंक्ति विन्यास 90 से.मी. की दूरी पर गन्ने की बुवाई एवं इसके मध्य मक्का की एक या दो पंक्ति समायोजन कर बुवाई करें। मक्का में पौधे से पौधे की दूरी 20 से मी. रखें।	
अन्तः फसल की बुवाई का उपयुक्त समय	उत्तर भारत में गन्ना मुख्यतः शरदकालीन (अक्टूबर) और बसन्तकालीन (फरवरी/मार्च) में बोया जाता है।	भुट्टे के लिए मक्का की खेती अधिक लाभप्रद होने के कारण शरदकालीन गन्ने में अन्तःफसल के रूप में अधिक की जाती है। शरदकालीन गन्ने में मक्का की अन्तःफसल की बुवाई मध्य अक्तूबर में की जाती है।
बीज की मात्रा	गन्ने की फसल में 60 क्विंटल/हेक्टेयर बीज दर पर्याप्त होती है।	भुट्टे के लिए मक्का का 8–10 किग्रा. बीज/ हेक्टेयर पर्याप्त होता है।
पद्धति आधारित पोषक तत्व प्रबंधन	गन्ने की फसल में 150:60:60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटाश रसायनिक उर्वरक प्रति हेक्टेयर देने की संस्तुति की जाती है। रसायनिक उर्वरकों को अलग अलग समय पर देना लाभप्रद होता है: नाइट्रोजन का 1/3 भाग तथा फास्फोरस एवं पोटेशियम की सम्पूर्ण मात्र बुवाई के समय दे देनी चाहिए। 1/3 भाग नाइट्रोजन की मक्का की कटाई के बाद तथा 1/3 भाग नाइट्रोजन को गन्ने में किल्ले निकलने की अंतिम अवस्था में (मध्य जून) प्रयोग करना चाहिए।	मक्के की फसल में 120:60:40 कि. ग्रा./हेक्टेयर रासायनिक उर्वरकों की देने की संस्तुति की जाती है। रासायनिक उर्वरकों को अलग अलग समय पर देना लाभप्रद होता है: एक तिहाई भाग नाइट्रोजन, पूरी मात्रा फास्फोरस एवं पोटेशियम बुवाई के समय, एक तिहाई भाग नाइट्रोजन की मक्का के पौधे की लंबाई घुटनों तक होने पर तथा एक तिहाई नत्रजन नरमंजरी अवस्था पर प्रयोग करना चाहिए।
समय पर सिंचाई और जल निकासी का प्रबंधन	गन्ने में सिंचाई अन्तः फसल (मक्का) की आवश्यकतानुसार करते रहना चाहिए।	मक्का में 2–3 सिंचाई जीरा निकलने की अवस्था पर, रेशा आने तथा दूधिया अवस्था पर करना चाहिए।
पौध सुरक्षा	दीमक एवं अंकुर बेधक कीट की रोकथाम के लिए गन्ने के टुकड़ों को क्लोरोपायरीफॉस के 20 ईसी / 10 कि. ग्रा. सक्रिय अवयव/हे800–1000 लीटर पानी में घोल बनाकर बुवाई के तुरंत बाद नाली में गन्नों के टुकड़ों पर छिड़काव करे, रोगग्रस्त पौधों को उखाड़कर (रोगिंग) खेत से बाहर गड्ढे में डाल कर दबा दें।	

पूर्ति होने से शक्ति और गर्मी प्राप्त होती हैं।

❖ जुकाम/सर्दी/सूखी खाँसी की समस्या होने पर मक्का के भुट्टे को जलाकर राख बना लें। राख को पीस कर इसमे थोड़ा सेंधा नमक मिलाकर दिन में एक चोथाई के लगभग चम्मच भर मात्रा को तीन– चार बार गर्म पानी से लेने पर लाभ होता हैं।

❖ क्षय रोग से पीड़ित मरीजों के लिए मक्के की रोटी का सेवन फायदेमंद होता है।

❖ मक्का के भुट्टों एवं जौ को अलग–अलग जलाकर राख बना लें। मक्का एवं जौ की राख को पीसकर अलग–अलग काँच की शीशियों में रखे। एक कप ताजे पानी में मक्के की राख की दो चम्मच अच्छी तरह घोल कर एवं छानकर प्रातःकाल खाली पेट पिएँ। इसी प्रकार एक कप ताजे पानी में जौ की दो चम्मच राख घोलकर एवं छानकर शाम को खाना खाने से पहले पीने से पथरी से रोगग्रस्त व्यक्ति को आराम मिलता है एवं पेशाब साफ आएगा।

❖ पेशाब में जलन की शिकायत महसूस होने पर मक्के के भुट्टे को पानी में उबालकर तथा पानी को निथारकर उसमें मिश्री मिलाकर पीने से पेशाब में होने वाली जलन में राहत मिलेगी।

गन्ने के साथ मक्का की फसल को उगाने हेतु प्रमुख सस्य क्रियाएं

गन्ने के साथ मक्का की फसल को अन्तः फसल के रूप में उगाने के लिए प्रमुख सस्य क्रियाओं का संक्षेप में वर्णन सारिणी–1 में किया गया है।

गन्ने के साथ मक्का की अन्तः फसल से प्राप्त आर्थिक लाभ एवं लागत का तुलनात्मक विवरण

शरदकालीन गन्ने में भुट्टों हेतु अन्तः फसल मक्का की खेती करने पर या फिर गन्ने के साथ अन्य अन्तःफसलों की खेती करने पर लाभ एवं लागत का अनुपात का तुलनात्मक वर्णन सारिणी–2 में दिया गया है।

गन्ना एवं मक्का की अन्तः फसल उत्पादन पद्धति के प्रमुख लाभ

❖ फसल तथा अन्तःफसल उत्पाद मिश्रित खेती प्रणाली किसानों की बहुआयामी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है।

❖ किसानो के गृहस्थ जीवन में आवश्यक पोषण अवयव की आपूर्ति होती है।

❖ गन्ने के साथ सहफसली खेती करने से मध्यावधि में प्राप्त होने वाली आमदनी से गन्ने की खेती की अच्छी व्यवस्था की जा सकती हैं।

❖ गन्ने के साथ मक्के की सहफसली खेती करने से सम्पूर्ण वर्ष कृषक परिवार के सदस्यों विशेषकर स्त्रियों को काम मिलता रहता है।

❖ फसल भूमि के विभिन्न स्तरों से पोषक तत्व ग्रहण करती है। इससे मृदा में निहित पोषक तत्वों का कुशल उपयोग होता है।

❖ मृदा क्षरण एवं मृदा की सतह से नमीं का वाष्पीकरण रोकने में सहायता मिलती है।

❖ अन्तः फसल के अवशेष के प्रयोग से भूमि की भौतिक दशा एवं

सारिणी 2: शरदकालीन गन्ने में भुट्टों हेतु मक्का की अन्तःफसल अथवा अन्य अन्तःफसलों की लाभ एवं लागत के अनुपात का तुलनात्मक वर्णन

फसल	गन्ना उत्पादन (टन/हे.)	अन्तःफसल का उत्पादन (टन/हे.)	गन्ना समतुल्यांक उपज (टन/हे.)	शुद्ध लाभ (रूपए/हे.)	लाभ एवं लागत का अनुपात
गन्ना +	85.2	-	85.2	50199	1.63
गन्ना + राजमा	86.8	1.94	132.8	89884	2.54
गन्ना + मसूर	76.5	1.16	99.0	59629	1.73
गन्ना + सरसों	70.7	1.44	94.9	55474	1.59
गन्ना + मक्का (भुट्टा)	**78.6**	**82412***	**125.9**	**83815**	**2.34**
गन्ना + आलू	90.6	28.9	179.4	106736	1.67
गन्ना + पत्ता गोभी	103.0	3.47	166.1	98560	2.52
गन्ना + प्याज	104.0	8.69	121.0	69462	2.79

उर्वरा शक्ति में सुधार होता है।

❖ कम लागत में प्रति इकाई अधिक उत्पादन करके किसानों की आमदनी को बढाया जा सकता है।

❖ विभिन्न संसाधनों जैसे पूँजी, पानी, उर्वरक आदि का समुचित उपयोग हो जाता है।

❖ इस पद्धति से फसलों को कीट और रोगों से भी बचाया जा सकता है

❖ खरपतवारों का नियंत्रण हो जाता है।

❖ कीट रोग का प्रकोप नहीं होता है।

❖ पशुओं के लिए सन्तुलित पोषक चारा उत्पादित करने में सहायता मिलती है।

❖ तेज हवा, तेज वर्षा एवं प्राकृतिक प्रकोप एवं जंगली जानवरों से फसल की सुरक्षा करना आसान होता है।

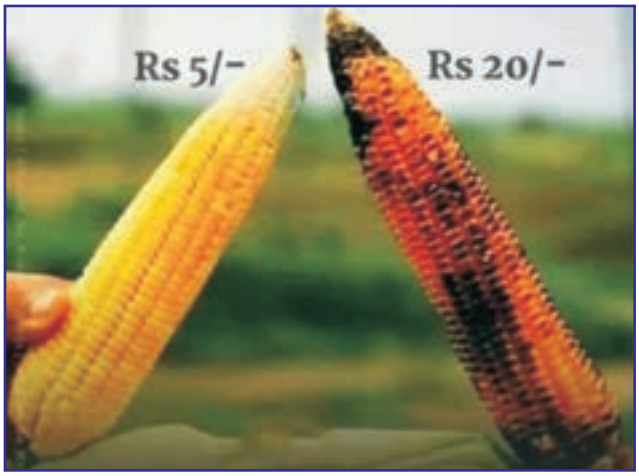

भुट्टों को भूनकर मूल्य संवर्धन

इस प्रकार, हम कह सकते है कि खेती में बढती लागत और मृदा स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए गन्ना और मक्का अन्तर्वर्ती फसलोत्पादन किसानो की आमदनी बढ़ाने अथवा दोगुना करने में मील का पत्थर सिद्ध हो सकती है।

गन्ना–मक्का की फसल

गन्ना–मक्का
(मक्का के पोंधे पर भुट्टे)

गन्ना
(मक्का कटने के बाद)

गन्ना की लहलहाती फसल

AgriApp

मध्य प्रदेश में मक्का/लोबिया/मक्का+लोबिया-आलू फसल चक्र में पोषक तत्व प्रबन्धन

शिव प्रताप सिंह[1], कल्पना शर्मा[2], संजय कुमार शर्मा[1], मुरलीधर ज सदावर्ती[1], सुभाष कटारे[1], वी के दुआ[3], संजय रावल[4], श्याम कुमार गुप्ता[1] एवं वाई पी सिंह[1]

[1]भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय आलू अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, ग्वालियर, मध्य प्रदेश उद्यान विभाग, नूराबाद, मुरैना, मध्य प्रदेश

[3]भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय आलू अनुसंधान, संस्थान, शिमला, हिमाचल प्रदेश

[4]भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय आलू अनुसंधान, संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, मोदीपुरम मेरठ, उत्तर प्रदेश

संवादी लेखक का ई–मेलः drshivpratapsingh@yahoo.co.in

मक्का को विश्व में खाद्यान्न की रानी कहा जाता हैं क्योंकि इसकी उत्पादन क्षमता खाद्यान्न फसलों में सबसे अधिक है। पहले मक्का को विशेष रूप से गरीबों का मुख्य भोजन माना जाता था लेकिन अब ऐसा नहीं है। आलू, धान एवं गेहूं के बाद यह मानव द्वारा उपभोग की जाने वाली तीसरी प्रमुख फसल है। भारत में कुल सब्जी उत्पादन में आलू का योगदान 26–30% होने से इसे सब्जियों का राजा कहा जाता है। प्रति इकाई क्षेत्र व समय में आलू विभिन्न खाद्य फसलों में सर्वाधिक उत्पादन देती है। आलू की बिजाई व खुदाई में अत्यधिक लचीलापन होने व कम अवधि की फसल होने से इसे विभिन्न फसल चक्रों में समाहित किया जा सकता है। अनुशंसित सस्य क्रियाएं अपनाकर मक्के की औसत उपज 4 से लेकर 12 टन/है तक ली जा सकती है। साथ ही लोबिया की अन्तः वर्ती फसल लेकर खरीफ का बीमा किया जा सकता है, जो किसानों को जैविक व अजैविक आपदाओं से बचाता है। फसल चक्र में मक्का, लोबिया तथा आलू फसल चक्र लेकर सर्वाधिक पोटैटो समतुल्य (इक्वैलेन्ट) उपज (50 टन/है.) प्राप्त कर सकते है। जबकि लोबिया तथा आलू फसल चक्र से लाभ : लागत अनुपात (2.53) लिया जा सकता है।

1. परिचय– मक्का को विश्व में खाद्यान्न की रानी कहा जाता हैं क्योंकि इसकी उत्पादन क्षमता खाद्यान्न फसलों में सबसे अधिक है। पहले मक्का को विशेष रूप से गरीबों का मुख्य भोजन माना जाता था लेकिन अब ऐसा नहीं है। अब इसका उपयोग मानव आहार (25%) के साथ–साथ कुक्कुट आहार (49%), पशु आहार (12%), स्टार्च (12%) तथा बीज (1%) के रूप में किया जाने लगा हैं। इसके साथ मक्का शरीर के लिए आवश्यक खनिज तत्वों जैसे कि फासफोरस, मैगनीशियम, मैगनीज, जिंक, कॉपर, आयरन, इत्यादि से भी भरपूर है। भारत में मक्का की खेती तीन ऋतुओं में की जाती है, खरीफ (जून से जुलाई), रबी (अक्टूबर से नवम्बर) तथा जायद (फरवरी से मार्च)।

भारत में लगभग 75% मक्का की खेती खरीफ के मौसम में होती हैं। गत वर्ष (2017–18) में 9.07 मीलियन हेक्टेयर क्षेत्र में मक्का उगाई गई जिसका उत्पादन 23.83 मिलियन टन तथा उत्पादकता 2627 कि.ग्रा/है. थी। विश्व के कुल मक्का उत्पादन में भारत का 3% योगदान हैं। अमेरिका, चीन, ब्राजील एवं मैक्सिको के बाद भारत का पॉचवा स्थान हैं।

यह आलू, धान एवं गेहूं के बाद मानव द्वारा उपभोग की जाने वाली तीसरी प्रमुख फसल है। भारत में कुल सब्जी उत्पादन में आलू का योगदान 26–30% होने से इसे सब्जियों का राजा कहा जाता है। प्रति इकाई क्षेत्र व समय में आलू विभिन्न खाद्य फसलों में सर्वाधिक उत्पादन देती है। आलू की बिजाई व खुदाई में

मक्का की एकल फसल

मक्का की अंतःवर्ती फसल

अत्याधिक लचीलापन होने व कम अवधि की फसल होने से इसे विभिन्न फसल चक्रों में समाहित किया जा सकता है।

2. भूमि का चयन एवं तैयारी– उचित जल निकास युक्त बलुई मटियार से दोमट मृदा जिसमें वायु संचार एवं पानी के निकास की उत्तम वयवस्था हो तथा पी.एच मान 6.5 से 7.5 के बीच हो (अर्थात् न अम्लीय हो न ही क्षारीय) में मक्का सफलतापूर्वक उगाई जा सकती हैं। खेत की तैयारी जून के दूसरे सप्ताह में शुरू कर देनी चाहिये। खरीफ फसल के लिए एक गहरी जुताई (15–20 से.मी) मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिए। जुताई का मुख्य उद्देश्य मिट्टी को भुरभुरी बनाना हैं। आलू की बिजाई के लिए खरीफ फसल की कटाई के तुरन्त बाद गहरी जुताई के बाद डिस्क हैरो से जुताई उसके बाद टिलर करके पाटा करना चाहिए।

3. बुवाई का समय एवं बीज दर– मक्के की बुवाई वर्ष भर कभी भी खरीफ, रबी एवं जायद ऋतु में कर सकते है लेकिन खरीफ ऋतु में बुवाई मानसून पर निर्भर करती हैं। प्रति है. बीज की मात्रा एवं कतार से कतार (लाइन) तथा पौधों से पौधों की दूरी निम्नलिखित सारणी में दी गई हैं।

मक्के की प्रजातियों में:

सामान्य प्रजातियाँ खरीफ– पी ए सी 751, पी ए सी 753, हाइब्रीक्स 39, हाइब्रीक्स 53,ए डी वी 756, प्रताप हाइब्रिड मेज 3, डी के सी 9126, डी 2244

सामान्य प्रजातियाँ रबी– बी एल 900, एम डी आर एच 301, एम डी आर एच 1308, राज 2020, बायो 9782

पाप कार्नः एम डी आर एच पी 1402, शालीमार पापकार्न 1, बी पी सी एच 6

शिशु मक्का खरीफः विवेक हाइब्रिड 27,

मीठी मक्काः कैन्डी खरीफ, माधुरी एच एस 1 सी

चारे के लिए मक्काः अफ्रीकन टाल, जे1006, प्रताप चरी

पाप कार्न खरीफः सेन्ट्रल मेज वी एल मीठा कार्न 1

आलू बीज की बुवाई शीतगृह से बीज निकालने के 10–15 दिन पश्चात् भली– भांति अंकुर आने पर की जानी चाहिये। बुवाई के दौरान पूर्ण कंद को बोने हेतु वरीयता देना चाहिये। यदि बीज आलू काटकर लगाया जा रहा है तो यह 40 ग्राम वजन एवं 2–3 आंखों वाला होना चाहिये। कटे हुये बीज आलू को मैनकोजैब के 0.2 प्रतिशत घोल से उपचारित कर छायादार स्थान पर सुखाकर उपचार किया जाना चाहिये। कटे हुये बीज आलू को बुवाई के लिये उपयुक्त परिस्थितियों में ही उपयोग किया जाना चाहिये। अगेती बुवाई की स्थिति में बीज को इमिडाक्लोरोपिड घोल (3 मिली/10 लीटर जल) से उपचारित करना चाहिये जिससे फसल का काली डंडी रोग से बचाव किया जा सके। अगेती आलू की बुवाई की स्थिति में कभी भी कटे हुये बीज आलू का उपयोग नही किया जाना चाहिये।

आलू का बीज दर आलू के कन्द आकार, कतार से कतार (लाइन) तथा कन्द से कन्द की दूरी पर निर्भर करता है। 40–50

ब्यौरा	सामान्य	क्यू पी एम	शिशु मक्का	मीठी मक्का	पाप कार्न	चारा मक्का
बीज की मात्रा (किलोग्राम/है.)	20 - 25	20	25 - 30	7-8	10-12	65-70
लाईन से लाईन दूरी (से.मी.)	60-75	60-75	60	75	60	30
पौधों से पौधों दूरी (से.मी.)	20-25	20-22	15-20	25-30	20	10

ग्राम के बीज कन्दों को 60 सेमी लाइन से लाइन व 20 सेमी कन्द से कन्द की दूरी पर बिजाई करने पर 3200 – 3500 किग्रा/हे. बीज की आवश्यकता पडती है। मध्य प्रदेश के लिए आलू की अनुशंसित प्रजातियों में कुफरी चन्द्रमुखी, कुफरी ख्याति, कुफरी पुखराज, कुफरी लीमा, कुफरी चिप्सोना 1, कुफरी चिप्सोना 3, कुफरी चिप्सोना 4, कुफरी बादशाह, कुफरी ज्योति इत्यादि प्रमुख हैं।

4. मक्के का बीज उपचार – नीचे दिए विवरण के अनुसार

रोग एवं कीट	कवकनाशी/कीटनाशी	प्रयोग की दर
टी.एल.बी, बी.एल.एस.बी., एम.एल.बी	1:1 के अनुपात में बाविस्टिन तथा केप्टान	2 ग्राम/किलोग्राम बीज
पाइथियम	केप्टान	2.5 ग्राम/किलोग्राम बीज
तना प्ररोह मक्खी (शूट फलाई)	इमिडाक्लोप्रिड फिप्रोनिल	4 ग्राम/किलोग्राम बीज 4 मिली लीटर/किलोग्राम बीज

आलू कन्दों का बीजोपचार कोल्ड स्टोर में बीज भंडारण से पूर्व 3% बोरिक एसिड कामर्सियल ग्रेड के घोल में 15 से 20 मिनट तक उपचारित करें। कोल्ड स्टोर से निकालने के बाद 0.2% डाइथेन एम 85 व 0.004% इमिडाक्लोप्रिड के घोल में उपचारित करें।

आलू की फसल की उत्तम वृद्धि एवं पैदावार हेतु बुलई दोमट मृदा सर्वोत्तम मानी जाती है। आलू की फसल लगाए जाने वाले खेत की मृदा का पी.एच. मान 5.5 से 7.5 के मध्य होना चाहिए। आलू की बीज उत्पादन एवं भोज्य उपयोग हेतु उगाई जाने वाली फसल में बुवाई के दौरान बीज 5–7 से.मी. की गहराई तक रखना चाहिए एवं यदि फसल प्रसंस्करण उपयोग हेतु लगाई जा रही है तब बीज की गहराई 7–10 से.मी. तक रखना चाहिए। आलू फसल की बुवाई मुख्य रूप से दो प्रकार से की जाती है। मेंड व कूड विधि एवं समतल क्यारी (फ्लेट बैड) विधि। मेंड व कूड विधि में आलू के पौधे से पौधे की दूरी 60 सेमी. एवं कंद से कंद की दूरी 30 सेमी. रखी जाती है। समतल क्यारी में पंक्ति से पंक्ति दूरी 75 सै.मी. और पौधे से पौधे की दूरी 25 सै.मी. रखी जाती है।

5. पोषक तत्व प्रबन्धनः मक्का की अधिक उपज के लिए बुवाई से पहले मिट्टी की जाँच करवाना अति आवश्यक है। भारतीय मृदाओं में नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश के अतिरिक्त कुछ सूक्ष्म तत्वों जैसे लोहा व जस्ता आदि की कई क्षेत्रों में कमी देखी गई है। बुवाई से 10–15 दिन पूर्व खेत में भली भांति सड़ी हुई 10–12 टन गोबर की खाद प्रति हेक्टेयर मिला देनी चाहिए तथा 150 से 180 किलोग्राम नाइट्रोजन, 60–70 किलोग्राम फास्फोरस, 60–70 किलोग्राम पोटाश तथा 25 किलोग्राम जिंक सल्फेट का प्रयोग किया जाना चाहिए। फास्फोरस, पोटाश और जिंक की पूरी मात्रा तथा 10 प्रतिशत नाइट्रोजन को बुवाई के समय देना चाहिये। उर्वरकों को बीज से 4–5 से.मी गहरा तथा 4–5 से.मी दूर डालना चाहिए जिससे अंकुरण पर प्रतिकुल प्रभाव ना पड़े। शेष नाइट्रोजन को चार हिस्सों में निम्नलिखित विवरण के अनुसार देना चाहिए।

- ❖ 20 प्रतिशत नाइट्रोजन फसल में चार पत्तियाँ आने के समय देनी चाहिए।
- ❖ 30 प्रतिशत नाइट्रोजन फसल में 8 पत्तियाँ आने के समय देनी चाहिए।
- ❖ 30 प्रतिशत नाइट्रोजन फसल पुष्पन अवस्था के समय देनी चाहिए।
- ❖ 10 प्रतिशत नाइट्रोजन का प्रयोग दाना भराव के समय करना चाहिए।

6. पोषक तत्व प्रबन्धन का मूल सिद्धांत– प्रत्येक तत्व का पौंधों के अन्दर अलग–अलग कार्य एवं महत्व हैं जो विभिन्न अवस्थाओं में पूर्ण होना है। कोई एक तत्व दूसरे तत्व का पूरक नहीं है। यह संतुलन बिगड़ने पर उत्पादन सीधे प्रभावित होता है। इसलिए मृदा उर्वरता का संतुलन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि फसल की मांग एवं आवश्यकता के अनुसार पौधों को आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध होते रहें, जिससे वांछित उपज मिल सके और मृदा

स्वास्थ्य सुरक्षित बना रहें। इसके लिए आवश्यकतानुसार अकार्बनिक एवं कार्बनिक स्त्रोतों से फसलों को सभी तत्वों का निश्चित अनुपात में आपूर्ति करना आवश्यक हैं। इस व्यवस्थित/तकनीक को एकीकृत पोषक तत्व प्रबन्धन की संज्ञा दी गई हैं।

आलू की अच्छी फसल लेने के लिए 20–25 टन/हे. की दर से खेत तैयारी पूर्व देना चाहिए। वैसे तो उर्वरक उपयोग मृदा जाँच के आधार पर करना चाहिए लेकिन सामान्य अनुशंसा बीज फसल के लिए 150:60:120 किग्रा/हे. क्रमशः नाट्रोजन, फास्फोरिक एसिड व पोटैशियम आक्साइड तथा भोज्य फसल के लिए 180:80:120 किग्रा/हे. क्रमशः नाइट्रोजन, फास्फोरिक एसिड व पोटैशियम आक्साइड किया गया है। प्रसंस्करण फसल के लिए अनुशंसा 270:80:150 किग्रा/हे. क्रमशः नाइट्रोजन , फास्फोरिक एसिड व पोटैशियम आक्साइड है। मृदा जाँच में जो पोषक तत्व कम हो उसकी अनुशंसित मात्रा से 30% अधिक तथा जाँच में अधिक पाये जाने पर अनुशंसित मात्रा से 30% कम देना चाहिए। नाइट्रोजन की आधी मात्रा एवं फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा बिजाई के समय कन्द से 5 सेंमी नीचे देना चाहिए तथा नाइट्रोजन की शेष बची आधी मात्रा 25–30 दिन के बीच गुड़ाई पर देनी चाहिए। यदि सूक्ष्म सिंचाई की वयवस्था हो तो एक तिहाई नाइट्रोजन व पोटाश के साथ फास्फोरस की पूरी मात्रा बिजाई के समय कन्द से 5 सेंमी नीचे देनी चाहिए तथा नाइट्रोजन व पोटाश की शेष बची दो तिहाई मात्रा को आठ भागों में बाँटकर आलू उगने के बाद प्रति सप्ताह दो बार फर्टीगेशन द्वारा देना चाहिए।यह प्रक्रिया फसल की 50–60 दिन की अवधि तक पूर्ण कर लेनी चाहिए।

7. मक्का व आलू की फसल में पोषक तत्व प्रबन्धन से लाभ–

- ❖ अधिकतम पैदावार प्राप्त करना
- ❖ पोषक तत्व को बर्बादी से बचाना
- ❖ विषैलापन तथा प्रतिक्रियाओं से बचाना, किसी एक तत्व की अधिकता भी विषैलापन पैदा करती है।
- ❖ मृदा की उत्पादकता एवं स्वास्थ्य बनाये रखना।
- ❖ गुणात्मक उत्पादन।
- ❖ वातावरण की विपरीत परिस्थितियों से बचाव।
- ❖ कीड़े मकोड़ों के प्रभाव को प्राकृतिक तौर पर कम करना।
- ❖ लाभ/लागत अनुपात में वृद्धि।

8. अन्तः फसल– अन्तः फसल एक तरह का बीमा है, जो किसानों को जैविक व अजैविक आपदाओं से बचाता है। मक्का के साथ कम अवधि में पकने वाली दलहनी फसलें जैसे मूंग, उडद, लोबिया, अरहर, तिलहनी फसलें जैसे मूंगफली, सोयाबीन तथा सब्जियाँ एवं फूल आदि फसलें ली जा सकती है।

अन्तः फसली खेती में मुख्य फसल की निर्धारित उर्वरक की मात्रा का प्रयोग करना चाहिए।

मक्का तथा अन्तः फसल की दो – दो या मक्का की दो एवं अन्तः फसल की एक पंक्ति बोनी चाहिए।

खरपतवारों का नियन्त्रण अन्तः फसल में निराई गुड़ाई से करना चाहिए।

शाकनाशी रसायनों के इस्तेमाल में अन्तः फसल पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

9. खरपतवार प्रबंधन : मक्का फसल को शुरूआती अवस्था में खरपतवार रहित होना चाहिए अन्यथा उत्पादन में कमी आती है। मक्का की फसल में एट्राजिन 1 किलो ग्राम प्रति हेक्यर बुवाई के बाद परन्तु उगने के पूर्व उपयोग करें।

आलू की फसल में खरपतवार नियन्त्रण के लिए बिजाई के बाद 500 ग्रा मेट्रीब्यूजिन सक्रिय तत्व 600 लीटर पानी में घोल बनाकर छिडकाव करना चाहिए।

10. जल प्रबंधन– मक्का एक ऐसी फसल है जो न सूखा सहन कर सकती और न ही अधिक पानी सहन कर सकती है। पहली सिंचाई में पानी मेड़ों के ऊपर से नहीं बहना चाहिए। सामान्य रूप से नालियों में रिजेज/क्यारियों के दो तिहाई ऊँचाई तक ही पानी देना लाभदायक रहता है। सिंचाई की दृष्टि से नई पौध, घुटनों तक की ऊँचाई, फूल आने तथा दाने भराव की अवस्थाएँ सबसे संवेदनशील होती है। आलू की फसल में उपलब्ध नर्मी के 70% पर आते ही सिंचाई करनी चाहिए। सिंचाई में ध्यान रहे कूंड़ के दो तिहाई हिस्से तक ही सिंचाई करें, इस प्रकार पाँच – छः सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है।

11. फसल सुरक्षा

कीट प्रबंधन

तना भेदक : इन्डोसल्फान 2 मिली (35 ई.सी.) प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए या गोभ में उचित जगह पर

कार्बोफ्यूरान 3 जी डालना चाहिए या पौध जमने के 10–12 दिन के पश्चात प्रति हेक्टेयर 8 ट्राइकोकार्ड रिलीज करने से भी रोकथाम की जा सकती है।

दीमक– दीमक के प्रकोप वाले क्षेत्रों में क्लोरपाइरीफास से उपचारित बीजों का प्रयोग करना चाहिए। पहली फसल के अवशेष खेत में नहीं रहने देने चाहिए। हल्का पानी लगाने के बाद फिप्रोनिल के दाने उचित जगह पर डालने चाहिए।

12. व्याधियाँ (बीमारियों का प्रबंधन)

डाउनी मिल्ड्यू (मृदुल रेमिल आसिता)– एप्रोन 35 एस.डी. का 2.5 ग्राम/किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार करें तथा सिस्टेमिक फफूंदनाशी जैसे कि मेटालैक्सिल, रीडोमिल 25 डब्ल्यू. पी. का छिड़काव रोग के लक्षण दिखाई देने से पहले करने पर रोग का प्रकोप कम किया जा सकता है।

टर्सिकम लीफ ब्लाइट– रोगी पौधों की निचली पत्तियों पर लंबे चपेट स्लेटी या भूरे रंग के धब्बे दिखायी देते है जो धीरे–धीरे ऊपर की ओर बढ़ते हैं। इनके उपचार के लिए 8–10 दिन के अन्तराल पर एक लीटर पानी में 2.5 से 4 ग्राम मैंनकोजेब मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।

मेडिस लीफ ब्लाइट : पत्तियों की शिराओं के बीच में पीले भूरे अंडाकार धब्बे बन जाते हैं जो बाद में लंबे होकर चौकोर हो जाते हैं। रोग के लक्षण दिखते ही 8–10 दिन के अन्तराल पर एक लीटर पानी में 2.4 से 4.0 ग्राम डाइथेन एम–45/जिनेब मिलाकर छिड़काव करें।

बैंडेड लीफ एवं शीथ ब्लाइट– इस रोग में पत्तों व शीथ पर चौड़ाई के रूख स्लेटी या भूरे रंग की गहरी पट्टियाँ दिखाई देती है। भूमि को छूने वाली 2–3 रोगी पत्तियों को शरू में ही तोड़ देने से एवं 30 से 40 दिन की फसल पर 10 ग्राम राइजोलेक्स 50 डब्ल्यू जी प्रति 10 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करने से रोकथाम की जा सकती है।

आलू में कीट व बीमारियों के प्रबन्धनः आलू में बीज की फसल सुरक्षा हेतु माँहू इत्यादि कीडों से बचाव के लिए इमिडाक्लोप्रिड की 4 मिली. दवा को 10 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए। इस दवा को थायोमेथेक्सोन 200 ग्रा./हे. व ट्रायजोफॉस– 130 ग्रा./हे से क्रमशः बदलकर छिड़काव करना चाहिए। छिडकाव 400 – 600 लीटर पानी में क्रमशः पहला, दूसरा व तीसरा छिड़काव 10–12 दिन के अन्तराल से करना चाहिए । फिर इसी क्रम को जारी रखना चाहिए । फसल को बीमारियों से सुरक्षा प्रदान करने हेतु मैंकोजेब (75 प्रतिशत वेटेबल पाउडर) दवा की 2 किग्रा./है. की दर से 10–12 दिन के अन्तराल से छिड़काव करना चाहिए। यदि पछेती झुलसा के आने की खबर मिले तो रिडोमिल 3 कि.ग्रा./है. या कर्जेट 3 कि.ग्रा./है. की दर से छिडकाव मैंकोजेब के स्थान पर करना चाहिए। इसमें भी पानी की मात्रा 400 से 600 लीटर/है. रखते हैं। फसल की मांहू से सुरक्षा हेतु गुडाई व मिट्टी चढाने के दौरान कार्टेप हाइड्राक्लोराइड 20 कि. ग्रा./है. की दर से उपयोग किया जाना चाहिए जिससे आलू की बीज फसल में मांहू द्वारा संचरित किये जाने वाले रोगों से बचाव किया जा सकता है। आलू की फसल में दीमक नियंत्रण करने हेतु

फोटोः आलू में लगने वाली बीमारियाँ

कॉमन स्कैब (खुरण्ड)

काली चूर्णी (ब्लैक स्कर्फ)

अगेती झुलसा

पिछेती झुलसा

फोटोः आलू में लगने वाले कीड़े

मांहू हॉपर कटुआ कीट पत्ती खाने वाली इल्ली

क्लोरपाइरीफास 20 ई सी. का 2,500 ली./है. की दर से उपयोग किया जाना चाहिए। स्टेम नेक्रोसिस से फसल की सुरक्षा के लिए 4 मिली. इमिडाक्लोप्रिड दवा का घोल बनाकर बीजोपचार करके बुवाई करनी चाहिए। बुवाई के बाद 21 व 35 दिन पर इसी दवा का 0.004 प्रतिशत का घोल बनाकर छिडकाव करना चाहिये। खेत में उचित नमी बनाये रखने व धान के पुआल की मल्चिंग करने से भी इस बीमारी को कुछ हद तक नियंत्रित किया जा सकता है।

13. मक्के की कटाई व उपज– प्रजाति के आधार पर फसल के कटाई की अवधि होती है, जैसे मक्के की चारे वाली फसल को बोने के 60–65 दिन बाद, दाने वाली देशी किस्म बोने के 75–85 दिन बाद व संकर एवं संकुल किस्म बोने के 105–110 दिन बाद करना होता है। जब भुट्टो को ढ़कने वाली पत्तियाँ पीली पड़ने लगे (दानों में 25–30 प्रतिशत नमी) तब मक्का की कटाई करनी चाहिए। भुट्टों को शेलिंग (दाना निकालना) के पहले धूप में सुखाया जाए तथा दानों में 13–14 प्रतिशत नमी होने पर शेलिंग की जाए। उचित भण्डारण के लिए दानों को सुखाने की प्रक्रिया तब करनी चाहिए जब तक कि उनमें नमी का अंश लगभग 8–10 प्रतिशत न हो जाये और इन्हें वायु प्रवाहित जूट के थैलों में रखना चाहिए।मक्के की उपज बुआई के मौसम, उगाई गई प्रजाति, व अन्य कारकों से प्रभावित होती है। मक्के की औसत उपज 4 टन से लेकर 12 टन/हे तक है।

14. आलू की उपज व खुदाई उपरान्त प्रबंधनः आलू की उपज उसकी किस्म, उगाने के स्थान, इत्यादि पर निर्भर करता है। मध्य प्रदेश की औसत उपज 22.1 टन/हे है। खुदाई उपरान्त क्षतिग्रस्त कंदों एवं पिछेती झुलसा, शुष्क गलन एवं मृदुल गलन से संक्रमित कंदों को अलग कर देना चाहिये एवं उपज को वृहद आकार (55 मि.मी. अथवा 125 ग्राम से बडे), मध्यम/बीज आकार (30–55 मि.मी. अथवा 25 से 125 ग्राम तक) एवं लघु आकार (30 मि.मी. अथवा 25 ग्राम से छोटे) बाजार उपयोग के आधार पर श्रेणीकरण किया जाना चाहिये।

अतःवर्ती फसल चक्र व उर्वरक प्रबन्धन का आलू की उत्पादकता पर प्रभावः लोबिया – आलू, लोबिया+मक्का – आलू एवं मक्का आलू फसल चक्र को 150%, 125%, 100 नाइट्रोजन फास्फोरस व पोटाश की अनुशंसित, 75% अकार्वनिक व 25% गोवर की खाद, 50% अकार्वनिक व 50% गोवर की खाद के उपयोग से उत्पादन लिया गया । इसमें लोविया आलू फसल चक्र 75% अकार्वनिक व 25% कार्वनिक से आलू कन्दों में अधिकतम प्रोटीन 75% पाई गई। जबकि आलू में शुष्क पदार्थ की मात्रा 21. 11% मक्का. लोबिया – आलू फसल चक्र में पाई गई। लोबिया – आलू फसल चक्र तथा 75% अकार्वनिक. 25% कार्वनिक पोषण की फसल वृद्धि दर सर्वाधिक थी। मक्का. लोबिया – आलू फसल चक्र में सर्वाधिक पोटैटो समतुल्य (इक्वैलेन्ट) उपज प्राप्त हुई (50 टन/है.)। लोबिया – आलू फसल चक्र का लागत : लाभ अनुपात (2.53) सर्वाधिक था। उर्वरकों के उपयोग में उक्त फसल चक्रों में अकार्बनिक 75% गोवर की खाद 25% के अन्तर्गत सर्वाधिक 2.47 थी।

फोटोः आलू की विभिन्न सस्य क्रियाएं

प्लान्टर से आलू की बिजाई

रिज फरो विधि से सिंचाई

बूँद–बूँद सिंचाई

खरपतवारों का रासायनिक नियंत्रण

फसल विविधीकरण

आलू के ढेर

तालिकाः मक्का/लोबिया/मक्का+लोबिया – आलू फसल चक्र में पोषक तत्व प्रबन्धन का समतुल्य (इक्वैलेन्ट) उपज व लाभ : लागत पर प्रभाव

उपचार	समतुल्य (इक्वैलेक्ट) उपज (टन/हे.)	लागतःलाभ अनुपात
फसल चक्र		
लोबिया–आलू	44	
लोबिया+मक्का–आलू	54	141
मक्का–आलू	44	116
उर्वरक प्रबन्धन		
150% नाइट्रोजन फास्फोरस व पोटाश	51	137
125% नाइट्रोजन फास्फोरस व पोटाश	49	137
100% नाइट्रोजन फास्फोरस व पोटाश	46	132
75% अकार्बनिक व 25% गोबर की खाद से	49	147
50% अकार्बनिक व 50% गोबर की खाद से	41	130

साईलेजः पशुओं के लिए चारा और फीड सुरक्षा हेतु बेहतर विकल्प

प्रदीप कुमार[1], बी.एस. जाट[1], भारत भूषण[1], सुमित कुमार अग्रवाल[1], सुधीर कुमार[2], मनेश चन्द्र डांगला[1] एवं मुकेश चौधरी[1]

[1]भा.कृ.अनु.प. – भारतीय मक्का अनुसधान सस्थान, लुधियाना, पंजाब
[2]भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि जैव प्रौद्योगिकी संस्थान, रांची, झारखंड
'संवादीलेखक का ई–मेल– pardeepkumar656@gmail.com

भारत भौगोलिक क्षेत्रफल के हिसाब से दुनिया का सातवाँ सबसे बड़ा देश है जो विश्व के कुल क्षेत्रफल का 2.4 प्रतिशत है जिसमे विश्व की कुल जनसँख्या का लगभग 17% हिस्सा भारत में निवास करता है। भारतीय अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है और राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद में लगभग 17.68 प्रतिशत योगदान देता है। भारत में कृषि के साथ पशुपालन भी एक प्रमुख व्यवसाय है। भारत में कृषि उत्पादन प्रणाली फसलों और पशुधन की मिश्रित खेती पर आधारित है। पारिवारिक आय बढ़ाने के लिए किसान अपने संसाधनों के उपयोग में विविधता लाने के लिए इन दोनों उद्यमों को मिलाते हैं। पशुधन उत्पादन भारतीय कृषि की रीढ़ है जो राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद में 7% का योगदान देता है और ग्रामीण क्षेत्रों में 70% आबादी के लिए रोजगार और अंतिम आजीविका का स्रोत है। पशुधन की संख्या के आधार पर भारत पहले नंबर पर है जो विश्व की कुल पशुधन आबादी का लगभग 11% है। भारत दूध उत्पादन में भी पहले स्थान पर है, लेकिन उत्पादकता (प्रति पशु दूध उत्पादन और अन्य पशुधन उत्पादों के मामले में) भारत कई देशों से बहुत पीछे है। पशुधन की कम उत्पादकता चिंता का विषय है और इसका मुख्य कारण भारत में गुणवत्ता वाले फीड और चारे की अपर्याप्त आपूर्ति है। भारत में चारा उत्पादन के क्षेत्र में विगत वर्षों में गिरावट आई है जिसके परिणामस्वरूप पशुधन के लिए 35.6 प्रतिशत हरा चारा कम हो गया है। यदि भविष्य में यह स्थिति रही तो भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद (विजन 2050) के अनुसार भारतीय पशुधन को हरे चारे की उपलब्धता में 67 फीसद की कमी आ जाएगी। भारत में उष्णकटिबंधीय जलवायु के कारण, किसानों को नियमित रूप से साल में लीन अवधि (नवंबर–दिसंबर और मई–जून) के दौरान हरे चारे की भारी कमी का सामना करना पड़ रहा है। चारे की उपलब्धता और इसकी गुणवत्ता पशुधन उत्पादकता और स्वास्थ्य के साथ–साथ लाभप्रदता को नकारात्मक रूप से प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक हैं। इस परिदृश्य से बचने के लिए लीन अवधि के दौरान पशुओं को खिलाने के लिए पर्याप्त गुणवत्ता वाले चारे को साईलेज के रूप में संरक्षित किया जा सकता है जिससे पशुओं के वर्ष भर अच्छी गुणवत्ता वाला चारा मिलता रहेगा। हरे चारे के महत्व को इस बात से समझा जा सकता है कि दूध देने वाले पशुओं के रखरखाव और प्रबंधन की लागत का लगभग 60 प्रतिशत से अधिक का खर्चा केवल चारा और अनाज में आता है। अतः डेयरी पशुओं को महंगे सांद्र फीड खिलाने की बजाय पर्याप्त मात्रा में चारा उपलब्ध कराकर दुग्ध उत्पादन की लागत को काफी कम किया जा सकता है (विजन 2050)।

मक्का घुलनशील शर्करा और स्टार्च की उच्च सांद्रता वाला साईलेज तैयार करने के लिए सबसे उपयुक्त फसल है। फीड सामग्री की लागत में लगातार वृद्धि और सीमित उपलब्धता को देखते हुए, हरे चारे को डेयरी पशुओं के लिए पोषक तत्व उपलब्ध कराने का एक किफायती स्रोत माना जाता है । हालांकि अनुसंधानों द्वारा प्रति हेक्टेयर भूमि पर हरित चारा की उत्पादन वृद्धि पर जोर दिया गया है तथा विशेष रूप से लीन अवधि के दौरान पशुओं की खाद्य नियमित आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए हरे चारे का संरक्षण करना भी उतना ही महत्वपूर्ण है । साईलेज के रूप में हरे चारे का संरक्षण करके वर्ष के विभिन्न मौसमों में पशुओं को गुणवत्तापूर्ण चारे की नियमित आपूर्ति सुनिश्चित कर सकते हैं ।

साईलेज क्या हैः साईलेज संरक्षित हरा चारा है जिसमें 65 से 70 प्रतिशत नमी की मात्रा होती है। घुलनशील कार्बोहाइड्रेट से भरपूर चारा फसलों को काटकर अवायवीय परिस्थितियों में 45–50 दिनों तक ऊष्मानिकरण किया जाता है । चारे में मौजूद शर्करा लैक्टिक एसिड में परिवर्तित हो जाती है, जो एक परिरक्षक और पशुओं की आंत में रहने वाले सूक्ष्मजीवों के लिए आसानी से किण्वित होने

वाली शर्करा के एक अच्छे स्रोत के रूप में कार्य करता है। उचित भंडारण परिस्थितियों के तहत, साईलेज को दो साल तक भी संग्रहीत किया जा सकता है। अच्छी गुणवत्ता के साईलेज में कोई ब्यूटिरिक अम्ल नहीं होना चाहिए क्योकि ये साईलेज के स्वाद को खराब कर देता है। उचित अवायवीय स्थितियों अभाव में उत्पादित साईलेज में ब्यूटिरिक अम्ल की मात्रा बढ़ जाती है।

साईलेज का महत्वः हरा चारा पशुपालन का एक महत्वपूर्ण घटक है। डेयरी क्षेत्र की वृद्धि मुख्य रूप से पौष्टिक हरे चारे की उपलब्धता पर निर्भर करती है। मक्का सबसे अधिक पौष्टिक हरे चारे में से एक है। चारे के रूप में मक्का की उच्च स्वीकार्यता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि यह किसी भी पोषण–विरोधी घटक से मुक्त है। मक्का की बढ़वार जल्दी होती है और अधिक बायोमास प्राप्त करता है। मक्का की खेती भारत के विभिन्न हिस्सों में वर्षभर की जाती है जिससे पशुधन उत्पादकों को मक्का से एक उच्च उपज के साथ अच्छी मात्रा में और वर्ष भर नियमित रूप से हरा चारा मिलता है मक्का में पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन और खनिज होते हैं जिससे मक्का साईलेज पशुओं के लिए भी अत्यधिक सुपाच्य और स्वादिष्ट फीड के रूप में जाना जाता है। साईलेज के लिए उगाई जाने वाली किसी भी अन्य फसल की तुलना में मक्की साईलेज प्रति एकड़ अधिक ऊर्जा पैदा प्रदान करने वाली फसल है। मक्का साईलेज डेयरी गायों के लिए एक उच्च ऊर्जा वाले चारे के रूप में कार्य करता है। यह अधिक उत्पादन देने वाली गौ–शालाओं के लिए और उच्च गुणवत्ता वाला चारा बनाते समय खेतों पर आने वाली समस्याओं तथा बाजार में खरीदने की समस्याओं को हल करने की द्रष्टि से महत्वपूर्ण है। मक्का साईलेज, अपनी अपेक्षाकृत उच्च ऊर्जा सामग्री के साथ–साथ कम लागत के कारण पशुओं में वजन बढ़ाने के लिए अनुकूलित है। अन्य चारा फसलों की तुलना में मक्का साईलेज का उत्पादन करने के लिए प्रति टन कम श्रम की आवश्यकता होती है। साईलेज मक्का फसल की कटाई अवधि का विस्तार करने के साथ तनावग्रस्त या क्षतिग्रस्त मक्का क्षेत्र को उबारने में मदद प्रदान कर सकता है। इसके अलावा, साईलेज से पौधों के पोषक तत्वों विशेष रूप से बड़ी मात्रा में नाइट्रोजन और पोटेशियम को पुनरावृत्त किया जा सकता है। हालांकि मक्का साईलेज के कुछ नुकसान भी हैं, बहुत दूर तक विपणन और परिवहन करना मुश्किल है लेकिन हरे चारे की तुलना में आसान है, मक्का साईलेज से मृदा क्षरण की संभावना भी बढ़ सकती है तथा मृदा संरक्षण पद्धतियां उत्पादन प्रणालीयों के अभाव में मृदा उत्पादकता में गिरावट आ सकती है।

मक्का संकरों का चयनः साईलेज उत्पादन के लिए चयनित मक्का संकरों में गुणवत्ता वाले साईलेज की उच्च पैदावार का उत्पादन की क्षमता होनी चाहिए। गुणवत्ता वाले साईलेज उत्पादन के लिए संकर का चयन उसकी उत्पादन क्षमता और साईलेज प्रदर्शन परीक्षणों से किया जा सकता है। लेकिन, साईलेज उत्पादन और चारा गुणवत्ता के परीक्षण संबंधी जानकारी सीमित मात्रा में उपलब्ध है। कई अध्ययनों से पता चला है कि अकेले अनाज उपज से अच्छे साईलेज संकर के संकेत नहीं मिलते है। मक्का साईलेज उपज क्षमता को अधिकतम प्राप्त करने के लिए, अपने क्षेत्र के लिए एक सापेक्ष परिपक्वता रेटिंग के साथ संकर का चयन करें जो अन्य संकरों की तुलना में 10 दिन ज्यादा अवधि की हो। इन संकरों में अक्सर मानक परिपक्वता संकरों की तुलना में 2 से 4 टन/एकड़ उपज लाभ होता है। किसी विशेष खेत के लिए चयनित संकर की परिपक्वता सीमा अवधि पर सावधानीपूर्वक विचार किया जाना चाहिए। खासकर अगर फसलों को काटा जाना है तो परिपक्वताओं की एक श्रृंखला का चयन फसल में नमी की मात्रा में काफी भिन्नता पैदा कर सकता है।

साईलेज के लिए संकर के प्रकार

पारंपरिक संकर शुष्क पदार्थ और फाइबर पाचन में भिन्नता प्रदर्शित करते हैं। कई बीज कंपनियों ने अपने मौजूदा पारंपरिक संकर का शुष्क पदार्थ और फाइबर पाचन के लिए मूल्यांकन किया है और साईलेज उत्पादन के लिए अनुशंसित संकरों की एक सूची जारी की है । औसत से अधिक शुष्क पदार्थ और फाइबर पाचन के साथ उच्च उपज के लिए संकरों को खोजना संभव है। चुनौती यह भी है कि केवल थोड़े से स्वतंत्र परीक्षण के डेटा उपलब्ध है । सबसे अच्छे पारंपरिक संकर की पहचान करने के लिए अनुसंधान आधारित बीज कंपनी की सिफारिशों को अपनायें और साईलेज के शुष्क पदार्थ और फाइबर पाचन की निगरानी के द्वारा अनुवर्ती कार्रवाई करें। पत्तेदार संकरों में एक जीन होता है जो साईलेज में पत्ती की मात्रा को बढ़ाता है। इन में सामान्य संकर मक्का की तुलना में भुटटे के ऊपर 8–12 पत्तियां होती है। पत्तेदार संकर विभिन्न विशेषताओं में कुछ हद तक भिन्न होते हैं, जो पारंपरिक

संकरों के समान या बेहतर उपज देते हैं जिनके दाने काफी नरम होते हैं जिनको सूखने में समय लगता हैं। कुछ पत्तेदार संकरों में पारंपरिक संकर की तुलना में अधिक स्टार्च और अधिक फाइबर हो सकता है। पत्तेदार संकरों की पाचन क्षमता और फाइबर पाचन रेटिंग ने पारंपरिक संकरों की तुलना में मिश्रित परिणाम दिखाए हैं। पत्तेदार जीनोटाइप के बीच काफी भिन्नता होती है, इसलिए कुछ पत्तेदार संकर केवल साईलेज उपयोग के लिए ही डिजाइन किए गए हैं जबकि कुछ में अपेक्षाकृत तेज गति से सूखने की दर होती है।

ब्राउन मिडरिब संकरों में बेहतर फाइबर पाचनशक्ति होती है, कुछ फीडिंग परीक्षणों से पता चला है कि इन संकरों के उपयोग से प्रति गाय कई पाउंड तक दूध उत्पादन बढ़ सकता है । ब्राउन मिडरिब संकर, पारंपरिक संकरों की तुलना में लगभग 10 से 40 प्रतिशत कम तक उपज होती है । बीज की अधिक कीमत एवं कम उपज के कारण इन संकरों को अपनाने की दर सीमित है। यदि प्रति गाय दूध उत्पादन में लगातार 2 से 3 पाउंड की वृद्धि प्राप्त की जा सकती है, तो इनकी कम साइलेज पैदावार से जुड़ी लागतों की भरपाई हो जाएगी। जब इस साईलेज को अलग से संग्रहित किया जाता है तो बीएमआर संकरो के आर्थिक लाभों को अधिकतम प्राप्त कर फाइबर पाचन क्षमता का लाभ उठाने के लिए अनुपात को सावधानीपूर्वक संतुलित किया जाता है। पेंसिल्वेनिया में मोमी मक्का को साईलेज के लिए एक सीमित क्षेत्र पर उगाया जाता है । मोमी मक्का के दाने में सामान्य मक्का के 75 प्रतिशत एमाइलोपेक्टिन स्टार्च के मुकाबले 100 प्रतिशत एमाइलोपेक्टिन स्टार्च (शाखित–श्रृंखला ग्लूकोज अणु) होता हैं। कुछ परीक्षण परिणामों में मोमी मक्का और मक्का साईलेज की अधिक फीड क्षमता का पता चला है, जबकि अन्य परीक्षण परिणामों में मोमी मक्का और सामान्य मक्का के बीच कोई अंतर नहीं है। मोमी संकर मक्का, पारंपरिक सामान्य संकर मक्का की तुलना में समान या थोड़ी कम पैदावार देती है।

साइलेज के लिए गुणवत्ता मानक

विभिन्न संकरों में चारे की गुणवत्ता भी भिन्न–भिन्न हो सकती है। कई मक्का बीज कंपनियां अपने संकर की विशेषताओं में पूरे पौधे की पाचनशक्ति, फाइबर पाचनशक्ति, और स्टार्च पाचनशक्ति आदि के विषय में वर्णन करती हैं। इन विट्रो (टेस्ट ट्यूब में) या इन सीटू (गाय के पेट में) पाचन माप ऊर्जा मूल्य का सबसे यथार्थ संकेत प्रतीत होते है। दोनों प्रणालियों के विश्लेषण में पेशेवरों की राय पक्ष और विपक्ष में हैं। इन विट्रो विधियां आसानी से दोहराने योग्य हैं लेकिन ये वास्तविक साईलेज के साथ–साथ इन–सीटू विधियों का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती हैं। इन–सीटू विधियाँ प्रयोगशालाओं और तरीकों के साथ बहुत अलग और अधिक महंगी होती हैं। अन्य अनुमानों की तुलना में नेट एनर्जी लैक्टेशन या कुल सुपाच्य पोषक तत्व, जो एसिड डिटर्जेंट फाइबर पर आधारित हैं, सिलेज के ऊर्जा मूल्य का अधिक सटीक अनुमान लगाते हैं। कुछ वैज्ञानिकों ने सुझाव दिया है कि यह न केवल कुल पाचन की सीमा है बल्कि पाचन की दर भी है जो एक संकर की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। हालांकि, विभिन्न संकरों की पाचन दरों के महत्व को अभी तक अच्छी तरह से निर्धारित नहीं किया गया है। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि फीड आंकलन के लिए इन विट्रो विधि के लिए एक मानक अनुमोदित है, लेकिन इन सीटू विधि में कोई मानक स्थापित नहीं किया गया है। फाइबर पाचन क्षमता शायद पूरे पौधे की पाचन क्षमता से भी अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि चारे के फाइबर संघटक की पाचन क्षमता कुछ डेयरियों पर दुग्ध उत्पादन को सीमित करती है। चारे की कुल ऊर्जा (पाचन) में एक बिंदु तक ही अनाज की मात्रा बढ़ाकर बदली जा सकती है, लेकिन फाइबर की पाचनशक्ति और अन्य गुणों को समायोजित करना अधिक कठिन है। फाइबर पाचन क्षमता उन जगहों पर सबसे महत्वपूर्ण है जहां मक्का साईलेज राशन में चारे का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनता है । फाइबर पाचन क्षमता में बढ़ोतरी उच्च उत्पादक गायों में दूध देने के शुरू के दिनों में उनकी उच्च ऊर्जा और शुष्क पदार्थ सेवन की मांग के कारण सबसे अधिक होती है ।

संकर मक्का की स्टार्च पाचन क्षमता भी भिन्न हो सकती है। हालांकि, इसका संभावित प्रभाव अभी तक अच्छी तरह से समझ में नहीं आया है। स्टार्च पाचन क्षमता न केवल बीज के प्रकार से प्रभावित होती है, बल्कि परिपक्वता, बीज के प्रसंस्करण और भंडारण में समय की अवधि से भी प्रभावित होती है। इसके अलावा, स्टार्च पाचन की इष्टतम दर राशन के आधार पर भिन्न–भिन्न हो सकती है, कुछ मामलों में, मक्का साईलेज में आसानी से उपलब्ध स्टार्च होना वांछनीय हो सकता है, जबकि अन्य मामलों में स्टार्च

की धीरे–धीरे उपलब्धता वांछनीय हो सकती है। संकर मक्का दाने में कठोर और नरम स्टार्च की मात्रा में भिन्न होते हैं, जो स्टार्च की उपलब्धता को प्रभावित कर सकते हैं। स्टार्च के लिए संकरों के बीच बीज का अंतर सबसे अधिक स्पष्ट तब होता है जब फसल काली परत के करीब पहुंचती है।

पौधों की संख्या

मक्का साईलेज के लिए वांछित पौधों की संख्या संकर की उत्पदकता और मिट्टी की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। आम तौर पर, साईलेज मक्का के लिए पौधों की संख्या अनाज के लिए अनुशंसित की गई संख्या की तुलना में प्रति एकड़ 2,000 से 4,000 अधिक पौधे होने चाहिए। इसके परिणामस्वरूप अधिकांश मिट्टीयों में प्रति एकड़ 26,000 से 32,000 पौधों की संख्या होगी। इस श्रेणी में पौधों की संख्या सबसे अधिक उत्पादक मृदाओं पर उपयुक्त है।

पेंसिल्वेनिया केन्द्र में आयोजित दो साल के परीक्षण ने संकेत दिया कि प्रति एकड़ 42,000 पौधों की संख्या से साईलेज की अधिकतम पैदावार थी। लेकिन अनुमानित दूध उत्पादन/एकड़, उपज और पूरे पौधे की पाचनशक्ति दोनों को देखते हुए, प्रति एकड़ 30,000 पौधों में अधिकतम पाया गया, क्योंकि उच्च आबादी के साथ पाचन क्षमता में गिरावट मिली।

कटाई का चरण

मक्का साईलेज गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले सबसे महत्वपूर्ण कारकों में से एक फसल के समय नमी की मात्रा है। मुख्य रूप से, मक्का साईलेज को उपयोग की गयी साइलो के के अनुसार उपयुक्त नमी मात्रा पर काटा जाना चाहिए। अनुशंसित नमी मात्रा में क्षैतिज साइलो के लिए 65–70 प्रतिशत, पारंपरिक टॉवर साईलोज के लिए 63–68 प्रतिशत, सीमित ऑक्सीजन साइलो के लिए 55–60 प्रतिशत और साइलो बैग के लिए 65 प्रतिशत है। फसल शुष्क पदार्थ की पैदावार 65 प्रतिशत नमी के पास होने पर अधिकतम होती है तथा चारा, भंडारण और कटाई के दौरान कम किया जा सकता है। फसल की कटाई में देरी से फाइबर और स्टार्च दोनों की पाचन क्षमता कम हो सकती है क्योंकि पौधे के हिस्से अधिक लिग्निफाइड हो जाते है और बीज के ज्यादा पकने की वजह से कठोर हो जाता है और यदि एनसिलिंग के बाद बीज को बिना तोड़े छोड़ दिया जाता है तो उसकी पाचन क्षमता कम हो जाती है।

साईलेज बनाने की प्रक्रिया

एक घन मीटर क्षेत्र में, एक साइलो में 500–600 किलो हरा चारा भंडारित किया जा सकता है।

1. फसल की कटाई 30–35 प्रतिशत शुष्क पदार्थ अवस्था में की जानी चाहिए
2. जरूरत पड़ने पर शुष्क पदार्थ को 30–35 प्रतिशत तक लाने के लिए काटे गये चारे को सुखा ले
3. चारे को 2–3 सेमी आकार के छोटे टुकड़ों में काट लें
4. कटा हुआ चारा साइलो या प्लास्टिक कंटेनर या साइलो बैग (100 किलो क्षमता) में भरें
5. कटे हुए चारे को 30–45 सेमी की परतों में दबाएं
6. जितनी जल्दी हो सके चारे को साइलो में भरने और दबाने की क्रिया को यथासंभव तेजी से पूरा किया जाना चाहिए
7. यदि आवश्यक हो तो साइलो में चारा भरने के दौरान एडिटिव्स का इस्तेमाल करें
8. भरने और दबाने के बाद, साइलो को मोटी पॉलीथीन शीट के साथ सील करें
9. एयरफ्लो को रोकने के लिए शीट पर मिट्टी की परत/सैंडबैग्स/टायरों के माध्यम से वजन रख दे
10. आवश्यकता के अनुसार, न्यूनतम 45 दिनों के बाद खिलाने के लिए साइलो खोलें

साइलो को 45 दिन बाद जरूरत के अनुसार एक तरफ से खोले और साईलेज निकालने के बाद ठीक से बंद कर दे। जरूरत के हिसाब से इसे बाहर निकाला जा सकता है। प्रारंभ में, साईलेज को साईलेज फीडिंग पर जानवरों को समायोजित करने के लिए 5 किलो/पशु की दर से खिलाना चाहिए। चूँकि साईलेज हरे चारे का एक विकल्प है अतः इसे हरे चारे की तरह खिलाया जा सकता है।

अच्छी गुणवत्ता वाले साईलेज की विशेषताएं

सामान्य तौर पर, मक्का साईलेज के लिए पीएच मान 3.5 से 4.3 सीमा में होना चाहिए, लैक्टिक एसिड का स्तर 4–6% सीमा में होना चाहिए, एसिटिक एसिड 2% या उससे कम, प्रोपोनिक एसिड 0–1:, और ब्यूटिरिक एसिड 0.1% से कम होना चाहिए। अमोनिया

नाइट्रोजन का स्तर 5% से कम होना चाहिए। साईलेज का रंग चमकीला, हल्का हरा, पीला या हरा, भूरा रंग होना चाहिए तथा लैक्टिक एसिड गंध के साथ कोई ब्यूटिरिक एसिड और अमोनिया गंध नहीं होनी चाहिए है। साईलेज में नमी 65–70 प्रतिशत होनी चाहिए।चारे की अच्छी गुणवत्ता के उत्पादन को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण कारकों में साइलो के प्रकार हैं जिससे चारे की सुनिश्चितता और शुष्क पदार्थ को 30–35 प्रतिशत कम किया जा सकता है। चारे की कटाई की लम्बाई 2–3 सेमी होनी चाहिए।

साईलेज के फायदे

1. डेयरी पशुओं के लिए चारे की नियमित आपूर्ति सुनिश्चित करता है।
2. विभिन्न मौसमों के दौरान जानवरों को एक समान गुणवत्ता वाला चारा सुनिश्चित करता है।
3. साईलेज वर्षभर सभी मौसमों में बनाया जा सकता है।
4. अधिशेष हरे चारे को संरक्षित बर्बाद होने से बचाया जा सकता है ।
5. पशुओं के लिए साईलेज, परजीवी रोगों से नियंत्रण के लिए एक प्रभावी उपकरण है, क्योंकि हरे चारे में विभिन्न चरणों में मौजूद परजीवी एनसिलिंग के दौरान नष्ट हो जाते हैं।
6. कटाई की गहनता में सुधार करके हरे चारे की उत्पादकता को बढ़ाता है। विशेष रूप से लीन अवधि के दौरान चारे की आपूर्ति सुनिश्चित करके पशुधन उत्पादकता को बढ़ाता है।
7. कम प्रोटीन, उच्च कार्बोहाइड्रेट मक्का साईलेज, कम कार्बोहाइड्रेट, उच्च प्रोटीन चरागाह के लिए एक उत्कृष्ट पूरक है।
8. मक्का साईलेज में अनाज और फाइबर मक्का का मिश्रण होता है अतः पशुओं को खिलाना बहुत सुरक्षित रहता है। और अलग से फीड देने की आवश्यकता नहीं होती है।
9. मक्का साईलेज का उपयोग पशुधन की विकास दर और दुग्ध उत्पादन बढ़ाने के लिए उत्कृष्ट चारा है।

मक्का साईलेज

एफ्लाटॉक्सिन-इसके हानिकारक प्रभाव और मक्का

श्रावनी देबनाथ एवं सोनाली बिस्वास
बिधान चंद्र कृषि विश्वविद्यालय, कल्याणी,
पश्चिम बंगाल
संवादी लेकख का ई–मेल : srabanidebnath72@gmail.com

परिचय

बढ़ती आबादी के बदलते जलवायु परिदृश्य में खाद्य सुरक्षा और बचाव प्रमुख समस्याओं में से एक हैं। ये मुख्य रूप से तीन प्रमुख पहलुओं द्वारा निर्धारित किए जाते हैं। (1) पर्याप्त भोजन की उपलब्धता (2) सुरक्षित भोजन तक पहुँच और (3) स्वस्थ जीवन के लिए गुणवत्ता, पोषण और सांस्कृतिक उद्देश्यों के लिए भोजन का उपयोग। इनमें से किसी भी पहलू की विफलता खाद्य असुरक्षा और कुपोषण है जो समाज के सामाजिक–आर्थिक पहलू के अलावा मानव स्वास्थ्य को प्रभावित करती है।

इसके अलावा, मायकोटॉक्सिन द्वारा भोजन और पत्रु चारा संदूषण खाद्य असुरक्षा पैदा करने के लिए जिम्मेदार प्रमुख कारकों में से एक है।

खाद्य और कृषि संगठन (एफ ए ओ) के अनुसार, दुनिया की एक –चौथाई फसल माइकोटॉक्सिन से प्रभावित है। विभिन्न प्रकार के मायकोटॉक्सिन में, एफ्लाटॉक्सिन अत्यधिक विषाक्त हैं और मक्का जैसे विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों को दूषित करने के लिए जाने जाते हैं।

एफ्लाटॉक्सिन क्या है?

एफ्लाटॉक्सिन प्रकृति में पाया जाने वाला सबसे शक्तिशाली कैंसर कारक है जो स्वास्थ्य, आय और व्यापार को प्रभावित करता है। यह कुछ प्रकार के कवक द्वारा उत्पादित जहरीले पदार्थ हैं जो दुनिया भर में स्वाभाविक रूप से पाए जाते हैं, वे खाद्य फसलों को दूषित कर सकते हैं और मनुष्यों और पशुओं के लिए एक गंभीर स्वास्थ्य खतरा पैदा कर सकते हैं। यह कवक मिट्टी और फसल के मलबे में रहता है, फसलों को प्रभावित और क्षेत्र एवं स्टोर में विष का उत्पादन करता है, भोजन, पशु चारा और दूध को दूषित करता है। जलवायु परिवर्तन से एफ्लाटॉक्सिन की घटना और गंभीरता बढ़ जाती है जो अत्यंत कम मात्रा में शक्तिशाली है। यह एक महत्वपूर्ण आर्थिक बोझ पैदा करती है, जिससे अनुमानित 25% या अधिक दुनिया की खाद्य फसलें सालाना नष्ट हो जाती हैं। कवक की दो निकट संबंधी प्रजातियां मुख्य रूप से सार्वजनिक स्वास्थ्य महत्व के एफ्लाटॉक्सिन के उत्पादन के लिए जिम्मेदार है: एस्परजिलस फ्लेवस और ए. पैरासाइटिक्स कवक को धूसर–हरे या पीले हरे रंग के साँचे द्वारा खेत में या भंडारण में उगने वाले मक्का दानों से पहचाना जा सकता है। कवक के विकास के दौरान सूखे, गर्मी या कीट क्षति के कारण पौधे का तनाव आमतौर पर एफ्लाटॉक्सिन के स्तर को बढ़ाता है। एफ्लाटॉक्सिन संदूषण भोजन के मूल्य और बिक्री को कम करेगा क्योंकि यह अपेक्षाकृत निम्न स्तर पर भी जानवरों के लिए बेहद जहरीला होता है, अनाज खरीदने वाली एजेंसी अक्सर मक्का खरीदने से पहले विष की उपस्थिति की जांच करती है। आमतौर पर उष्णकटिबंधीय और उपोश्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पाए जाने वाले अनुकूल परिस्थितियों में, उच्च तापमान और उच्च आर्द्रता सहित, ये सांचे, सामान्य रूप से मृत और क्षयकारी वनस्पतियों पर पाए जाते हैं और खाद्य फसलों पर आक्रमण कर सकते हैं। एस्पाजिलस वृद्धि और एफ्लाटॉक्सिन विकास तापमान 86^{0}F, सापेक्ष आर्द्रता 85 % और दाने की नमी18 % के लिए उपयुक्त स्थिति। सूखा, तनाव, कीट क्षति और खराब भंडारण से सांचों की अधिकता होती है।

कई प्रकार के एफ्लाटॉक्सिन (14 या अधिक) प्रकृति में होते हैं, लेकिन चार– एफ्लाटॉक्सिन बी 1, बी 2, जी 1 और जी 2 विशेश रूप से मनुष्यों और जानवरों के लिए खतरनाक हैं क्योंकि वे सभी प्रमुख खाद्य फसलों में पाए गए हैं। एफ्लाटॉक्सिन Aspergillus प्रजातियों द्वारा उत्पादित किया जाता है, अर्थात् A. flavus, A.nomius और A. parasiticus । खाद्य प्रसंस्करण तकनीकें एफ्लाटॉक्सिन से दूषित भोजन और फीड से उनकी गर्मी प्रतिरोधी प्रकृति के कारण खत्म करने के लिए पर्याप्त नहीं है। बी–प्रकार Aspergillus flavus द्वारा निर्मित होते हैं जबकि जी–प्रकार

Aspergillus parasiticus द्वारा उत्पादित होते हैं। कटाई से पहले और बाद में खाद्य फसलें दूषित हो सकती है। एफ्लाटॉक्सिन के साथ पूर्व फसल संदूषण मुख्य रूप से मक्का तक सीमित है। दूशित भोजन और फीड में एफ्लाटॉक्सिन की उपस्थिति से मनुश्यों और जानवरों में गंभीर स्वास्थ्य जटिलताएं पैदा हुई हैं। इसलिए अलग–अलग दे ाों में व्यक्तियों के स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए भोजन और भोजन में एफ्लाटॉक्सिन के लिए सख्त नियम लागू किए हैं। एफ्लाटॉक्सिन की सुरक्षित सीमा मानव उपभोग के लिए 4–30 µg/kg की सीमा में है। स्थायी कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए एफ्लाटॉक्सिन की पूर्व और बाद के फसल प्रबंधन के लिए विभिन्न नवीन तकनीकों और नियंत्रण रणनीतियों को लागू किया जाता है। एफ्लाटॉक्सिन की उपस्थिति भोजन और पशु आहार में आम है। कुछ सबसे अधिक प्रभावित भोजन और पशु आहार में मूंगफली,नट्स, अंजीर, मक्का, चावल, मसाले और सूखे फल भाामिल हैं।

एफ्लाटॉक्सिन पैदा करने वाले कवक से फसलें कैसे दूशित हो जाती हैं?

- कवक फसल मूल्य श्रृंखला के किसी भी बिन्दु पर प्रवेश कर सकता है। इन एफ्लाटॉक्सिन उत्पादक कवक के लिए प्रवेश या संक्रमण बिन्दु इन तीन चरणों के हो सकते हैं–
- कवक फसल की कटाई से पहले प्रवेश कर सकते हैं।
- फसल की कटाई के दौरान कवक का प्रवेश।
- कटाई के बाद और प्रसंस्करण के दौरान कवक का प्रवेश।

एफ्लाटॉक्सिन के हानिकारक प्रभाव

- एफ्लाटॉक्सिन शक्तिशाली टॉक्सिन्स और हेपेटोटॉक्सिक, कैंसर का कारण, सेकेंडरी मेटाबोलाइट्स हैं जो मक्का के अवसरवादी ईयर–रोट रोगजनक Aspergillus flavus द्वारा निर्मित होते हैं। एफ्लाटॉक्सिन की खोज से पहले, Aspergillus flavus को एक मामूली रोगजनक माना जाता था और मक्का प्रजनक या रोगविज्ञानी के लिए महत्वपूर्ण नहीं था। 1961 में पोल्ट्री में एक महामारी के बाद इंग्लैंड में अफ्लाटॉक्सिन की खोज की गई थी। 1970 के द ाक के प्रारंभ में, संयुक्त राज्य अमेरिका में कृषि वस्तुओं के सर्वेक्षण में पाया गया कि दक्षिण पूर्व में उत्पादित मक्का विशेश रूप से एफ्लाटॉक्सिन संदूशण की चपेट में था। एफ्लाटॉक्सिन संदूशण को शुरू में कटाई के बाद के मुद्दे के रूप में माना जाता था, लेकिन पूर्व फसल संदूशण 1975 तक साबित हुआ था।
- समस्या की संभावित परिमाण 1977 में स्पष्ट हो गई, जब दक्षिण–पूर्व अमेरिकी मक्का की फसल को महामारी एफ्लाटॉक्सिन संदूशण का सामना करना पड़ा।
- एफ्लाटॉक्सिन के दीर्घकालिक या क्रोनिक एक्सपोजर में कई स्वास्थ्य परिणाम शामिल हैं: एफ्लाटॉक्सिन शक्तिशाली कार्सिनोजन हैं और सभी अंग प्रणालियों, विशेश रूप से यकृत और गुर्दे को प्रभावित कर सकते हैं, वे यकृत कैंसर का कारण बनते हैं, और अन्य प्रकार के कैंसर से जुड़े होते हैं– AFB1को मनुष्यों में कार्सिनोजेनिक कहा जाता है, हेपेटाइटिस बी विषाणू के साथ संक्रमण की उपस्थिति में यकृत कैंसर के कारण एफ्लाटॉक्सिन की शक्ति काफी बढ़ जाती है।
- एफ्लाटॉक्सिन बैक्टीरिया में उत्परिवर्तन होते हैं (डीएनए को प्रभावित करते हैं), जीनोटॉक्सिक, और बच्चों में जन्म के कारण पैदा करने की क्षमता रखते हैं।
- बच्चे हकला सकते हैं, हालांकि इन आँकड़ों की अभी तक पुष्टि नहीं की जा सकी है क्योंकि अन्य कारक भी विकास में योगदान करते हैं जैसे कि कम सामाजिक आर्थिक स्थिति, पुरानी दस्त, संक्राण रोग, कुपोषण।
- एफ्लाटॉक्सिन प्रतिरक्षा दमन का कारण बनता है, इसलिए संक्रामक एजेंटों के लिए प्रतिरोध कम हो सकता है (जैसे एचआईवी, यक्ष्मा)।
- एफ्लाटॉक्सिन की बड़ी खुराक तीव्र विषाक्तता (एफ्लाटॉक्सिकोसिस) का कारण बनती है जो आमतौर पर यकृत को नुकसान के माध्यम से जीवन के लिए खतरा हो सकती है। तीव्र यकृत विफलता (पीलिया, सुस्ती, जी मिचलाना, मृत्यु) के प्रकोपों को एफ्लाटॉक्सिकोसिस के रूप में

पहचाना जाता है, 1960 के दशक के बाद से मानव आबादी में देखा गया है। संयुक्त राष्ट्र तंजानिया में 2016 की गर्मियों के दौरान हाल ही में एफ्लाटॉक्सिन के लिए जिम्मेदार लोगों की मौत हुई थी। बच्चों की तुलना में वयस्क व्यक्ति तीव्र जोखिम के प्रति अधिक सहिष्णु होते हैं। 1 मिलीग्राम/किग्रा या उससे अधिक एफ्लाटॉक्सिन सांद्रता वाले भोजन की खपत से एफ्लैटॉक्सिकोसिस होने का संदेह होता है।

❖ मुर्गियों में, एफ्लाटॉक्सिन के प्रभाव में यकृत की क्षति, कम उत्पादकता और प्रजनन क्षमता, अंडा उत्पादन में कमी, अंडों की हीन गुणवत्ता, भाव गुणवत्ता और रोग के लिए संवेदनशीलता बढ़ जाती है।

❖ सूअर भी एफ्लाटॉक्सिन से अत्यधिक प्रभावित होते हैं, जिनमें पुराने प्रभाव काफी हद तक यकृत की क्षति के रूप में स्पष्ट होते हैं। मवेशियों में, प्राथमिक लक्षण वजन कम करने के साथ–साथ यकृत और गुर्दे की क्षति है, जहाँ दूध का उत्पादन भी कम होता है।

❖ AFB1, मनुष्य के लिए एक शक्तिशाली कार्सिनोजन के रूप में गंभीर स्वास्थ्य जटिलताओं से जुड़ा हुआ हैं। यह यकृत कैंसर और तीव्र हेपेटाइटिस के साथ–साथ मृत्यु के लिए अग्रणी तीव्र एफ्लाटॉक्सिकोसिस के प्रकोप है।

❖ दुर्भाग्य से, दूसरी ओर, वायुप्रदूषण द्वारा खाद्य और फीड संदूषण दुनिया भर में एक लगातार समस्या है। वायुमंडलीय और उपोश्णकटिबंधीय क्षेत्रों में एफ्लाटॉक्सिन के कारण प्रकोप कुछ अधिक समशीतोष्ण क्षेत्रों में होता है।

❖ अनाज और अनाज आधारित उत्पाद दुनिया भर में मानव उपभोग के लिए प्रमुख खाद्य पदार्थ हैं। कृषि पद्धतियों में बदलाव के कारण अनाज, चावल और मकई ज्यादातर प्राकृतिक परिस्थितियों में एफ्लाटॉक्सिन द्वारा दूषित होते हैं।

❖ अनाज में फंगल वृद्धि और एफ्लाटॉक्सिन का उत्पादन तापमान, नमी, मिट्टी के प्रकार और भंडारण की स्थिति पर निर्भर करता है।

❖ जलवायु परिवर्तन प्रधान खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता और उपलब्धता पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है।

❖ एफ्लाटॉक्सिन संदूषण ने संयुक्त राज्य में मक्का और मूंगफली फसलों के लाखों हेक्टेयर को प्रभावित किया है। मक्का पूरे

(एफ्लाटॉक्सिन आक्रन्त मक्का)

एशिया, अफ्रीका और अमेरिका में गर्म जलवायु में रहने वाले लोगों के लिए एक मुख्य भोजन है, जो जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से ग्रस्त हैं।

- जलवायु में परिवर्तन एक साथ एफ्लाटॉक्सिन के जटिल समुदायों को प्रभावित करता है, जिससे कवक समुदाय की संरचना को बदलने के लिए एफ्लाटॉक्सिन उत्पादकों की संख्या में परिवर्तन करके कवक का निर्माण होता है। एफ्लाटॉक्सिन संदूषण फसल विकास के दौरान एक प्रारंभिक चरण और फसल परिपक्वता के दौरान एक दूसरे चरण के माध्यम से होता है।
- संदूशण गर्म, नम और यहां तक कि गर्म रेगिस्तान और सूखे की स्थिति में अधिक होता है।
- एफ्लैवस ने प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों से बचने के लिए शारीरिक तंत्र विकसित किया है और अन्य कवक प्रजातियों पर हावी है। जलवायु परिवर्तन पर्यावरण में तापमान और पानी की गतिविधि को बदल देता है जो आगे चलकर एफ्लाटॉक्सिन को उत्पन्न करने के लिए जीन अभिव्यक्ति को प्रभावित करता है। तापमान की स्थिति और फंफूद वृद्धि और जल गतिविधि एफ्लाटॉक्सिन उत्पादन की सीमा को विनियमित करते हैं।
- अगले 30 वर्षों में Aspergillus flavus के लिए अनुकूल जलवायु परिस्थितियों के कारण मक्का में एफ्लाटॉक्सिन संदूषण का जोखिम यूरोप में बढ़ने की संभावना है। इसलिए, भोजन और भोजन में एफ्लाटॉक्सिन के संक्रमण का मुकाबला करने के लिए उचित पता लगाने के तरीके और नियंत्रण विधियाँ महत्वपूर्ण हैं।
- Aspergillus flavus फसल से पहले और भंडारण में मक्का पर एफ्लाटॉक्सिन पैदा कर सकते हैं।

मक्का के व्यापार पर एफ्लाटॉक्सिन का प्रभाव

मक्का दुनिया भर में उत्पादित, खपत और कारोबार के हिसाब से दुनिया की सबसे महत्वपूर्ण कृषि जिंसों में से एक है। इसलिए, मक्का में प्राकृतिक रूप से एफ्लाटॉक्सिन संदूशण दोनों वैश्विक व्यापार के लिए महत्वपूर्ण प्रभाव है। एफ्लाटॉक्सिन संदूषण किसानों को अपने देशों के भीतर और बाहर संभावित बाजारों तक पहुंचने से रोक सकता है, यदि उनके मक्का की वस्तुएं स्थापित अधिकतम सहनीय सीमा से अधिक हैं। उदाहरण के लिए, वर्ष 2013 में, विश्व खाद्य कार्यक्रम ने खारिज कर दिया और एफ्लाटॉक्सिन संदूशण के कारण केन्या होला कृषि सिंचाई योजना में लगभग 60,000 बैग मक्का की खपत को मानव उपयोग के लिए अयोग्य घोषित कर दिया। हाल ही में, नवंबर 2019 में, केन्या की दुकानें में एफ्लाटॉक्सिन संदूशण के कारण मक्का के आटे के पांच ब्रांडों को वापस बुलाना पड़ा। संबंधित, जनवरी 2020 में, केन्या ब्यूरो ऑफ स्टैंडर्ड्स ने मक्का के आटे के लिए 17 ब्रांडों पर प्रतिबंध लगा दिया।

एफ्लाटॉक्सिन के खतरनाक प्रभाव को कम करने के तरीके

जब पर्यावरण की स्थिति कवक के लिए बेहद अनुकूल होती है, तो कोई नियंत्रण उपाय प्रभावी नहीं होता है। एफ्लाटॉक्सिन के संचय का प्रतिरोध विधर्मी प्रतीत होता है, लेकिन पर्याप्त प्रतिरोध के साथ कोई व्यावसायिक संकर उपलब्ध नहीं है। कटाई से पहले संदूषण का मतलब आनुवंशिक रूप से आधारित प्रभावित पौधा प्रतिरोध एक संभव समाधान है। कटाई के पूर्व–एफ्लाटॉक्सिन संदूशण को नियंत्रण करने के लिए सबसे दीर्घकालिक, स्थिर समाधान कवक संक्रमण का विरोध करने और / या हमलावर कवक द्वारा एफ्लाटॉक्सिन के उत्पादन को रोकने के लिए फसल की क्षमता बढाने के माध्यम से है। यह पादप प्रजनन के माध्यम से या फसलों की आनुवंशिक इंजीनियरिंग के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।

- एफ्लाटॉक्सिन संदूषण की समस्याओं को प्रबंधन के साथ कम से कम किया जाता है जैसे कि अच्छी तरह से अनाज की सफाई, अनाज की क्षति को कम करने के लिए उचित समायोजन, गीली मक्का को सुखाना, खराब और टूटे हुए दानों को निकालना, सुखाने के बाद उचित भंडारण प्रथाओं आदि।

- कटाई के बाद के वायु प्रदूषण को रोकने के लिए उपकरणों की स्वच्छता पहला कदम है। कटाई से पहले सभी कटाई, हैंडलिंग और सुखाने के उपकरण और भंडारण डिब्बे को साफ करें। सभी टूटे हुए मक्का के दाने, धूल और बाहरी सामग्री को निकालें जो संदूशण का स्रोत प्रदान कर सकते हैं। दोषपूर्ण जोड़ों या अन्य समस्याओं से नमी के रिसाव को रोकने के लिए भंडारण डिब्बे की जांच और मरम्मत करें। साफ डिब्बे और संदूशण को कम करने के लिए मलबे को हटा दें। भरने से पहले बिन का इलाज करने के लिए एक अनुमोदित कीटनाशक का उपयोग करें।
- फसल के कटाई को इस तरह से किया जाना चाहिए ताकि बीज के आवरण को नुकसान से बचाया जा सके और अनाज की अधिकतम सफाई का आश्वासन दिया जा सके, क्योंकि क्षतिग्रस्त और खराब बीज एफ्लाटॉक्सिन की मात्रा में योगदान करती है।
- जब मक्का परिपक्वता अवस्था में पहुँचती है, तो फसल कटाई तुरंत की जानी चाहिए। इसके लिए यांत्रिक माध्यम से सुखाने की आवश्यकता होती है। जब नमी का स्तर 28 से 30 प्रतिशत तक पहुँच जाता है और खेत में सूखा मक्का 15 प्रतिशत या उससे कम हो जाता है, तो फसल की कटाई शुरू कर देनी चाहिए। इसके लिए तत्काल सुखाने की आवश्यकता होगी।
- अनाज के सूखने का तापमान और समय संग्रहीत अनाज में एफ्लाटॉक्सिन के विकास पर प्रभाव डाल सकता है। लंबे समय तक कम गर्मी के साथ धीमी गति से सूखने से एफ्लाटॉक्सिन के विकास को बढ़ावा मिल सकता है।
- एफ्लाटॉक्सिन के विकास को रोकने के लिए भंडारित अनाज में नमी को 12–13 प्रतिशत से कम रखा जाना चाहिए। कीट गतिविधि को भी न्यूनतम रखना चाहिए।
- उन्नत कृषि प्रौद्योगिकियों, अच्छी कृषि प्रथाओं, अच्छे विर्निमाण प्रथाओं और अच्छे भंडारण प्रथाओं के कार्यान्वयन से माइकोटॉक्सिन संदूशण को कम किया जा सकता है।
- भंडारण में आयोजित अनाज का निरीक्षण किया जाना चाहिए और हर 3 से 4 सप्ताह में जांच की जानी चाहिए। कीट गतिविधि, उच्च तापमान, मोल्ड वृद्धि या अनाज के शीर्ष पर अंकुर की जांच करें।
- माइक्रोवेव, यूवी, स्पंदित प्रकाश, इलेक्ट्रोलाइज्ड पानी, कोल्ड प्लाज्मा, ओजोन, इलेक्ट्रॉन बीम और गामा विकिरण उपचार में शामिल उपन्यास प्रसंस्करण तकनीकों में एफ्लाटॉक्सिन प्रबंधन और कृषि और खाद्य उत्पादों की गुणवत्ता को संरक्षित और बनाए रखने की क्षमता है।
- इसके अलावा, जैविक नियंत्रण उपायों के एक भाग के रूप में, स्यूडोमोनस, बैसिलस और ट्राइकोडर्मा के विरोधी उपभेदों का टीकाकरण कटाई से पहले की फसलों में Aspergillus flavus की भारी कमी थी। Aspergillus flavus और अन्य गैर–टॉक्सिकेनिक मोल्ड्स के गैर – एफ्लाटॉक्सिन बनाने वाले एफ्लाटॉक्सिन संदूशण के खिलाफ प्रमुख जैविक नियंत्रण एजेंट हैं। प्रत्येक तकनीक के आवेदन के अपने फायदे और नुकसान हैं। इसलिए, खाद्य सुरक्षा और सुरक्षा प्राप्त करने के लिए बेहतर पैकेजिंग सामग्री के साथ अन्य भौतिक और रासायनिक तरीकों के साथ सामंजस्य में बायोकन्ट्रोल उपायो को लागू किया जाना चाहिए।
- एक तकनीक है कि फसल से पहले एफ्लाटॉक्सिन की कमी के लिए महत्वपूर्ण ध्यान दिया गया है गैर विषैले Aspergillus flavus आइसोलेट्स का उपयोग कर जैविक नियंत्रण किया गया है। प्रकृति में एस्परगिलस फ्लेवस के कुछ उपभेदों में एक बहुत टॉक्सिजेनिक का उत्पादन होता है और अन्य में एफ्लाटॉक्सिन (एटॉक्सिजेनिक) का उत्पादन नहीं होता है। गैर विषैले उपभेदों स्वाभाविक रूप से होने वाली विषैले उपभेदों के रूप में एक ही आलों पर कब्जा है, और प्रतिस्पर्धा और विषैले उपभेदों को विस्थापित करने में सक्षम हैं। एटॉक्सिजेनिक उपभेदों को संक्रमण में वृद्धि के बिना और फसल पर या पर्यावरण में एफ्लाटॉक्सिन की समग्र मात्रा में वृद्धि के बिना लागू किया जा सकता है।
- कुल मिलाकर, एक एकीकृत दृष्टिकोण, इस तरह के दृष्टिकोण में लक्षित पौधे प्रजनन प्रथाओं, मेजबान संयंत्र प्रतिरोध की वृद्धि, और जैविक नियंत्रण विधियां भाामिल हैं, जो फसल के बाद की प्रौद्योगिकियों जैसे कि उचित सुखाने और संभावित प्रभावित फसल उत्पादों के भंडारण के साथ–साथ उपयुक्त के विकास के लिए भी भाामिल हैं। वैकल्पिक उपयोग क्षतिग्रस्त फसल के मूल्य पर कम से कम कुछ आर्थिक वापसी बनाए रखने के लिए करता है।

- ❖ इथेनॉल उत्पादन के लिए एफ्लाटॉक्सिन वाले मकई का उपयोग किया जा सकता है। एफ्लाटॉक्सिन इथेनॉल में जमा नहीं होता है, लेकिन डिस्टिलर के अनाज सह–उत्पाद में केन्द्रित होगा। गीले–मिल प्रसंस्करण में, एफ्लाटॉक्सिन लस सह–उत्पादों में ध्यान केन्द्रित करते हैं। एक मोटा अनुमान यह है कि फीड सह– उत्पादों में एफ्लाटॉक्सिन का स्तर कॉर्न करते समय 4 गुना होगा।
- ❖ निर्जल अमोनिया को एफ्लाटॉक्सिन के साथ प्रतिक्रिया करने और उनकी सांद्रता को कम करने के लिए दिखाया गया है।

एफ्लाटॉक्सिन के हानिकारक प्रभावों से बचने के लिए उपभोक्ताओं को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए

- ❖ फफूँद वाले खाद्य पदार्थ संभावित रूप से एफ्लाटॉक्सिन से दूषित होते हैं और इसलिए सेवन करने पर संभवतः हानिकारक होते हैं। नए–नए साँचे सिर्फ सतह पर नहीं उगते बल्कि भोजन में गहरे तक घुस जाते हैं। एफ्लाटॉक्सिन के जोखिम को कम करने के लिए, उपभोक्ता को यह सलाह दी जाती है:
- ❖ सांचे के साक्ष्य के लिए साबुत अनाज और मूंगफली का सावधानीपूर्वक निरीक्षण करें, और किसी भी तरह के फफूंद को हटा दें, जो मुरझाया हुआ या फीका दिख रहा है।
- ❖ जितना संभव हो ताजा अनाज और नट्स खरीदें, संभव के रूप में घर के करीब हो गए हैं, और जो लंबे समय से परिवहन नहीं किया गया है।
- ❖ मूंगफली और मूंगफली बटर के केवल प्रसिद्ध ब्रांडों का सेवन किया जाना चाहिए– एफ्लाटॉक्सिन मोल्ड पूरी तरह से प्रसंस्करण या भूनने से नहीं मारे जाते हैं।
- ❖ खाद्य पदार्थों को ठीक से संग्रहित किया जाना चाहिए और उपयोग किए जाने से पहले विस्तारित समय के लिए नहीं रखा जाना चाहिए।
- ❖ प्रत्येक व्यक्ति का आहार विविध है, इसे सुनिश्चित किया जाना चाहिए, यह न केवल एफ्लाटॉक्सिन जोखिम को कम करने में मदद करता है, बल्कि स्वास्थ्य और पोषण में भी सुधार करता है।
- ❖ जिन उपभोक्ताओं में आहार विविधता की कमी होती है, उन्हें एफ्लाटॉक्सिन के उच्च जोखिम के जोखिम को कम करने के लिए अतिरिक्त ध्यान देने की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए, व्यापक एफ्लाटॉक्सिन जोखिम उन क्षेत्रों से सूचित किया गया है जहां लोगों को मक्का से अपने दैनिक कैलोरी सेवन का एक प्रमुख हिस्सा मिलता है, इस खाद्य पदार्थों को आमतौर पर एफ्लाटॉक्सिन से दूषित किया जाता है और फसल से पहले और बाद में दोनों को ठीक से संभालने की आवश्यकता होती है।

निश्कर्ष

मक्का अनाज के एफ्लाटॉक्सिन संदूशण एक बहुत बड़ी आर्थिक और स्वास्थ्य समस्या है, जिससे विकासशील देशों में मृत्यु और वृद्धि हुई बीमारी का बोझ बढ़ गया है और विकसित दुनिया में आय का नुकसान हुआ है। एफ्लाटॉक्सिन मुक्त मक्का, मूंगफली और अन्य अनाज का उत्पादन खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करता है। किसान का स्वास्थ्य और आर्थिक कल्याण कृषि क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण निवेश है। समस्या की गंभीरता के बावजूद, अभी भी तैनाती योग्य समाधान मांगे जा रहे हैं। यद्यपि एफ्लाटॉक्सिन और अनाज संदूशण के हारिकरक स्वास्थ्य प्रभाव को 50 वर्षों से जाना जाता है, लेकिन स्वास्थ्य या आर्थिक दृष्टिकोण से, एक संतोषजनक समाधान अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। मक्का में एफ्लाटॉक्सिन समस्या को हल करने के लिए एक बहुस्तरीय और समन्वित दृष्टिकोण की आवश्यकता होगी। विकासशील देशों में, फसल और भोजन की तैयारी के बाद बेहतर भंडारण जल्दी लाभ प्रदान करेगा। बायोकन्ट्रोल और एटॉक्सीजेनिक Aspergillus flavus के उपयोग से अल्पावधि में भी समस्या कम हो सकती है। एफ्लाटॉक्सिन के प्रसार और प्रसार को कम करने के लिए महाद्वीपीय, राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और स्थानीय स्तर पर क्रियाओं की आवश्यकता होती है।

टर्सिकम पर्ण झुलसा (टीएलबी): वर्तमान स्थिति एवं स्थायी प्रबंधन रणनीतियां

जीवन बी, राज शेखरा एच[1], देवेन्द्र शर्मा, चंदन महाराना एवं के. के. मिश्रा
भा.कृ.अनु.प.–विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा, उत्तराखंड
संवादी लेकख का ई–मेल : jeevan.bscag@gmail.com

मक्का (जिया मेज एल) 'अनाज की रानी' हमारे देश और पूरे विश्व की एक महत्वपूर्ण खाद्य एवं चारा फसल है। इसकी उत्पति अमेरिका से हुई है जो लगभग 7000 सालों से उपयोग में लाया जा रहा है। मक्का मनुष्यों और जानवरों के लिए पोषक तत्व प्रदान करता है और स्टार्च, तेल और प्रोटीन, मादक पेय, खाद्य मिष्ठान और ईधन के उत्पादन के लिए एक बुनियादी कच्चे माल के रूप में कार्य करता है। मक्का का सबसे बड़ा उत्पादक देश अमेरिका है जो कि संपूर्ण विश्व का मक्का का 5वां हिस्सा अकेले उत्पादित करता है। चीन, ब्राजील, मैक्सिको, भारत और इंडोनेशिया आदि देशों का मक्का उत्पादन में महत्वपूर्ण योगदान है। भारत में चावल और गेहूं के बाद मक्का तीसरी महत्वपूर्ण खाद्य फसल है।

जलवायु में विविधता के कारण भारत में मक्का पूरे वर्ष उगाई जाती है। मक्का फसल की उत्पादकता कई जैविक एवं अजैविक तनावों से प्रभावित होती है। सामान्यतया मक्का में खरीफ फसल की अपेक्षा रबी फसल में कम रोग लगते है। मक्का में लगने वाले रोग कवक जनित, जीवाणु जनित, विषाणु जनित तथा सूत्रक्रमि जनित में विभाजित किया जा सकता है। जैविक तनाव में मुख्यतः टर्सिकम पर्ण झुलसा रोग एक कवक जनित प्रमुख रोग है जो दुनिया भर में मक्का उत्पादन को प्रभावित कर रहा है। वह रोग प्रमुख रूप से पर्वतीय क्षेत्रों उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश, जम्मू एवं कश्मीर तथा उत्तर पूर्वी राज्यों में मक्का की फसल को प्रभावित करता है। यह उच्च तापमान तथा उच्च आद्रता जैसे परिस्थितियों में 50 प्रतिशत तक पौधों को संक्रमित कर सकता है।

वितरणः टर्सिकम पर्ण झुलसा मक्का का एक घातक रोग है और यह दुनिया के मक्का उत्पादक क्षेत्रों में व्यापक रूप से फैला हुआ है। भारत में इस रोग का प्रकोप आंध्र प्रदेश, असम, बिहार, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर,कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, मेघालय, पंजाब, राजस्थान, सिक्किम, तमिलनाडु, त्रिपुरा, उत्तराखंड और उत्तर प्रदेश में दर्ज किया गया है।

लक्षणः मक्का की फसल मेंइस रोग से ग्रसित पत्तियों पर लम्बे तथा कुछ अंडाकार नाव के आकार के पीले भूरे रंग के (3 से 15 सेमी. लंबा और 2.5 सेमी. चौड़ा) धब्बे बन जाते हैं (चित्र 1) जो बाद में धूसर हो जाते हैं और अधिक प्रकोप होने पर पत्तियाँ झुलसकर सूख जाती हैं। संक्रमण पहले निचली पत्तियों पर दिखाई देता है और बाद में ऊपर की तरफ फैलता है। रोगजनक कभी–कभी पर्ण कोष और हरित दल को भी संक्रमित करता है।

रोगजनकः टीएलबी,एक्सेरोहाइलम टर्सिकम, एक हेमीबायोट्रोफिक कवक के कारण होता है।फफूँद परिगलन पैदा करने के बाद मृत ऊतकों पर जीवित रहता है। कोनिडियोफोर समूह में होते हैं व धनुष के आकर का गहरे भूरे रंग के व मुलायम होते हैं। कोनिडिया हल्का मुड़ा हुआ एवं सुनहरे भूरे रंग का 5 से 11 सुडो पसेप्टा का होता है(चित्र 2)।

चित्र 1 टर्सिकम पर्ण झुलसा रोग के लक्षण

चित्र 2 एक्सेरोहाइलम टर्सिकम का कोनिडिया

रोगचक्र और पूर्वगामी कारकः मक्का में इस रोग के प्रकोप की संभावना 18 से 20 डिग्री सेल्सियस तापक्रम,एवं उच्च आर्द्रता होने पर प्रबल होती है। एक्सेरोहाइलम टर्सिकम एक पूर्ण बीज जनित रोग नहीं है अपितु इसे बाह्य जनित रोग माना जाता है। अधिकतर यह फसल अवशेष से पैदा होता है क्योंकि रोगकारक फसलों के अवशेष में कवकजाल और कोनिडिया के रूप में जीवित रहता है। रोगकारक का प्रसार हवा जनित कोनिडिया के माध्यम से होता है।

प्रबंधनः स्वच्छ कृषि, गैर मेजवान फसलों के साथ फसल चक्र अपनाना चाहिए। देर से बोई गई फसल (जून–जुलाई) ज्यादा प्रभावित होती है अतः रोगरोधी/सहनशील प्रजातियों की समय से बुवाई करके इस रोग के प्रभाव को कम किया जा सकता है। इन किस्मों में विवेक मक्का हाइब्रिड 9, विवेक क्यू. पी. एम. 9, विवेक मक्का हाइब्रिड 15, विवेक संकर मक्का 25, विवेक संकर मक्का 33, विवेक संकुल मक्का 31, विवेक संकुल मक्का 35, विवेक संकर मक्का 43, विवेक संकर मक्का 45, विवेक संकर मक्का 57 आदि प्रमुख हैं। बीज की बुवाई से पूर्व थिरम की 4 ग्राम दवा प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। जैव नियंत्रक ट्राइकोडरमा विरिडी, बैसिलस सबटिलिस और स्यूडोमोनास फलूरोसेंस का प्रयोग करें। इस रोग की रोकथाम हेतु रोग के प्रकट होते ही कवकनाशी मैनकोजेब को 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए। आवश्यकतानुसार 10 दिन के अंतराल पर एक से दो छिड़काव और करने चाहिए।

हिन्दी महिमा

हिन्दुस्तान की जान है हिन्दी,
राष्ट्रीय एकता की पहचान है हिन्दी,
संविधान की भी शान है हिन्दी,
हिन्दी में है साहित्य अपार,
इसमें पुरानी संस्कृति का सार,
इसका विश्वव्यापी विस्तार,
जन–जन को है इससे प्यार,
इसकी महिमा अपरम्पार,
इसमें विशाल शब्द भण्डार,
इसमें व्याकरण की है धार,
इसमें छन्द, रस, अंलकार,
हिन्दी साहित्य है बड़ा भण्डार,
इसमें कम्प्यूटर का भी सार,
इसकी सभांवनाए है अपार,
इसका सरल सहज व्यवहार,

इसमें उर्दु फारसी भरमार,
इसमें वैशानिकता के आसार,
इसमें गीता, महाभारत का सार,
इसमें वीर रस का भी प्रहार,
इस पर राजभाषा का भार,
इस पर अंग्रेजी, विनी की मार,
इससे बढ़ा है विश्व व्यापार,
इसमें चल चित्रों का उपहार,
इसमें वैज्ञानिकता का आधार,
इसका विश्व भर संसार,
इसका सहज सरल व्यवहार,
इसका करें हम सम्मान,
तभी बढ़ेगा इसका मान,
अपनी भाषा का गौरव गान,
जल्दी करेगा सारा जहान,

इसके दिखते अनेक प्रमाण,
हो रहा इसमें नवनिर्माण,
भाषा विसान की इसमें जान,
इसके ध्वनि, साम्य महान,
स्वर व्यंजन का भी ज्ञान,
संधि, समास इसकी पहचान,
पाली अभ्रन्स से इसका उत्थान,
आज बनी है विश्व महान,
इसमें संस्कृति की है शान,
स्वतंत्र भारत की ये पहचान,
भारतीय संविधान का आह्वान,
हिन्दी में करो राजकाज का काम,
निज भाषा उन्नति की खान,
आग्ल भाषा परतंत्रता समान।

जी.आर. डोंगरे
भा.कृ.अनु.प.–खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर

आत्मनिर्भरता के पथ पर अग्रसर भारतीय किसान

डॉ. संतराम यादव
भा.कृ.अनु.प. – केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद
संवादी लेखक का ई–मेलः sryadav1220@gmail-com

शाखें रहीं तो फूल भी, पत्ते भी आएंगे । ये दिन अगर बुरे हैं, तो अच्छे भी आएंगे । इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखकर हमारा किसान अपने लक्ष्य की ओर सदैव सजग रहता है। कहते हैं कि आज इंसान के जीवन में शांति नहीं है। यह धारणा एकदम गलत है। हमें अपने किसानों से बहुत कुछ सीखना चाहिए। जीवन का मूल आधार ही शांति है। यह शास्वत नियम है। इंसान शांत स्वरूप है। शांति उसमें कूट कूट कर भरी है। भारतीय महापुरूषों ने परमार्थ हेतु अपना सब कुछ अर्पण कर दिया। 'खाओ पिओ और मौज करो' यह हमारी संस्कृति नहीं है। बल, बुद्धि और विद्या आदि को परहित में लगाना ही परमार्थ है। इसी से हमारी पहचान बनी है। यह शरीर भोग के लिए नहीं अपितु दूसरों की सेवा के लिए है। यही कारण है कि किसानों के निरंतर अथक प्रयासों से आज दुनिया में गन्ना उत्पादन में हम दूसरे नंबर स्थान और दाल उत्पादन में तीसरे नंबर स्थान पर हैं। देश को आत्मनिर्भर बनाने हेतु केवल आयात कम करना ही नहीं, अपितु हमारी क्षमता, हमारी रचनात्मकता और कौशल को बढ़ाना भी है। एक समय था जब हमारी कृषि व्यवस्था बहुत बिगड़ी हुई थी। तब सबसे बड़ी चिंता थी कि देशवासियों का पेट कैसे भरें ...आज जब हम सिर्फ भारत ही नहीं अपितु दुनिया के कई देशों का पेट भर सकते हैं। देश के किसानों को आधुनिक ढांचागत सुविधा देने के लिए भारत सरकार ने एक लाख करोड़ रुपए का कृषि बुनियादी ढांचा कोष भी बनाया है।

एक कहावत है कि इतिहास एक घटना है परंतु साथ ही वह एक गहना भी है। यदि वह बीता हुआ कल है तो आने वाले कल का एहसास भी कराता रहता है। जहां एक ओर वह पुरुषार्थ और पराक्रम की पीड़ा को संजोए है तो दूसरी ओर उसके पराक्रम की प्रेरणा भी है। वह हमारे प्रयत्नों का पारखी है, तो हमारे परिश्रम का प्रतिबिंब भी है। इसका अतीत हमें सतर्क करता है, तो हमें सजग रहना भी सिखाता है। यही बातें भारतीय कृषक पर भी यथावत लागू होती हैं। भारत ने अपनी उपलब्धियों को हमेशा विश्व के साथ साझा किया है। भारत की विकास साझेदारी लोगों को सशक्त करने के लिए है। उन्हें कमजोर करने के लिए नहीं। इस महान देश ने कभी भी दूसरों की निर्भरता बढ़ाने के लिए या भावी पीढ़ियों के कंधों पर कर्ज का असंभव बोझ डालने का प्रयास नहीं किया है। भारत एक कृषि प्रधान देश है। भारतीय किसान का जीवन सीधा सादा होता है। वह सुबरह सवेरे उठकर पशुओं को खाना चारा देता है और खेतों में चला जाता है। अपने खेतों में वह डटकर काम करता है। इन्हीं कृषकों के बल पर हमने सदैव गर्व का अनुभव किया है। समर्थ, सशक्त और समृद्ध भारत दक्षिण एशिया और इंडो–पेसीफिक में ही नहीं, पूरे विश्व में शांति, विकास और सुरक्षा का आधार स्तंभ होगा, ऐसा हमारा विश्वास है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि हर भारतीय अपनी शक्ति और क्षमताओं का उपयोग केवल अपनी समृद्धि और सुरक्षा के लिए ही नहीं करेगा बल्कि इस क्षेत्र के अन्य देशों की क्षमता के विकास में, आपदाओं में उनकी सहायता के लिए तथा सभी देशों की साझा सुरक्षा, संपन्नता और उज्ज्वल भविष्य के लिए करता रहेगा। किसानों का मुख्य पेशा कृषि है। पशुपालन उनका सहायक पेशा है। ये पशु कृषि कार्य में किसानों का सहयोग करते हैं। जहां बैल उनकी हल और गाड़ी खींचते हैं, वहीं गाय उनके लिए दूध, गोबर और बछड़े देती है। वे भैंस, बकरी, कुक्कट आदि भी पालते हैं जिनसे उन्हें अतिरिक्त आमदनी होती है। हमारा किसान हमें सिखाता है कि मनुष्य को किसी से कुछ लेने की नहीं बल्कि देने की आदत डालनी चाहिए। सेवा करना मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। विपत्तियों से घबराएं नहीं। इससे प्रसन्नता बनी रहेगी और वह प्रसन्नता समस्याओं के समाधान की राह दिखाएगी। किसान माटी के समृत होते हैं। वे मिट्टी से सोना उपजाते हैं। वे अपने श्रम से संसार का पेट भरते हैं। वे अधिक पढ़े लिखे नहीं होते परंतु उन्हें खेती की बारीकियों का ज्ञान होता है। वे मौसम के बदलते मिजाज को पहचान कर तदनुसार नीति निर्धारित करने में दक्ष होते हैं। वास्तव में ही हमारे किसान प्रकृति के सहचर होते हैं।

हवा भी बेकसूर, दीया भी बेकसूर। इसे चलना है जरूर, उसे

जलना है जरूर । बदलता परिवेश आज बहुत कुछ सोचने पर विवश कर रहा है। आज देहाती लोग शहरी जीवन की चकाचौंध से प्रेरित, आकर्षित व प्रभावित होकर इसकी सुख सुविधाओं का लाभ उठाने हेतु शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। परिणामस्वरूप छोटे छोटे गांव वीरान होने लगे हैं। हमें प्रयास करना होगा कि गांवों में भी शहरों जैसी सुख सुविधाएं प्रदान की जाएं। रोजगार के नए नए अवसर गांवों में ही पैदा किए जाएं जिससे कि ग्रामीण लोगों का शहरों की ओर बढ़ने का प्रतिशत कम होता नजर आए। समय का चक्र सदैव आगे की ओर बढ़ता रहता है। जो समय हमारे अनुकूल होता है, वह शीघ्र बीत जाता है परंतु जो समय हमारे प्रतिकूल होता है, वह बहुत सताता है। इसीलिए कहा जाता है कि समय बड़ा बलवान होता है। वह सदैव आगे ही चलता रहता है। वह पीछे कभी नहीं मुड़ता। समय की घड़ी को हम लाख चाहने पर भी पीछे की ओर नहीं घुमा सकते। अतः हमारे हाथ से बीता हुआ एक पल भी हमें वापस नहीं मिल सकता। इसलिए हमें सदैव यह प्रयास करना चाहिए कि हमारे हाथ में जो समय है, वह बहुत ही मूल्यवान है। इसका मूल्य जानकर हमें समय को व्यर्थ नहीं गंवाना चाहिए। किसान के लिए यही बातें लागू होती हैं। इंड़ो पेसिफिक क्षेत्र हमारी जीवन रेखा और व्यापार का राजमार्ग है। यह हर मायने में हमारे साझा भविष्य की कुंजी है। इस क्षेत्र में खुलेपन, एकीकरण एवं संतुलन कायम करने के लिए सबके साथ मिलकर काम करने की नितांत आवश्वकता है। यही कारण है कि भारत हाइवेज, वॉटरवेज, एयरवेज और आई–वेज सहित कनेक्टिविटी के विभिन्न रूपों पर फोकस कर रहा रहा है। बच्चों को पढ़ाई, युवाओं को कमाई, बुजुर्गों को दवाई, किसान को सिंचाई और जन–जन की सुनवाई सुनिश्चित करने अर्थात् पूरे देश में विकास की पंचधारा बहाने हेतु सरकार निरंतर प्रयासरत है। दिन–ब–दिन नित नवीन योजनाओं का लोकार्पण और शिलान्यास हो रहा है। देश में बिजली, पानी की जरूरतों को पूरा करने के लिए अहम प्रोजेक्ट्स पर काम चल रहा है। किसानों और जनता की पानी की समस्या को ध्यान में रखते हुए, वर्षा जल संचयन, बांधों की ऊंचाई बढ़ाने और सोलर पावर प्लांट्स की मंजूरी दी जा रही है।

मनुष्य प्रकृति का नायाब तोहफा और धरातल का सबसे समझदार प्राणी है। प्रकृति की यह एक अनमोल रचना है। आज का किसान कम समय में सर्वाधिक उपज लेने हेतु अधिकाधिक रासायनिक खादों का प्रयोग करने लगा है। परिणामस्वरूप जमीन की उर्वरा शक्ति कमजोर होती जा रही है। यही कारण है कि जैविक खेती जरूरत आज की नामक स्लोगन मार्केट में चल पड़ा है। आज देश में चहूं ओर पानी के लिए लोग तरस रहे हैं। किसान भी इससे अछूता नहीं है। जिनके पास पैसा है वे लोग जमीन में काफी गहराई तक जाकर कूप नलिका के माध्यम से पानी खींच रहे हैं। परिणामस्वरूप भूजल का स्तर निरंतर गिरता जा रहा है। भारतीय जनसंख्या का बढ़ता स्वरूप विकराल रूप धारण करता जा रहा है। उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु जंगलों की निरंतर कटाई करनोपरांत आवासीय सुविधाएं उपलब्ध कराई जा रही हैं। नए नए उद्योग धंधों का पदार्पण हो रहा है। दिन प्रतिदिन घटता वनक्षेत्र वन्य प्राणियों के लिए विकराल रूप धारण करता जा रहा है। इसलिए हमें निरंतर खबर आती रहती है कि वन्य प्राणियों का मानव आबादी में प्रवेश हो गया। चाहे आप इसे भटकाव कहिए या फिर हमारी करनी का फल कहिए। वन्य प्राणियों से जुड़े लोगों के लिए यह अब आम बात हो गई है। अपने भोजन की तलाश में जंगली पशु ग्रामीण आबादी में प्रवेश करने से अब हिचकते नहीं है। हमारे घटते वन क्षेत्र के कारण पशु–पक्षी और वनस्पतियां बुरी तरह प्रभावित हो रही हैं। प्रकृति का संतुलन बिगड़ता जा रहा है। सूनामी, भूकंप, वातावरण में परिवर्तन आदि के लिए केवल मनुष्य प्राणी ही जिम्मेदार है। हमारी नदियां सूख गई हैं। बढ़ता जन क्षेत्र और पानी के अभाव में जड़ी बूटियों की अनेकानेक प्रजातियां लुप्तप्राय होती जा रही हैं। पशु पक्षियों की विभिन्न प्रजातियां भी खत्म होने के कगार पर हैं। इतना सब कुछ होते हुए भी आज का इंसान सदैव दूसरों में दोष ढूंढता रहता है। वह स्वयं की कमियों को न देखकर दूसरों में कमियां तलाशता रहता है। हमें भारतीय कृषकों से बहुत कुछ सीखने की जरूरत है। अपने दोषों को सुधारने का साक्षात संदर्भ भी किसान से सीखना ही है। एक कुशल चित्रकार ने अपना एक चित्र प्रदर्शनी में रखते हुए नीचे लिख दिया कि कृपया इस चित्र में जहां भी गलती हो, वहां निशान लगा दीजिए। फिर क्या था लोगों ने उस चित्र की सूरत ही बदल दी। जब चित्रकार ने उसे देखा तो वह बहुत ही व्याकुल हुआ। अगली बार उसने उसी चित्र में कुछ गलतियां रखकर प्रदर्शनी में रखा और उसके दोष ठीक करने का अनुरोध किया। अबकी बार उसने चित्र को यथावत पाया क्योंकि किसी ने भी उसमें दोष नहीं निकाला था। चित्रकार के आश्चर्य का ठिकाना न था क्योंकि इस बार के चित्र में उसने जानबूझकर गलती की थी, फिर भी किसी ने उसको नहीं पकड़ा।

भारत की अर्थव्यवस्था में कृषि सबसे अहम है। देश की आधे से अधिक आबादी कृषि या उससे जुड़े किसी काम पर निर्भर है। सिर्फ कृषि से ही देश के जी.वी.ए. यानी ग्रॉस वैल्यू एडेड में 17 फीसदी का योगदान होता है। अगर सही से पानी ना मिले तो बीज और फर्टिलाइजर्स अपनी पूरी क्षमता नहीं दिखा सकते हैं। वैश्विक नियमों के अनुसार अगर कहीं पर प्रति व्यक्ति पानी 1700 क्यूबिक मीटर से कम होता है तो माना जाता है कि वहां वॉटर स्ट्रेस की स्थिति है। वहीं अगर प्रति व्यक्ति पानी का लेवल 1000 क्यूबिक मीटर से कम होता है तो माना जाता है कि वहां पानी की कमी हो गई है। भारत में ये आंकड़ा 1544 क्यूबिक मीटर है, यानी यहां वॉटर स्ट्रेस की स्थिति है। भारत में पानी की स्थिति की बात करें तो भारत में हर साल करीब 4000 अरब क्यूबिकक्यूमिब मीटर बारिश होती है। हालांकि, इसमें से 48 फीसदी इस्तेमाल हो जाता है। शहरी भारत की करीब 40 फीसदी मांग को जमीन के पानी से पूरा किया जाता है। ग्राउंडवॉटर की मांग लगातार बढ़ती ही जा रही है। पिछले चार दशकों में सिंचाई के लिए इस्तेमाल किया गया 84 फीसदी पानी जमीन से निकाला गया। उदाहरण के लिए बिहार के 12 जिले बाढ़ की मार झेल रहे हैं तो 15 जिले सूखे से पीड़ित हैं और वहां ग्राउंडवॉटर लेवल लगातार नीचे जा रहा है। ओडिशा में करीब 1500 मिलीमीटर बारिश हर साल होती है। हालांकि, हर गर्मी में राज्य के कुछ हिस्सों में सूखाग्रस्त हालात बन जाते हैं।

2019–20 के आर्थिक सर्वेक्षणानुसार स्थाई कृषि अभियान के लिए माइक्रो–इरिगेशन का सुझाव दिया गया है। इस तकनीक का धान, गेंहू, आलू, प्याज जैसी खेती में बड़ी अहमियत है। इसकी मदद से किसान 20–48 फीसदी तक सिंचाई का पानी बचा पा रहे हैं। एनर्जी एफिशिएंसी 10 फीसदी से बढ़कर 17 फीसदी हो गई है। लेबर कॉस्ट सेविंग 30 फीसदी से बढ़कर 40 फीसदी हो गई है। फसल का उत्पादन भी 20 फीसदी से बढ़कर 38 फीसदी हो गया है। सर्वे के अनुसार अगर सिंचाई के पारंपरिक तरीके से तुलना करें तो इस तकनीक से उतने ही पानी के जरिए अतिरिक्त एरिया की सिंचाई हो सकती है। माइक्रो–इरिगेशन से यह भी सुनिश्चित होता है कि उससे पानी की कमी वाली जमीन, बंजर जमीन और अतिरिक्त जमीन की सिंचाई की जा सकती है। सिंचाई के इस तरीके से किसानों और अर्थव्यवस्था दोनों को ही फायदा होगा। पानी के संकट की इस घड़ी में भारत की मदद माइक्रो–इरिगेशन यानी सूक्ष्म सिंचाई से हो सकती है। इससे ना सिर्फ पानी की कमी की समस्या से छुटकारा मिलेगा, बल्कि फर्टिलाइजर की खपत भी कम होगी। इसमें पोषक तत्व को सीधे जमीन में न डालकर एक विशेष प्रणाली के जरिए दिया जाता है। पानी का काफी बेहतर तरीके से इस्तेमाल होता है। पानी के कुओं को पानी के संरक्षण के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। माइक्रो इरिगेशन की वजह से पानी का जमीन में रिसाव कम हो जाता है। इसमें मेंटेनेंस की जरूरत भी काफी कम होती है। बचे हुए पानी को अगली फसल में लाया या जा सकता है। जमीन स्थाई रूप से सिंचाई के लिए घिरी नहीं रहती है। दूसरी ओर कैनाल इरिगेशन सिस्टम अपनाने के कारण बहुत सारी जमीन घिर जाती है। पानी के वाष्पीकरण से पानी का नुकसान होता है, जिससे पानी की एफिशिएंसी यानी दक्षता घटती है। पानी बराबर से हर जगह नहीं पहुंचता। खेती की जमीन का नुकसान होता है। बहुत सारा पानी जमीन में रिस जाता है।

कृषि उत्पादन में वृद्धि पूर्व में जनवृद्धि दर से भी कम रही। निम्न स्तर पर सीमित विकास के बावजूद आज भी भारतीय कृषि परंपरावादी है। अधिकांश भारतीय किसान खेती को व्यवसाय के रूप में न अपनाकर जीविकोपार्जन हेतु अपनाते हैं। कृषि की पुरानी परंपरागत विधियों, पूंजी की कमी, भूमि सुधार की अपूर्णता, विपणन एवं वित्त संबंधी कठिनाइयों आदि के कारण भारतीय कृषि की उत्पादकता अत्यंत न्यून बनी रहती है। अब नई पीढ़ी में शिक्षा एवं कृषि को कमाई का साधन बनाने की प्रवृति से भी कृषि एवं कृषक की आर्थिक दशा में कुछ सुधार आने लगा है। आज परिस्थिति इतनी बदल गई है कि जनसंख्या वृद्धि के कारण प्रति व्यक्ति उपलब्ध भूमि का औसत कम होता जा रहा है। इसके साथ ही साथ भूमि का असंतुलित वितरण भी कई स्थानों पर किसानों को बहुत कुछ सोचने पर विवश करता रहता है। आज की परिस्थितियों के संदर्भ में देखने से पता चलता है कि हमारी प्रति व्यक्ति खेती योग्य भूमि कम होती जा रही है। कभी कभी कृषि की न्यून उत्पादकता का बनना किसान की चिंता को ओर बढ़ाता रहता है। अतीत में देश के अधिकांश भागों में औसत उत्पादन स्तर अधिकांश विकसित व कई विकासशील देशों (इंडोनेशिया, फिलिपींस, मेक्सिको, ब्राजील, ईसीएम के देश आदि) से भी काफी कम रहा था। 'हरित क्रांति' और निरंतर सरकारी के प्रयासों ने कृषकों को लाभप्रद स्थिति में पहुंचाया है। किसानों को उचित मूल्य दिलाने की प्रवृत्ति का यह परिणाम निकला कि अब वे भी नित नवीन इजात

की गई तकनीकी को अपनाने से हिचकते नहीं हैं। रबी की फसलावधि में सरसों एवं खरीफ में सोयाबीन व मूंगफली का बढ़ता उत्पादन सरकार द्वारा ऊंची कीमतें निर्धारित करने से ही संभव हो सका है। आज राजस्थान सरसों एवं तिल, गुजरात मूंगफली एवं मध्य प्रदेश सोयाबीन उत्पादक प्रमुख प्रदेश बन चुके हैं।

तेरे दर पे आने से पहले, मैं बड़ा कमजोर होता हूं। मगर तेरी दहलीज को छूते ही मैं कुछ और होता हूं। खुद पर भरोसा और ऊपर वाले पर विश्वास रखकर किसान ने जिंदगी में इम्पॉसिबल को पॉसिबल कर दिखाया है। देश का किसान भाग्यवादी दृष्टिकोण अपनाए हुए है। हालांकि कृषि उत्पादन संबंधी उसे पर्याप्त अनुभव है, किंतु अनेक बार शीत लहर, पाला व कभी कभार बेमौसम के ओले और सर्दी उसकी फसल को नष्ट कर देते हैं। परिणामस्वरूप उसे अपने श्रम का उचित प्रतिफल प्राप्त नहीं हो पाता। इसलिए वह कृषि को व्यवसाय के रूप में नहीं बल्कि, जीवन–यापन की प्रणाली के रूप में अपनाता है। स्वभावतः वह वांछनीय मात्रा में उत्पादन उपलब्ध नहीं कर सकता। किसान की इसी भाग्यवादी प्रवृत्ति में परिवर्तन करने की एक रीति यह है कि उसे अधिकाधिक शिक्षित करने का प्रयत्न किया जाए। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक संकटों का सामना करने के लिए वैज्ञानिक साधनों का प्रयोग करने की चेष्टा करनी चाहिए। केंद्र सरकार की फसल बीमा योजना किसानों के लिए वरदान साबित हो रही है। भारत में पशुओं की संख्या अत्यधिक है। पशुओं के गोबर और मूत्र से तथा अन्य बेकार वस्तुओं से भी अधिकाधिक खाद प्राप्त की जा सकती है। इसके अतिरिक्त कंपोस्ट तथा खाद उपलब्ध हो सकती है। दुर्भाग्य से गोबर का अधिकांश भाग ईंधन के रूप में जला दिया जाता है, क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में अन्य सस्ते ईंधन का अभाव है। फलतः खेतों को पर्याप्त मात्रा में खाद नहीं मिल पाती, जिससे उत्पादन की स्थिति अच्छी नहीं है। वर्तमान में कृषि के विकास में रासायनिक उर्वरकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मृदा की सीमांत उत्पादकता अभी भी चुनौती बनी हुई है परंतु मृदा विश्लेषण के आधार पर वर्धित एनपीके और उचित पोषणों के अनुप्रयोग की आवश्यकता है। कंपोस्ट खाद घरेलू गैस, सिंचाई का उपयोगी जल, अन्य उपयोगी पदार्थ व गैस विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा प्राप्त की जाती हैं। इससे खेतों की उत्पादकता बढ़ने, भूक्षरण में कमी एवं ईंधन की आपूर्ति होने से लकड़ी व वनों पर दबाव भी घटता है। सिंचाई के साधनों के सीमित विकास ने अवश्य किसानों के लिए रुकावटें पैदा की थी परंतु अब उसने उनसे भी निबटने के तरीके खोज लिए हैं। अधिकांशतया भारतीय कृषि मानसून पर निर्भर है, क्योंकि आज भी कुल कृषि योग्य भूमि के 41 प्रतिशत में सिंचाई होती है। देश में वृहत और मध्यम सिंचाई योजनाओं के जरिए सिंचाई की पर्याप्त संभावनाओं का सृजन किया गया है। मानसून पर इतनी अधिक निर्भरता का प्रभाव यह होता है कि देश के अधिकांश भाग की कृषि प्रकृति की दया पर निर्भर है। इसलिए जब तक सिंचाई की व्यवस्था नहीं होती, तब तक भूमि में खाद देना भी संभव नहीं है, क्योंकि खाद का यथोचित प्रयोग करने के लिये काफी जल चाहिए, अन्यथा सामान्य खेती के सूखने का भी भय बना रहता है। सिंचाई की यह कमी कम वर्षा वाले पठारी भागों एवं सारे उत्तर पश्चिमी भारत में विशेष रूप से महसूस की जाती है, क्योंकि औसतन वर्षा सौ सेंटीमीटर से भी कम एवं वर्षा की अनिश्चितता पैंतिस प्रतिशत से भी अधिक रहती है।

आसमान में उड़ने वाले पक्षी को भी मालूम होता है कि आसमान में बैठने की जगह नहीं होती, फिर भी वह निरंतर जल और थल के ऊपर ऊंची व लंबी उड़ाने भरता रहता है। ठीक इसी तरह किसानों को कृषि कार्य में विभिन्न प्रकार की समस्याओं से दो चार होना पड़ता है। बढ़ती कृषि लागत से वह परेशान नजर आता है। किसानों को अच्छे बीज खरीदने पड़ते हैं जो बहुत महंगे दामों में मिलते हैं। ट्रैक्टरों या हल–बैल से खेत की जुताई भी आसान नहीं होती। खेतों में सिंचाई के लिए बिजली या पंपसैट की आवश्यकता होती है। किसानों को कृषि कार्य में अन्य मजदूरों की सेवाएं लेनी पड़ती है जिसके बदले उन्हें धन व्यय करना पड़ता है। फसल कटाई से लेकर मंडियों में पहुंचाने तक काफी खर्चा आता है। इतना सब कुछ करने के बाद यदि मंडी में फसल की उचित कीमत न मिले तो वे निराश और हताश हो जाते हैं। उन्हें कर्ज लेकर अगली फसल बोने की तैयारी करनी पड़ती है। भारतीय किसानों को प्रकृति से भी लंबी लड़ाई लड़नी पड़ती है। चूंकि हमारे देश में दो तिहाई कृषि वर्षा और मानसून पर आधारित है इसलिए किसानों को कभी सूखा तो कभी सूखे के बाद की स्थिति से निबटना पड़ता है। सूखा होने पर फसल सूख जाती है तो बाद में फसल बह जाती है। यदि इंद्रदेव कृपालु भी बने रहें तो फसलों को ओला, पाला और तूफान से भी निरंतर खतरा बना रहता है। पकी फसलों पर ओले पड़ गए तो सब गुड़ गोबर हो गया। दाने खेतों में ही झड़ गए। ऐसी स्थिति में यदि समय पर धूप न निकली तो

फसलों पर कीटाणुओं का प्रकोप बढ़ जाता है। फिर भी प्रकृति से लड़ते व भिड़ते किसान देश भर की आवश्यकताओं के अनुरूप खाद्यान्न उत्पादित कर ही लेते हैं।

कृषि यंत्रों का उत्पादन एवं उपयोग करना किसान के लिए वरदान साबित हो रहा है। कृषि में मशीनों एवं यंत्रों के उपयोग से कृषि कार्य उचित समय पर, उचित दक्षता तथा न्यूनतम लागत पर कर पाना संभव हो गया है। कृषि क्षेत्र में मुख्यतः ट्रैक्टर, थ्रेसर, हार्वेस्टर, पावर टिलर, पंपसेट, स्प्रेयर तथा डस्टर उपयोग में लाए जाते हैं। कृषि भूमि के बढ़ते क्षेत्र को उचित गहराई तक जोतने में ट्रैक्ट्रों की प्रमुख भूमिका होती है। ट्रैक्टर भूमि को जोतने व बोने के अतिरिक्त, माल ढोने तथा थ्रेसर चलाने, कुट्टी काटने, स्प्रेयर चलाने तथा सिंचाई के लिये पंपसेट चलाने वाली मशीनों के रूप में भी काम आते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि किसान बहुत परिश्रमी होते हैं। वे खेतों में जी तोड़ श्रम करते हैं। वे मेहनत करके अनाज, फल और सब्जियां उगाते हैं। लहलहाती फसलों को देखकर प्रसन्न हो उठते हैं। वे फसलों की लगातार निगरानी करते हैं। फसल कटाई करनोपरांत अनाज का भूसा मवेशियों के भोजन के लिए सुरक्षित रख लिया जाता है। जरूरत भर का अनाज और सब्जी घर में रखकर शेष मंडियों में बेच देते हैं। इनसे हुई आमदनी से उनका साल भर का गुजारा होता है। भारतीय किसान की एक महत्त्वपूर्ण समस्या यह रही है कि उसे अपना माल मंडियों में बेचना पड़ता है। कभी कभी ये मंडियां उसके खेतों से बहुत दूर होती हैं, जहां पहुंचने के लिए यातायात के साधन पर्याप्त नहीं हैं या इनके विक्रय की व्यवस्था ठीक नहीं है। अधिकांशतया किसान को अपने माल के उचित दाम प्राप्त करने में कठिनाई होती है। इनसे बचकर वह अपना माल ग्राम के साहूकार को ही ओने पौने दाम में बेच देता है, जो परेशानी का सबब बनता है। परंतु अब भारतीय किसानों के लिए अच्छे दिनों का आगमन हुआ है और नया कृषि कानून उन्हें मनमाफिक दामों पर अपनी फसलों को कहीं पर भी बेचने की आजादी प्रदान करता है। इससे उनकी आमदनी में अवश्य बढ़ोतरी का आशा है।

भारतीय किसान कृषि की उन्नत एवं आधुनिक वैज्ञानिक कृषि का अनुसरण करने लगे हैं जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है। बीज, खाद एवं कृषि उपकरण खरीदने में उन्हें सरकार की ओर से आर्थिक सहायता भी समय समय पर प्रदान की जाने लगी है। सरकार उनके लिए सस्ती दरों पर ऋण उपलब्ध कराती है और समय समय पर किसान के विपरीत मौसमी परिस्थितियों के कारण ऋण माफ भी कर देती है। किसानों की स्थिति में कुछ सुधार हुआ है परंतु अब भी उसे अनेक प्रकार की सहूलियतों की आवश्यकता है। उसके लिए उचित समय पर बिजली, पानी, खाद, बीज एवं कृषि यंत्रों की व्यवस्था की जानी चाहिए। फसल बीमा को अनिवार्य बनाकर उसे प्राकृतिक विपत्तियों से सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए। यदि इन्हें किसान हित में सरकारी स्तर पर ईमानदारी से क्रियान्वित किया जाता है तो खेती किसान के लिए वरदान ही साबित होती रहेगी।

कोविड–19 महामारी से उत्पन्न इस संकटकाल से निपटने में देश के किसानों के योगदान की प्रशंसा चहूं ओर की जा रही है। किसानों के चलते भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था आज भी मजबूत है और इससे पूरी अर्थव्यवस्था को सहारा मिला है। इंडियन रेलवे किसानों की आय बढ़ाने के लिए किसान स्पेशल ट्रेन चला रही है। इस तरह की पहली ट्रेन नासिक से बिहार के दानापुर के लिए शुरू की गई थी। दूसरी किसान स्पेशल ट्रेन पूर्व मध्य रेल के बरौनी से टाटानगर के बीच दूध की सप्लाई के लिए शुरू की गई। किसान रेल का मकसद किसानों की इनकम को दोगुना करना है। ट्रेन की मदद से किसान देश के कोने–कोने से फल, फूल, सब्जी जैसे उत्पादों को कम समय में लाकर ज्यादा मुनाफा कमा पाएंगे। अगर ये सामान ट्रक से जाते हैं तो कई दिन का समय लग जाता है और ज्यादा समान खराब हो जाते हैं। इस ट्रेन में कंटेनर फ्रीज की तरह होंगे। मतलब यह एक चलता–फिरता कोल्ड स्टोरेज होगा। इसमें किसान खराब होने वाले सब्जी, फल, फिश, मीट, मिल्क रख सकेंगे। इससे उनका नुकसान कम होगा। 'किसान रेल' पूरी तरह से वातानूकुलित है। ये एक तरह से पटरी पर दौड़ता कोल्ड स्टोरेज है। इससे शहर के लोगों को ताजी वस्तुएं मिल सकेंगी और किसानों को अपनी फसल स्थानीय मंडियों पर मजबूरन बेचना नहीं पड़ेगा। वर्तमान परिस्थितियों में यह उक्ति किसानों पर पूरी तरह सफलीभूत होती नजर आती है कि लाख दलदल हो, पांव जमाए रखिए, हाथ खाली ही सही, ऊपर उठाए रखिए। कौन कहता है छलनी में पानी रुक नहीं सकता, बर्फ बनने तक, होंसला बनाए रखिए ।

आत्मनिर्भर भारत में कृषि क्षेत्र का योगदान

मिथिलेश तिवारी, प्रियंका सिंह, दिलीप कुमार एवं अखिलेश कुमार सिंह
भा.कृ.अनु.प.– भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ, उत्तर प्रदेश
संवादी लेखक का ई–मेलः Mithilesh.Tiwari@icar.gov.in

वर्ष 2008 की वैश्विक मंदी में भी भारत, दुनिया के दूसरे देशों की तुलना में कम प्रभावित हुआ था। इसका प्रमुख कारण देश के ग्रामीण बाजार की जोरदार शक्ति ही माना गया था। अब कोविड–19 के बाद भी एकबार फिर भारत के लिए ग्रामीण अर्थव्यवस्था की अहमियत दिखाई दे रही है।

सरकार ने कोविड–19 के संकट से चरमराती देश की अर्थव्यवस्था के लिए आत्मनिर्भर भारत अभियान की अहम कड़ी के तौर पर बड़े आर्थिक पैकेज का ऐलान किया है। कहा गया है कि नए आर्थिक पैकेज में ग्रामीण भारत में कुटीर उद्योगों, सूक्ष्म, लघु एवं मछले उघमों, किसानों और मध्यम वर्ग सहित सभी वर्गो पर खास ध्यान केंद्रित किया जाना है। इस पैकेज में देश के लिए आत्मनिर्भरता के पाँच स्तंभों को मजबूत करने का लक्ष्य रखा गया है। इनमें तेजी से छलांग लगाती अर्थव्यवस्था, आधुनिक भारत की पहचान बनता बुनियादी ढ़ाचा, नए जमाने की तकनीक केंद्रित व्यवस्थाओं पर चलता तंत्र, देश की ताकत बन रही आबादी और मांग एवं आपूर्ति चक्र को मजबूत बनाना भामिल है। निसंदेह नया पैकेज न केवल अर्थव्यवस्था को गतिशील करेगा, वरना् देश को आत्मनिर्भरता की नई डगर पर भी आगे बढ़ता हुआ दिखाई देगा। ऐसे में देश की आत्मनिर्भरता ग्रामीण भारत और ग्रामीण अर्थव्यवस्था महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए दिखाई देगी। इन दिनों प्रकाशित हो रही वैश्विक अध्ययन रिपोटों में भी यह बात उभरकर सामने आ रही है कि कोविड–19 भारत की कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर सबसे कम असर गिरेगा और कोविड–19 के बाद कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था से भारत की आत्मनिर्भरता बढ़ेगी। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) ने अपनी नई रिपोर्ट में कहा है कि यद्यपि कोरोना वायरस की चुनौतियों के कारण भारत की विकास दर में तेज गिरावट आएगी लेकिन प्रचुर खाद्यान्न भंडार और ग्रामीण अर्थव्यवस्था भारत के लिए सहारा होगे और इन आधारों से भारत कोविड–19 के बाद तेजी से आगे बढ़ सकेगा। एशियाई विकास बैंक ने भी अपनी रिपोर्ट में कहा है कि भारत के पास कृषि और खाद्यान्न जैसे मजबूत आर्थिक बुनियादी घटक है जिनकी ताकत से भारत अगले वित्त वर्ष 2021–22 में जोरदार आर्थिक वृद्वि करते हुए दिखाई दे सकेगा।

हमारे देश के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में कृषि का योगदान करीब 17 फीसदी है। लेकिन देश के 60 फीसदी लोग खेती पर आश्रित है और वे बहुत कुछ आत्मनिर्भर जीवन जीते है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कृषि की हिस्सेदारी करीब 50 फीसदी है और शेष 50 फीसदी ग्रामीण क्षेत्र में कार्यरत छोटे–मछले उद्योग और सेवाक्षेत्र का योगदान है। यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि इस समय कोविड–19 के बीच भारत का सबसे मजबूत पक्ष यह है कि देश के सामने 135 करोड़ लोगों को भोजन संबंधी चिंता नहीं है। नवीनतम् स्थिति के अनुसार अप्रैल 2020 के अंत तक देश के पास करीब 10 करोड़ टन खाद्यान्न का सुरक्षित भंडार सुनिश्चित हो गया है। जिससे करीब डेढ़ वर्ष तक देश के लोगों की खाद्यान्न जरूरतों को सरलतापूर्वक पूरा किया जा सकता है।

इतना ही नहीं कृषि मंत्रालय के द्वारा प्रस्तुत फसल वर्ष 2019–20 के दूसरे अग्रिम अनुमान के आंकडे सुकुन का संकेत दे रहे हैं कि देश में खाद्यान्न उत्पादन 29.12 करोड़ टन के रिकॉर्ड स्तर पर पँहुच सकता है। कृषि और उससे संबंधित क्षेत्रों के 3.5 प्रतिशत की दर से वृद्वि करने की बात कहीं गई है। यह भी बताया गया है कि आगामी फसल वर्ष 2020–21 में खाद्यान्नों का उत्पादन लक्ष्य 29.83 करोड़ टन रखा गया है देश में पहली बार इतना बड़ा खाद्यान्न का लक्ष्य रखा गया है। निसंदेह भारतीय मौसम विज्ञान की अच्छे मानसून की यह संभावना न केवल देश के कृषि जगत के लिए अपितु पूरे देश की अर्थव्वस्था के लिए लाभप्रद है।

सरकार ने किसानों की उनकी उपज मंडियों के अलावा सीधे भी बेचने की इजाजत दी है। ग्रामीण क्षेत्रों में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग, पशुपालन आौर डेयरी उत्पादन को विशेष अहमिहत दी गई है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में रोजगार के सबसे बड़े स्त्रोत मनरेगा को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है। इसके साथ ही अधिक लोगों को रोजगार मिल सके इसके लिए केन्द्र और राज्य सरकारों की मौजूद

सिंचाई और जल संरक्षण योजनाओं को भी मनरेगा से जोड़ दिया गया है। लॉकडाउन के बीच भी घ्रतापूर्वक खेती और ग्रामीण क्षेत्र से जुड़ी हुई गतिविधियों को शुरू किए जाने से उर्वरक, बीज, कृषि रसायन जैसे कृषि क्षेत्र से जुड़ी हुई कंपनियां और ट्रैक्टर निर्माताओं को इसका बड़ा फायदा मिल रहा है। कृषि गतिविधियों में दी गई राहत से उपभोग की मांग बढ़ गई है। ऐसे में अब ग्रामीण भारत सर्विस सेक्टर और मैन्युफैक्चरिंग क्षेत्र को गतिशील करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए दिखाई दे रहा है।

अच्छे मूल्यों पर फसल खरीदे जाने के साथ–साथ किसानों की आय बढ़ाने के प्रयास निश्चित रूप से ग्रामीण अर्थव्यवस्था की आय बढ़ाने के प्रयास से ग्रामीणें को आगे बढ़ाएगें। यह बात भी महत्वपूर्ण है कि जो मजदूर वापस अपने गांव आए हैं वे अब जल्दी शहर जाने वाले नही है। वे कम से कम आगामी तीन–चार महीनों तक गॉव में ही रहेगें और कृषि कार्य करेंगें। इससे खाने–पीने और रोजमर्रा की जरूरत की चीजों की मांग बढ़ेगी। इसी तरह सरकार के द्वारा लोगों के जनधन खाते में नकद पैसा डालने जैसे प्रयासों से ग्रामीण परिवारों की आय बढ़ेगी और इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था को बढ़ावा मिलेगा।

कोविड–16 में कृषि सुधारों का भी एक अवसर छिपा हुआ दिखाई दे रहा है। कोरोना वायरस के फेलने के कारण देश में खेती करने के परम्परागत तौर–तरीकों में बड़ा बदलाव आया है। फसलों की बुआई, कटाई, और भंडारण के तरीकों में जो परिवर्तन आया है उसके कारण किसानों के द्वारा खेत तैयार करने, खेत में बुआई और फसल कटाई के काम में मशीनों का अधिक प्रयोग, सरकार के द्वारा गोदामों एवं शीतगृहों को बाजार का दर्जा दिया जाना, निजी मंडियां खोलने को प्रोत्साहनदायक अनुभुति, कृषक उत्पादन संगठनों को मंडी की सीमा मे बाहर लेन–देन की अनुमति, श्रम बचाने वाले उपकरणों के कारण कृषि क्षेत्र में मशीनीकरण, फसल विविधीकरण जैसे कृषि सुधार दिखाई दे रहे है।

बाजार में आ रही रबी की फसल के मार्केटिंग के लिए मौजूदा मंडी खरीद प्रणाली से आगे बढ़कर सभी मार्केटिंग चैनल खोलने की रणनीति पर आगे बढ़ना होगा, ताकि सीधे किसान से खरीद भी हो सके। गाँवों में मनरेगा को पूरी तरह कारगार ढंग से लागू किया जाए। साथ ही मजदूरी के लंबित भुगतान एवं काम मांगने पर काम दिलाने जैसी समस्याओं का भी समाधान निकाला जाए। इस बात पर भी ध्यान दिया जाना होगा किसानों के समक्ष खरीफ फसल आने से पहले कृषि उत्पादन के लिए जरूरी सामान खरीदने के लिए नकदी का संकट नही आएं।

कोविड–19 के संकट से देश को उबारने के लिए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के द्वारा घोषित 20 लाख करोड़ रूपए का व्यापक आर्थिक पैकेज न केवल देश की अर्थव्यवस्था को चरमराने से बचाएगा, वरना ग्रामीण भारत और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती देकर देश को आत्मनिर्भरता की डगर पर आगे बढाएगा। हम उम्मीद करें कि कोविड–19 की चुनौतियों के बीच नया आर्थिक पैकेज भारत में ग्रामीण एवं कुटीर उद्योग, बेहतर कृषि, प्रचुर खाद्यान्न उत्पादन, पशुपालन, डेयरी उत्पादन तथा खाद्य प्रसंस्करण जैसे खाद्य पदार्थो पर आधारित ग्रामीण उद्योगों को नया प्रोत्साहन देकर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती देगा। जिससे मजबूत ग्रामीण अर्थव्यवस्था आत्मनिर्भर भारत की बुनियाद बनते हुए दिखाई दे सकेंगी।

मृदा और जल संरक्षण : कृषि उत्पादन के लिये चुनौती

पवन कुमार[1], आनंद कुमार गुप्ता[1], मनोज कुमार[2], दिनेश कुमार[3], दिनेश कुमार जीनगर[4], सास्वत कुमार कर[1], सादिकुल इसलाम[1] एवं अक्षय धीरज[1]

[1]भा.कृ.अनु.प.–भारतीय मृदा एव जल संरक्षण सस्थान, देहरादून, उत्तराखण्ड
[2]कृषि विश्वविधालय, कोटा, राजस्थान
[3]भा.कृ.अनु.प.–भारतीय मृदा एव जल संरक्षण सस्थान, अनुसंधान केंद्र, दतिया, मध्य प्रदेश
[4]भा.कृ.अनु.प.–भारतीय मृदा एव जल संरक्षण सस्थान, अनुसंधान केंद्र, वासद, गुजरात
'संवादीलेखक का ई–मेल– pawanchoudhary2@gmail-com

कृषि पर मिट्टी के कटाव का प्रभावः मृदा की गुणवत्ता और कृषि उत्पादन को त्वरित मृदा अपरदन काफी प्रभावित करता है। उच्च मृदा अपरदन के कारण पोषक तत्वों के साथ–साथ उपजाऊ भूमी परत का भी निष्कासन होता है, जिसके कारण कृषि की पैदावार में कमी होती है और भूमि क्षरण होता है । मृदा अपरदन की दर को प्रभावित करने वाले मुख्य कारण मिट्टी की बनावट, ढलान की स्थिति, भूमी आवरण, जुताई एव जलवायु हैं । मौजूदा मिट्टी के नुकसान के आंकड़ों के एक अनुमान के अनुसार, हमारे देश में मिट्टी के कटाव की औसत वार्षिक दर लगभग 16.4 टन/हेक्टेयर है जिसके परिणामस्वरूप पूरे देश में कुल 5334 मिलियन टन मिट्टी का नुकसान होता है और पूरे देश में 8.4 मिलियन टन पोषक तत्वों की हानि होती है। कुल नष्ट हुई मिट्टी में से लगभग 29% स्थायी रूप से समुद्र में जाती है, जबकि 61% को अपवाह द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाया जाता है और शेष 10% सीधे जलाशयों में जमा होता जाती है । मृदा के जैव– भौतिक–रासायनिक गुणों में सुधार के लिए मृदा कार्बनिक पदार्थ बहुत महत्वपूर्ण है और इसमें लगभग 95% नाइट्रोजन और 25–50% फॉस्फोरस होता है। जबकि अपरदन की उच्च दर से मिट्टी और सुक्ष्म कार्बनिक कणों की हानि होती है। मृदा कार्बनिक पदार्थ की उपलब्धता एक विशेष कृषि–पारिस्थितिकी तंत्र में जैविक गतिविधियों और मिट्टी की जैव–विविधता को भी प्रभावित करती है। इस प्रकार, पानी और हवा से मिट्टी की हानि सभी पारिस्थितिक तंत्रों की उत्पादक दक्षता को गंभीर रूप से प्रभावित करती है। कृषि भूमि से सतही अपवाह और जल क्षरण को नियंत्रित करने के लिए वनस्पति का आवरण होना जरूरी है। अपवाह दर, मिट्टी एंव पोषक तत्वों की हानि की दर मुख्य रूप से वनस्पति, केनोपी कवर, ढलान कि स्थिती और वर्षा के प्रकार से निर्धारित होती है। मिट्टी की सतह पर केनोपी कवर और फसल के अवशेषों की अधिकता से सतह अपवाह की दर कम हो जाती है और सघन वर्षा के कारण मिट्टी के क्षरण के प्रभाव को भी कम करता है। इसके अलावा, यह मिट्टी की नमी को भी संरक्षित करता है तथा तलछट और कार्बनिक पदार्थों को बनाए रखता है। कृषि उत्पादकता को बनाए रखने के लिए पानी के कटाव के माध्यम से अपवाह, मिट्टी की हानि और पोषक तत्वों की हानि को कम करना अनिवार्य है।

मृदा और जल संरक्षण के उपायः मृदा और जल संरक्षण के लिए दो प्रकार के उपाय हैं, अर्थात् यांत्रिक/ संरचनात्मक उपाय और जैविक उपाय। यांत्रिक उपाय स्थायी और अर्ध–स्थायी संरचनाएं हैं जिनमें सीढ़ीदार संरचना, बन्डिंग, ट्रेंचिंग, चेक डैम, गेबियन संरचनाएं, ढीली पत्थर की दीवारें आदि शामिल हैं, जबकि जैविक उपाय वानस्पतिक, बागवानी और कृषि वानिकी से जुड़े उपाय हैं।

मृदा और जल संरक्षण के जैविक उपायः शस्य उपाय 12 प्रतिशत ढलान की स्थिती में लागू होते हैं। शस्य उपाय मिट्टी की सतह को ढंकने, पानी के अंतः गमन की दर और मिट्टी की जल अवशोषण क्षमता को बढ़ाकर वर्षा के प्रभाव को कम करते हैं जिसके परिणामस्वरूप अपवाह में कमी से मृदा अपरदन और मिट्टी के नुकसान में कमी आती है। ये उपाय सस्ते, टिकाऊ एव कभी–कभी संरचनात्मक उपायों की तुलना में अधिक प्रभावी हो सकते है।

समोच्च (कंटूर) खेतीः पहाड़ी कृषि–पारिस्थितिकी प्रणाली और ढ्लान भूमि मे समोच्च खेती को मिट्टी और जल संरक्षण के लिए सबसे अधिक अपनाया जाता है। सभी कृषि कार्यों जैसे जुताई, बुवाई, अन्तः कृषि क्रियायें आदि समोच्च रेखा के साथ किया जाता है जिससे एक निरंतर श्रृंखला का निर्माण होता हैं जो अपवाह के वेग को कम करता है और इस तरह मिट्टी के कटाव और पोषक

तत्वों के नुकसान को कम करता है। यह मिट्टी के क्षरण को कम करके मिट्टी की उर्वरता और नमी को संरक्षित करता है, और इस तरह से फसल की उत्पादकता में सुधार होता है।

फसलों का चुनावः मिट्टी और जल संरक्षण के लिए सही फसल का चयन महत्वपूर्ण है। किसान को फसल का चुनाव वर्षा की तीव्रता और अवधि, बाजार की मांग, जलवायु और उपलब्ध संसाधनों के अनुसार किया जाना चाहिए। अच्छी बायोमास, घनी कैनोपी कवर, और व्यापक जड़ प्रणाली वाली फसल बारिश के कटाव के कारण मिट्टी क्षरण कम करती है एव अपवाह में बाधा पैदा करती है जिससे मिट्टी और पोषक तत्वों के बहाव में कमी होती है।

फसल का चक्रणः मृदा उर्वरता को क्षीण किए बिना कम से कम निवेश से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए एक ही क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की फसलों को उगाने के लिए फसल चक्र को अपनाना चाहिए। एकल कृषि के परिणामस्वरूप मिट्टी के पोषक तत्वों और मृदा की उर्वरता समाप्त हो जाती है। अतः फसल अवशेषों के समावेश से कार्बनिक पदार्थ, मृदा स्वास्थ्य में सुधार होता है और जल प्रदूषण में कमी आती है।

आवरण (कवर) फसलेः मिट्टी के संरक्षण के लिए घनी कैनोपी कवर घनत्व वाले फसलो को उगाया जाता है, जिन्हें कवर फसलों के रूप में जाना जाता है। ग्वारपाठा, हरा चना, काला चना, मूंगफली, आदि सबसे प्रभावी आवरण फसलें हैं। आवरण फसलो से वर्षा की बूंदों, अपवाह और हवा के क्षरण से मिट्टी का संरक्षण करने, अवशेष निगमन और गहरी जड़ प्रणाली द्वारा मिट्टी के कार्बनिक पदार्थों को बढ़ाने, पोषक तत्वों की उपलब्धता में सुधार और जैविक नाइट्रोजन, मिट्टी की जल गुणवत्ता और जल धारण क्षमता में सुधार करने एव मृदा गुणों में सुधार तथा खरपतवार की वृद्धि को कम करने मे सहायक होती हैं ।

अंतः फसल (इंटरक्रॉपिंग)

निश्चित या वैकल्पिक पंक्ति पैटर्न के साथ एक ही क्षेत्र में एक साथ दो या अधिक फसलों की खेती को इंटरक्रॉपिंग के रूप में जाना जाता है। इंटरक्रॉपिंग में समय–आधारित और स्थानिक दोनों आयाम शामिल हैं। इंटरक्रॉपिंग मिट्टी की सतह पर बेहतर कवरेज प्रदान करता है, वर्षा के प्रत्यक्ष प्रभाव को कम करता है और मिट्टी को कटाव से बचाता है। इंटरक्रॉपिंग के द्वारा उच्च बायोमास, मिट्टी और जल संसाधनों का कुशल उपयोग, विभिन्न अवधियों में विभिन्न प्रकार के उत्पादों के उत्पादन के कारण विपणन जोखिमों में कमी, मिट्टी की उर्वरता में सुधार एव खरपतवार और कीटों या बीमारियों के कारण होने वाले नुकसान को कम किया जा सकता है।

पलवार (मल्चिग)ः मल्च, कार्बनिक या गैर–कार्बनिक पदार्थ है जिसका उपयोग मिट्टी की सतह को क्षरण से बचाने, वाष्पीकरण को कम करने एंव मिट्टी के तापमान को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है। मल्चिग मिट्टी की संरचना में सुधार एव मिट्टी की नमी को संरक्षित करता है । कार्बनिक मल्च में उपस्थित कार्बनिक पदार्थ पानी की धारण क्षमता, स्थूल और सूक्ष्म जीव जैव–विविधता, उनकी गतिविधि और मिट्टी की उर्वरता में लगातार सुधार करते हैं। दूसरी तरफ, अकार्बनिक मल्च, मिट्टी के क्षरण एवं पानी के

वाष्पीकरण के कारण होने वाले नुकसान को कम कर सकता है लेकिन मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार नहीं कर सकता है इसलिए फल और सब्जियों जैसी नकदी फसलों के लिए उपयुक्त है। आमतौर पर फसल उत्पादकता बढ़ाने एवं मिट्टी और जल संसाधनों के संरक्षण के लिए पॉलीथीन मल्च का उपयोग किया जाता है ।

संरक्षण जुताई: इसमें मृदा अपरदन और अपवाह को कम करने के लिए अगली फसल बोने से पहले और बाद में कम से कम 30% मिट्टी की सतह को फसल अवशेषों से ढक कर रख देना चाहिए। संरक्षण जुताई में कम जुताई, न्यूनतम जुताई, नो–टिल, डायरेक्ट ड्रिल, मल्च जुताई, स्टबल–मल्च फार्मिंग, ट्रैश फार्मिंग, पट्टेदार (स्ट्रिप) जुताई आदि शामिल हैं। संरक्षण जुताई की अवधारणा को बड़े पैमाने पर मशीनीकृत फसल प्रणाली में स्वीकार किया जाता है ताकि वर्षाजल का क्षरणकारी प्रभाव और मृदा कार्बनिक पदार्थ के रखरखाव के साथ मिट्टी की नमी का संरक्षण को कम किया जा सके। यह मृदा स्वास्थ्य, कार्बनिक पदार्थ, मृदा संरचना, उत्पादकता, मृदा उर्वरता, और पोषक चक्रण में सुधार करता है और मृदा संघनन को कम करता है ।

भूमि विन्यास तकनीक: फसल प्रणालियों, मिट्टी के प्रकार, फसलों, स्थलाकृति, वर्षा, आदि के अनुसार उपयुक्त भूमि विन्यास और रोपण तकनीकों को अपनाकर बेहतर फसल स्थापना, अततः कृषि क्रियायें संचालन, अपवाह आदि को कम किया जा सकता है जिससे मिट्टी और पोषक तत्वों की हानि, जल का संरक्षण, संसाधनों का कुशल उपयोग हो सके। रिज–फरो, उठा हुआ बेड–फरो, ब्रॉड बेड–फरो और पंक्तियों के बीच की भूमि को छोड़ना महत्वपूर्ण भूमि विन्यास तकनीक हैं। रबी मौसम की फसलों की बुवाई समतल क्यारी एवं बरसात के मौसम की फसल की बुवाई फरो में करने से अच्छी फसल सुनिश्चित होती है। मानसून की अवधि के दौरान अंतर–पंक्तियों से वर्षा जल को अच्छी तरह से बाहर निकाला जा सकता है यह मिट्टी में नमी की मात्रा को बढ़ाता है जो सूखे की अवधि के दौरान पौधों पर नमी के तनाव को कम करता है। यह विधि कपास, मक्का, सब्जियाँ, आदि फसलों के लिए सबसे उपयुक्त है। ब्रॉड बेड और फरो सिस्टम मुख्य रूप से उच्च वर्षा वाले क्षेत्रों (> 750 मिमी) में की जाती है जिसमें 90–120 सेमी चौड़ाई के बेड बनते हैं, जो लगभग 50–60 सेमी चौड़े और 15 से. मी गहराई वाले धंसे हुए होते हैं। भूमि विन्यास तकनीक मिट्टी की नमी संरक्षण में वृद्धि, कटाव पैदा किए बिना अतिरिक्त अपवाह का सुरक्षित बहाव, पौधों की वृद्धि और विकास के लिए बेहतर मिट्टी वातन और निराई और यांत्रिक कटाई को आसान बनाने के लिए जरूरी है ।

कृषि वानिकी के प्रकार

एग्री–सिल्विकल्चर: यह एक ही प्रबंधित भूमि इकाई पर बहुउद्देशीय पेड़ों (एमपीटी) के माध्यमिक घटक के साथ प्राथमिक घटक के रूप में कृषि फसलों को उगाना है। इसमें पेड़ की जड़ें मिट्टी के कणों को जड़ के आस–पास बांध कर रखती हैं तथा भूमी में पानी के रिसाव को बढ़ाकर अपवाह को कम करती हैं।

कृषि–बागवानी: इसमें एक ही प्रबंधित भूमि इकाई पर कृषि फसलों और फलों के पेड़ों को एक साथ उगाया जाता है। कुछ कम उपजाऊ भूमि पर फलों के पेड़ की प्रजातियाँ जैसे नींबू (साइट्रस लिमोन), आम (मेजिफेरा इंडिका), बेर (जिजिफस मौरिटिआना), और आंवला (फाइलेंथस एम्बिका) को कृषि क्षेत्रों में सफलतापूर्वक लगाया जा सकता है ।

गली (एली) क्रॉपिंग: इसमें फलीदार नाइट्रोजन–फिक्सिंग पेड़ की प्रजातियों के बीच बनाई गई गली में कृषि फसलों की पंक्तियों के रूप मे लगाया जाता है। यह प्रणाली पहाड़ी क्षेत्रों में मिट्टी और जल संरक्षण के प्रभावी उपायों में से एक है।

सिल्वी–चारागाह प्रणाली: एक ही प्रबंधित भूमि इकाई पर बहुउद्देशीय पेड़ों (एमपीटी) के साथ घास या पशुओं को खिलाने वाली फसल को उगाया जाता है। इस प्रणाली में कटे हुए और पतित भूमि को पुनः सही करने की क्षमता है। घास की प्रजातियां जैसे कि भैंस घास (सेनच्रस क्यूनिगिस), बर्डवुड ग्रास (सेनच्रस सेटीगरस), मार्वल ग्रास (डायक्थियम एनुलैटम), गिनी ग्रास (पैनिकम मैक्सिमम), पैरा ग्रास (ब्राचिरिया म्यूटिका) और हाथी घास (सेन्क्रस पर्पुरस) महत्वपूर्ण हैं।

मृदा और जल संरक्षण के यांत्रिक उपायः यांत्रिक या इंजीनियरिंग संरचनाओं को भूमि ढलान को संशोधित करने, जल को बिना मृदा कटाव के जलाशयों तक तक पहुंचाने, अवसादन और अपवाह वेग को कम करने और पानी की गुणवत्ता में सुधार करने के लिए डिजाइन किया जाता है। इन उपायों को या तो अकेले उपयोग किया जाता है या नियंत्रण उपायों के प्रदर्शन और स्थिरता में सुधार के लिए जैविक उपायों के साथ एकीकृत किया जाता है।

मेंडबंदी (बन्डिंग)

कंटूर बन्डिंगः कंटूर बन्डिंग का उपयोग मिट्टी की नमी को संरक्षित करने और 2 से 6ः ढलान वाले क्षेत्रों में कटाव को कम करने के लिए किया जाता है। दो बंडों के बीच लंबवत अंतराल को बंड्स के अंतर के रूप में जाना जाता है। बंड का फैलाव अपवाह के वेग, ढलान की लंबाई, ढलान की स्थिरता, वर्षा की तीव्रता, फसलों के प्रकार और संरक्षण प्रथाओं पर निर्भर है। ग्रेडेड बंड 6 से 10% भूमि ढलान वाले क्षेत्रों में सुरक्षित रूप से अतिरिक्त अपवाह पानी को बाहर निकलने के लिए बनाये जाते हैं।

कंटूर ट्रेंचिंगः यह 30 प्रतिशत से कम ढलान वाले क्षेत्रों में मिट्टी की नमी संरक्षण के लिए एवं अपवाह वेग को कम करने के लिए समोच्च रेखा पर खाइयों का निर्माण किया जाता है। खाइयों के निचले हिस्से पर बारिश के पानी के संरक्षण के लिए मेंडबंदी की जाती है। निरंतर समोच्च खाइयो का निर्माण कम वर्षा वाले समतल क्षेत्रों में 10–20 सेमी लंबाई एव 20–25 सेमी की चौड़ाई के साथ किया जाता है। डगमगाती समोच्च खाइयों को आम तौर पर उच्च वर्षा वाले क्षेत्रों में एक दूसरे के नीचे सीधे वैकल्पिक पंक्तियों में बनाया जाता है, जहां अतिप्रवाह का जोखिम बना हुआ होता है।

कंटूर वॉटलिंगः वॉटलिंग ढलान की लंबाई को छोटे भागो में विभाजित करने की एक तकनीक है और इनमें, 5 से 7 मीटर के ऊर्ध्वाधर अंतराल पर 33% ढलान तक वॉटल्स का निर्माण और 66% ढलान तक किया जाता है। यह ढलान वाले स्टिपर पर 66% से और बहुत ढीली या पाउडर चट्टानों पर प्रभावी नहीं है।

भू–वस्त्र (जियो–जूट)ः भू–वस्त्र, जूट या कॉयर के प्राकृतिक रेशों से बने होते हैं, जिनका उपयोग सड़कों के किनारे, खदानों और भूस्खलन वाले क्षेत्रों में ढलानों के स्थिरीकरण के लिए किया जाता है। अत्यधिक ढलान वाली भूमि पर जगह–जगह वनस्पति को इकट्ठा और नमी को संरक्षित करके वनस्पति की प्रारंभिक स्थापना की सुविधा प्रदान करता है। भू–वस्त्रों के खुले जाल का आकार 3 से 25 मिमी तक भिन्न होता है। भू–वस्त्रों की जैव अवक्रमण्यता 2–3 वर्षों के लिए होती है और जब पानी में पूरी तरह से भिगोया जाता है तो यह 40% नमी को अवशोषित कर सकता है।

क्रिब संरचनाएंः पत्थर/ब्रशवुड से भरी हुई लकड़ी की संरचनाओं का निर्माण करके 40% की खड़ी ढलान को स्थिर करने के लिए क्रैब संरचनाएं का उपयोग किया जाता है। 2–3 मीटर लंबाई और 8–12 सेमी व्यास वाले युकेलिप्टस के खंभे का उपयोग पालना संरचनाओं के निर्माण के लिए किया जा सकता है।

ढीले बोल्डर/पत्थर/चिनाई वाले चेक डैमः चेकडैम, खड़ी और चौड़ी गलियों में अपवाह दर और गंभीर कटाव को रोकने के लिए प्रभावी हैं और जलग्रहण के उच्च ऊंचाई वाले क्षेत्रों के लिए सबसे उपयुक्त हैं। ये संरचनाएँ सस्ती हैं, जो लंबे समय तक चलते है और कम रखरखाव की आवश्यकताएं होती हैं । इसी प्रकार, गैबियन चेक डैम का उपयोग अवसादन, कटाव की जांच करने के लिए और मिट्टी की नमी के संरक्षण के लिए तीखे कटे हुए गलित क्षेत्रों में जल निकासी लाइन उपचार के लिए भी किया जाता है ।

ब्रशवुड चेक डैम

पेड़ और झाड़ीदार प्रजातियों की शाखाओं को ब्रशवुड से भरे

हुए एक दूसरे के समानांतर दो पंक्तियों में रखा जाता है और प्रवाह के रास्ते या रास्ते में रखा जाता है। ये आम तौर पर छोटे और मध्यम गुल्ली में अतिप्रवाह को कम करने के लिए बनाए जाते हैं जो दीर्घकालिक प्रभावशीलता के लिए वनस्पति बाधाओं के पूरक होते हैं। इनमें वनस्पति को स्थापित करने के लिए मिट्टी की पर्याप्त मात्रा होती है। पेड़ों की प्रजातियों को गुल्ली के रास्ते में 0.3 मीटर 0.2 मीटर खाई में लगाया जाता है। यह अपवाह वेग, मिट्टी की हानि को कम करता है, और मिट्टी की नमी में सुधार करता है जो वनस्पति बाधाओं के सफल स्थापना में मदद करता है।

निष्कर्षः भूमि विभिन्न प्रकार के क्षरण की बढ़ती दर के कारण धीरे–धीरे सिमित और कम होती जा रही है और इस प्रकार खराब खेती योग्य भूमि क्षेत्र का कोई विकल्प नहीं है। सभी प्रकार के स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र में उत्पादकता के लिए स्वस्थ मिट्टी और पानी की उपलब्धता महत्वपूर्ण है क्योंकि पौधों को अपनी वृद्धि और विकास के लिए बेहतर जैव–भौतिक–रासायनिक गुणों युक्त पानी और अच्छी गुणवत्ता के साथ उपजाऊ मिट्टी की आवश्यकता होती है। जैविक और यांत्रिक उपायों के द्वारा मिट्टी और जल संरक्षण उपायों का उपयोग करके एक स्थायी तरीके से समग्र फसल उत्पादकता, अपवाह को कम करने, मिट्टी के कटाव को कम करने और मिट्टी की गुणवत्ता, पानी की गुणवत्ता, नमी संरक्षण में सुधार करने की आवश्यकता है। जैविक उपाय आर्थिक रूप से व्यवहार्य और पर्यावरण के अनुकूल हैं ।

मिट्टी और जल संरक्षण के लिए भविष्य के दृष्टिकोणः जलवायु परिवर्तन के वर्तमान युग में बढ़ती आबादी, खाद्य असुरक्षा और प्राकृतिक संसाधन क्षरण प्रमुख मुद्दे हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि 2050 में विश्व की जनसंख्या लगभग 10 बिलियन हो जायेगी। इसके अलावा तेजी से औद्योगिक विकास और गहन कृषि प्रथाओं से निकट भविष्य में भूमि और जल संसाधनों पर और अधिक दबाव बढ़ने की उम्मीद है। इसलिए, मिट्टी और जल संरक्षण में एक बदलाव और कृषि स्थिरता के लिए इसके प्रबंधन की आवश्यकता है।

मिट्टी और जल संरक्षण के साथ टिकाऊ कृषि के लिए भविष्य दृष्टिकोण निम्नलिखित हैः

- क्षेत्र विशेष के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पहलू के आधार पर नई नीतियों और नई प्रौद्योगिकियों के विकास का गठन।
- कृषि उत्पादकता को बनाए रखने के लिए प्रभावी संरक्षण उपायों को लागू करना और अपनाना।
- प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण के स्तर के आधार पर मौजूदा मिट्टी और जल संरक्षण प्रथाओं में सुधार और विकास करना।
- प्रभावी मिट्टी और जल संरक्षण के लिए भागीदारी के दृष्टिकोण पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए।
- मृदा और जल संरक्षण उपायों के प्रभाव का आकलन और निगरानी, उत्पादकता बढ़ाने, मौद्रिक रिटर्न और हितधारकों की आजीविका में उनकी प्रभावकारिता का मूल्यांकन करने के लिए किया जाना चाहिए।
- प्रभावित भूमि को बहाल करने और कृषि उत्पादकता को बनाए रखने के लिए लागत प्रभावी संरक्षण प्रथाओं का विकास किया जाना चाहिए ।
- अपनी सक्रिय भागीदारी के साथ किसानों के खेतों पर मिट्टी और जल संरक्षण के लिए कुशल प्रौद्योगिकियों का प्रदर्शन किया जाना चाहिए।
- हितधारकों को मृदा और जल संरक्षण प्रभावी प्रौद्योगिकियों के अनुसंधान, शिक्षा और विस्तार पर जोर देना।
- मिट्टी और जल संसाधनों के कुशल प्रबंधन प्रथाओं और विवेकपूर्ण उपयोग को अपनाना।

राष्ट्रीय कृषि बाजार (ई–नाम)

दिव्यता जोशी[1], अंजली चुनेरा[2] और प्रियजोय कर[3]
[1]पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना, पंजाब
[2]जी बी पी यू ए टी, पंतनगर
[3]भा.कु.अनु.प. भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना
संवाददाता ई–मेलः divyatajoshi01@gmail-com

बाजार में विखंडन, बहु–स्तरीय शुल्क और कई हितधारकों के कारण देश में किसानों के लिए कृषि विपणन हमेशा एक बड़ी चुनौती रही है। भारत सरकार द्वारा अप्रैल, 2016 में व्यापार से इन बाधाओं को दूर करने के लिए ई–नाम योजना का शुभारंभ किया गया था। यह 'वन नेशन, वन मार्केट' के तहत एपीएमसी मंडियों को एकीकृत करने के लिए एक इलेक्ट्रॉनिक ट्रेड पोर्टल है। कोविड–19 महामारी के दौरान, थोक मंडियों में भीड़ को कम करने के लिए सरकार ने पोर्टल में नई सुविधाएँ शुरू कीं। ई–प्लेटफॉर्म पर 150 से अधिक फसलों का विपणन किया जा रहा है जिसमें विभिन्न कृषि और बागवानी फसलें शामिल हैं। इस योजना का किसानों, व्यापारियों, खरीदारों, निर्यातकों और प्रोसेसर के लिए अत्यधिक प्रभाव है। एकमात्र चिंता राज्यों में इसकी उथली पहुंच है क्योंकि राज्यों को इस योजना को सक्षम करने के लिए कुछ पूर्व–आवश्यकताओं का पालन करना होगा। इसके अलावा, सरकार को इस योजना में अधिक से अधिक किसानों को शामिल करने के लिए कड़े कदम उठाने चाहिए ताकि देश के कृषि विपणन ढांचे को परिवर्तित किया जा सके और हितधारकों की आजीविका को सुरक्षित किया जा सके।

परिचय

राज्यों के भीतर भी बाजार का विखंडन, कृषि–उपज के मुक्त प्रवाह में बाधा, कई हितधारकों की उपस्थिति, कई मंडी शुल्क और नियम और अलग–अलग कृषि उपज विपणन समिति (एपीएमसी) के नियम और अधिनियम, कृषि विपणन की प्रमुख चुनौती रही है। जिसके परिणामस्वरूप किसान उत्पादकों के लाभ बिना उपभोक्ता के लिए कीमतों में वृद्धि प्रतीत होती है। इस मुद्दे को दूर करने के लिए और देश भर में एक एकीकृत बाजार बनाने के लिए, राष्ट्रीय कृषि बाजार योजना (ई–नाम) 14 अप्रैल, 2016 को कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा राज्य सरकारों के समर्थन से लघु कृषक कृषि व्यापार संघ (एस.एफ. ए.सी.) के माध्यम से शुरू की गई थी। ई–नाम कृषि वस्तुओं के लिए राष्ट्रव्यापी बाजार में एपीएमसी के तहत मौजूदा मंडियों को एकीकृत करने के लिए एक अखिल भारतीय इलेक्ट्रॉनिक व्यापार पोर्टल है। पोर्टल सभी एपीएमसी संबंधित जानकारी और सेवाएं जैसे कि तात्कालिक कीमतें, सभी खरीद और बिक्री के विकल्प, वैकल्पिक व्यापार प्रस्ताव और अन्य सेवाओं के लिए प्रतिक्रिया एक सिंगल विंडो सिस्टम के रूप में प्रदान करता है । यह डिजिटल प्लेटफॉर्म उपज की गुणवत्ता के आधार पर पारदर्शी नीलामी प्रक्रिया के माध्यम से उनके बेहतर कीमत की खोज की सुविधा देता है। यह खरीदारों और विक्रेताओं के बीच सूचना विषमता को दूर करने में मदद करता है और कृषि विपणन में एकरूपता को बढ़ावा देता है। ऑनलाइन बाजार भी लेनदेन की लागत को कम करने में मदद करता है, हालांकि वास्तविक कृषि व्यापार मंडियों के माध्यम से होता है।

ई–नाम का महत्व

अपनी स्थापना के बाद से, ई–नाम राज्य और राष्ट्रीय स्तर के बाजारों में एकरूपता उत्पन्न करने और एकीकृत बाजारों में उत्पादकों को सुव्यवस्थित करने के लिए कृषि विपणन में चुनौतियों का सामना कर रहा है। दूसरे चरण के अंत में (15 मई तक), ई–नाम के अंतर्गत 21 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों से पहले चरण में एकीकृत 585 मंडियों में 415 मंडियां जोड़ कर 1000 थोक मंडियों को शामिल किया है।

ई–नाम किसानों, व्यापारियों, खरीदारों, प्रोसेसर और अन्य हितधारकों के लिए बहुत महत्वपूर्ण रहा है। यह उपज बेचने के लिए व्यापक बाजार विकल्पों का वादा करके किसानों के लिए लाभ के अवसर प्रदान करता है। यह द्वितीयक व्यापार के लिए बड़े

राष्ट्रीय बाजार तक पहुंच प्रदान करता है। यह उपभोक्ताओं, प्रोसेसर और निर्यातकों को स्थानीय मंडी दर में प्रत्यक्ष भागीदारी देता है, गुणवत्ता मानकों और गुणवत्ता परीक्षण के सामंजस्य के प्रावधान के साथ मध्यवर्ती लागत को कम करता है। अब तक 69 वस्तुओं और 1,41,776 व्यापारियों, 82,366 कमीशन एजेंटों, 1612 एफपीओ के लिए व्यापार मापदंड निर्धारित किए गए हैं और विभिन्न राज्यों के 16.9 मिलियन किसान इस मंच से जुड़े हैं। मंडी के पास मृदा परीक्षण प्रयोगशाला जैसी अन्य सुविधाएं भी किसानों तक आसानी से पहुंचाई जा रही हैं।

देश भर में , कोविड–19 महामारी की स्थिति में तालाबंदी के दौरान, किसान उत्पादक बाजार की उपलब्धता की कमी के कारण अपनी उपज को डंप करने के लिए मजबूर थे। इस स्थिति से उबरने के लिए और किसानों को आसान बाजार सुलभता प्रदान करने के लिए भारत सरकार ने ई–नाम पोर्टल पर नई सुविधाएँ शुरू कीं, जिससे किसान मंडियों में किसी भी तरह की भीड़ से बचने के लिए अपनी उपज सीधे चयनित गोदामों को बेच सकें। इसके अलावा, किसानों और व्यापारियों को रसद सहायता प्रदान करने के लिए ऑनलाइन पोर्टल का गठन किया गया है। इस मंच पर 150 से अधिक कृषि उपज का कारोबार किया जा रहा है, जिसमें खाद्यान्न, दालें, तिलहन, बागवानी उत्पाद और रेशा आदि शामिल हैं। इलेक्ट्रॉनिक बाजार किसानों को एपीएमसी मंडियों में दूरस्थ बोली लगाने और परेशानी मुक्त ई–भुगतान के तरीकों का उपयोग करने की सुविधा देता है। इसी के साथ ही सेंट्रल वेयरहाउसिंग कॉरपोरेशन (सीडब्ल्यूसी) और राज्य वेयरहाउसिंग कॉरपोरेशन (एसडब्ल्यूसी) के साथ ई–नाम, मंडियों के सहयोग से किसानों को बेहतर भंडारण सुविधाएं प्रदान करने में मदद मिलेगी, जो किसान को उपज के असफल होने के जोखिम और अतिरिक्त बोझ को कम करेगा।

मुद्दे

ई–नाम का जमीनी स्तर पर बहुत बड़ा प्रभाव है लेकिन कुछ खामियां भी हैं जैसेः

1. कई राज्यों ने अभी तक इस योजना का विकल्प नहीं चुना है क्योंकि योजना के तहत सहायता के लिए पात्र होने के लिए पूर्व–आवश्यकताएं हैं। राज्य में कुछ के पास ई–नाम के लिए आवश्यक बुनियादी सुविधाओं की कमी है। यह बुनियादी संरचना में महत्वपूर्ण सुधार है, जैसे राज्य भर में एक एकल लाइसेंस, केवल एक स्तर पर बाजार शुल्क, इलेक्ट्रॉनिक प्लेटफॉर्म पर नीलामी।

2. योजना की पहुंच राज्यों में कम है। भारत में 700 से अधिक जिलों में से केवल 18 राज्यों और 3 केंद्र शासित प्रदेशों के 69 जिले आकांक्षात्मक हैं। ई–नाम के साथ आगे के जिलों को जोड़ने के लिए राज्यों को योजना के लिए आवश्यक पूर्व–आवश्यकताएँ सुनिश्चित करना है।

3. एपीएमसी के कार्य में पारदर्शिता चिंता का विषय है। सुधार केवल एपीएमसी के नियमों और विनियमों के उचित और अस्पष्ट प्रावधानों के साथ होगा। विपणन समिति को राज्य में योजना के समुचित कार्य को सुनिश्चित करना चाहिए।

4. देश के लगभग 16.7 मिलियन किसान ई–नाम में पंजीकृत हैं। योजना की उथली पहुंच चिंता का विषय है। इसके अलावा, हितधारकों को इलेक्ट्रॉनिक बाजार में कार्य करने के लिए प्रशिक्षित होना चाहिए।

निष्कर्ष

कृषि उपज का विपणन हमेशा देश के किसानों के सामने प्रमुख चुनौतियों में से एक रहा है। ई–नाम की स्थापना राष्ट्रव्यापी बाजार को एकीकृत करने और उपभोक्ता को लागत कम करने और किसानों के लिए कीमतों को कम करने के लिए की गई थी। ई–नाम किसानों को सीधे गोदामों के माध्यम से अपनी उपज बेचने की अनुमति देकर बाजार तक पहुंच की सुविधा प्रदान करता है। अब कृषि विपणन की संरचना को बदलने के लिए अधिक से अधिक किसानों को इस इलेक्ट्रॉनिक बाजार से जोड़ने की आवश्यकता है और अंततः किसानों को उनकी उपज के लिए एक पारिश्रमिक मूल्य प्रदान करना है ताकि उनके जीवन का उत्थान हो सके।

संदर्भः

https://www.enam.gov.in/web/
https://economictimes.indiatimes.com/news/economy/agriculture/e-nam-platform-onboards-1000-mandis-in-21-states/uts-centre/articleshow/75764965.cms

कृषि उत्पादकता बढ़ाने में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी की भूमिका

संगीता श्रीवास्तव एवं राघवेन्द्र कुमार
भा.कृ.अनु.प–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ, उत्तर प्रदेश
संवादी लेखक का ई–मेल : sangeeta.srivastava@icar.govin

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी है क्योंकि सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में इसकी हिस्सेदारी लगभग 17 प्रतिशत है। कृषि अनुसंधान और विस्तार में किए गए सतत प्रयासों द्वारा ही खाद्यान्न की बढ़ती मांग को पूरा किया जा सकता है। भारतीय अर्थव्यवस्था का एक अनन्य हिस्सा होने के बावजूद, कृषि कई पहलुओं में पीछे छूट जाती है और इसे उत्पादन के लिए आवश्यक प्राकृतिक संसाधनों की घटती स्थिति में उत्पादन बढ़ाने की बड़ी चुनौतियों का सामना करता पड़ता है। हालाँकि कृषि उत्पादों की बढ़ती मांग के कारण कृषकों तथा उत्पादकों को अपनी आजीविका को बनाए रखने और सुधारने के लिए अवसर भी प्राप्त होते हैं। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) इन चुनौतियों को दूर करने और ग्रामीणों तथा कृषकों की आजीविका के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

आईसीटी उन प्रौद्योगिकियों को संदर्भित करता है जो दूरसंचार माध्यमों जैसे रेडियो, टेलीविजन, मोबाईल फोन, कंप्यूटर एवं उपग्रह प्रौद्योगिकी द्वारा सूचना का संचार करते हैं। इसके अतिरिक्त इंटरनेट ने जिसमें ईमेल, इंस्टेंट मैसेजिंग, वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग और सोशल नेटवर्किंग वेबसाइट इत्यादि शामिल हैं। दुनिया भर के उपयोगकर्ताओं के लिए विचारों और अनुभवों तक त्वरित पहुंच देने के लिए एक–दूसरे के साथ संवाद करना संभव बना दिया है। कृषि में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी जिसे ई–कृषि के रूप में भी जाना जाता है, बेहतर सूचना और संचार प्रक्रियाओं के माध्यम से कृषि और ग्रामीण विकास को बढ़ाने में मददगार है। ई–कृषि में कृषि पर प्राथमिक ध्यान देने के साथ ग्रामीण क्षेत्र में आईसीटी का उपयोग करने के लिए नवीन तरीकों की संकल्पना, अवधारणा, डिजाइन, विकास, मूल्यांकन और अनुप्रयोग शामिल हैं। आईसीटी में डिवाइस, नेटवर्क, मोबाइल, सेंसर और एप्लिकेशन इत्यादि तकनीकों का प्रयोग करके टेलीफोन, टेलीविजन, रेडियो और उपग्रह इत्यादि उपकरणों के द्वारा व्यक्तिगत और संस्थागत क्षमताओं का विकास किया जाता है।

वैश्विक कृषि विकास में लाभ और हानि दोनों ही को समझना और संबोधित करना आजीविका को बेहतर बनाने के लिए महत्वपूर्ण है, जिसमें आईसीटी एक प्रमुख भूमिका निभाती है। खाद्य बाजार के वैश्वीकरण और एकीकरण में निरंतर वृद्धि तथा विकास ने कृषि क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा और संप्रेषित प्रभावकारिता को तेज कर दिया है, और आपूर्ति श्रृंखलाओं में और अधिक छोटे शेयर धारकों को शामिल करने के लिए अद्वितीय अवसर प्रदान किए हैं। चूँकि कृषि में आधुनिक और गंभीर चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, विशेष रूप से विकासशील देशों में जो कि ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी जोत ढांचों का अभाव, कीमत के उथल–पुथल के झटके, जलवायु परिवर्तन, सड़क और परिवहन सुविधाओं के अभाव तथा प्रसंस्करण सुविधा की निरंतर कमियों के संपर्क में होते हैं।

कृषि में आईसीटी की उपयोगिता के कारण

कृषि में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के व्यापक एवं आसान प्रयोग की प्रक्रिया के कारण निम्नानुसार प्रतीत होते हैं :

1. उपयोग में व्यापकता और सरलता

भारतीय समाज में मोबाईल फोन तथा कंप्यूटर का प्रचलन लगातार बढ़ रहा है अतः किसानों को उनकी जरूरतों के अनुरूप सॉफ्टवेयर की खोज कम अवरोध और कम लागत में प्राप्त हो जाती है।

2. समय से प्रासंगिक जानकारी की आवश्यकता

कृषि उत्पादन निरंतर संरचनात्मक अनुकूलन की प्रक्रिया में है जो व्यापार की बदलती शर्तों और बड़े, व्यावसायिक उत्पादन इकाइयों (कृषि और ग्रामीण विकास मंत्रालय, 1999) द्वारा निर्धारित

होता है। बड़ी उत्पादन इकाई और फसल विविधता अधिक परिष्कृत डेटा प्रबंधन और निर्णय लेने के लिए समर्थन की आवश्यकता को बड़ा करती है।

3. मौजूदा दक्षताओं का व्यापक उपयोग

अधिकांश किसान उत्पादन पहलुओं के लिए अपने प्रबंधन के प्रयासों को सीमित रखते हैं। अन्य व्यवसायों की तुलना में, किसान आमतौर पर अपने निर्णयों में अलग–थलग होते हैं। अतैव, उत्पादन विधियों और व्यवसाय प्रबंधन पद्धति में परिवर्तन के प्रति प्रतिरोध की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। इसके परिणामस्वरूप एक नई तकनीक के प्रति किसानों को अलगाव हो सकता है। आईसीटी एक आसान और सक्षम तकनीक है। पुराने और परंपरागत रूप से प्रशिक्षित प्रबंधक भी आसानी से बिना नए पृष्ठभूमि डेटा सेट और संख्या प्रबंधन पद्धति का अध्ययन किए ही आईसीटी को अपना सकते हैं। कृषि उत्पाद को वैश्विक बाजार में विपणन तथा कृषि उत्पादकता में सुधार के लिए आईसीटी का उपयोग करने के लिए इस तरह के पूर्व ज्ञान का आवश्यक होना एक अनिवार्य शर्त नहीं है।

4. अनुकूलता एवं लचीलापन

आईसीटी एक विशिष्ट फसल या फसल–पैटर्न तक सीमित नहीं है अतः यह किसान को अधिकतम अनुकूलन और लचीलापन प्रदान करती है। फलस्वरूप, एक ही फसल उगाने वाले विभिन्न किसान इस कार्यक्रम का अलग–अलग उपयोग कर सकते हैं।

5. समय पर सूचना

जब निर्णय बिंदु के यथा समय जरूरत पड़ने पर जानकारी अनुपलब्ध होती है, तो निर्णय वर्तमान में अलग स्थिति के आधार पर लिया जाता है। सामान्यतः यह प्रबंधकीय प्रक्रियाओं को विकृत कर सकता है। आईसीटी के माध्यम से आवश्यकतानुसार कृषकों को डेटा और सूचना तक पहुंचने में सुगमता मिलती है। यह डाटा दर्ज करने के तरीके में सरलता के साथ–साथ विस्तृत विश्लेषणात्मक रिपोर्ट संबंधित विषय भी उपलब्ध करा देता है।

6. निवेश पर रिटर्न

सूचना प्रणालियों के उपयोग से लाभ का आँकलन करना व्यवहारिकतावश कठिन है, किन्तु किसानों को आईसीटी से उनकी आवश्यकता के अनुकूल निम्नलिखित फायदे मिलते हैं।

- ❖ डाटा का आसान संग्रह
- ❖ लागत और आय की अनुकूल तुलना
- ❖ डाटा इनपुट का अनुवर्ती उपयोग
- ❖ संचयी डाटा सेट की स्थापना
- ❖ जानकारी प्रबंधन दक्षता
- ❖ एक विशिष्ट उत्पादन प्रक्रिया में बेहतर निर्णय
- ❖ कम समय में आपूर्ति का नेतृत्व

7. प्रशिक्षण और समर्थन

सफल सूचना प्रौद्योगिकी अपनाने के लिए जटिल सॉफ्टवेयर में ऑपरेशनल प्रवीणता प्रशिक्षण एक आवश्यक शर्त है। कुछ आईसीटी पैकेजों के लिए सीमित प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है, जो तकनीकी रूप से सरल है और विभिन्न उत्पादन पैटर्न के लिए उपयुक्त है तथा बिना किसी शुल्क के अनुरोध पर, ऑन–लाइन और फोन समर्थन द्वारा उपलब्ध है। समसामयिक रिफ्रेशर पाठ्यक्रम आदि भी मांग पर आयोजित किए जाते हैं। साथ ही, इससे कृषि विस्तार (कृषि सलाहकार सेवा) के माध्यम से कृषि उत्पादकता में बढ़ावा, खाद्य सुरक्षा में वृद्धि, ग्रामीण आजीविका में सुधार और कृषि को आार्थिक विकास में बढ़ावा इत्यादि सकारात्मक सहयोग प्रदान होते हैं।

कृषि में आईसीटी का लाभ

कृषि उत्पादकता में वृद्धि के अनुकूल कृषि क्षेत्र को मजबूत करने के लिए आईसीटी के लाभों में कृषि से संबंधित मुद्दों पर नई और अद्यतन जानकारी शामिल होती है जैसे नई किस्में को किसानों के लिए जारी करना, नए–नए पादप रोगों का उभरना, मौसम संबंधित पूर्वानुमान, मूल्य नियंत्रण, अन्य चेतावनी एवं सतर्कता इत्यादि। आईसीटी की कई ऐसी भूमिकाएं हैं जो कृषि विकास के लिए निर्णय समर्थन प्रणाली से लेकर फसलों के व्यापार तक शुरू होती हैं।

निर्णय समर्थन प्रणाली

किसानों के लिए निर्णय समर्थन प्रणाली के रूप में आईसीटी की बड़ी भूमिका है। इसके माध्यम से किसानों को कृषि संसाधन,

मौसम के मिजाज, फसलों की नई किस्मों उत्पादन और गुणवत्ता नियंत्रण को बढ़ाने के नित नए तरीकों के बारे में जानकारियों से अपडेट किया जाता है। किसानों को कृषि–जलवायु क्षेत्र, खेत और मिट्टी के प्रकार इत्यादि से संबंधित पर्याप्त जानकारी देना एवं कुशल और निरंतर प्रौद्योगिकियों का प्रसार करना भारत में नीति निर्माताओं के सामने वास्तविक चुनौती है। विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों के आधार पर कृषि में विविध जानकारी की आवश्यकता होती है, जैसे कि भूमि जोतों का आकार, फसलों के प्रकार, प्रौद्योगिकी के उपरांत बाजार उन्मुखीकरण, मौसम की स्थिति, इत्यादि। अधिकांश किसानों के द्वारा अपनी विशिष्ट कृषि समस्याओं के व्यक्तिगत समाधान पाने के लिए 'सवाल और जवाब सेवा' को सबसे अच्छी सुविधा माना जाता है। सूचना और संचार प्रौद्योगिकियाँ किसानों को सही समय पर सटीक और प्रामाणिक जानकारी प्रसारित कर सकती हैं ताकि वे इसका समुचित उपयोग कर सकें और लाभ प्राप्त कर सकें। आईसीटी के माध्यम से 'निर्णय समर्थन प्रणाली' किसानों को बेहतर परिणाम प्राप्त करने के लिए उनके खेत की उपज, कटाई, कटाई–भराई के बाद कृषि उत्पाद के विपणन आदि करने के लिए परिष्कृत कृषि पद्धतियों को अपनाने के लिए, विभिन्न प्रकार की फसलों की सूचना तकनीकी की सुविधा प्रदान करती है।

विस्तृत बाजार तक पहुँच

भारतीय कृषि में एक बड़ी कमी कृषि उपज के विपणन के लिए वितरण संजाल का जटिल होना है। किसानों को अपने कृषि उत्पाद की अद्यतन कीमतों, उनके लागत खर्च और उपभोक्ता के रुझान को, बेचने के लिए उचित स्थान मंडी इत्यादि से परिचित नहीं किया जाता है। आईसीटी के अंतर्गत अधिकतम लाभ के लिए किसानों की विपणन सूचना को सीधे ग्राहकों या अन्य उपयुक्त उपयोगकर्ताओं तक पहुँचाने की काफी क्षमता है। इसके द्वारा किसान अनेक उपभोगकर्ताओं के साथ सीधे, बगैर किसी बिचौलिये के, देश के किसी भी कृषि बाजार तक जुड़ सकते हैं और अपने कृषि उत्पाद के लिए मौजूदा कीमतों के बारे में समुचित जानकारी घर बैठे बाजार तक पहुंच सकते हैं। इसके अतिरिक्त यह बिचौलिए के लाभ को भी कम करेगा जो अन्ततोगत्वा किसानों के लिए फायदेमंद होगा। इससे किसान के राजस्व के स्रोत में सुधार हो सकता है।

कृषक समुदाय को मजबूत और सशक्त बनाना

आईसीटी प्रौद्योगिकियों के माध्यम से विभिन्न संस्थानों, गैर सरकारी संगठनों और निजी क्षेत्रों के साथ व्यापक नेटवर्किंग और सहयोग के माध्यम से विभिन्न कृषक समुदायों को मजबूत करने में मदद मिल सकती हैं। साथ ही, किसान अद्यतन जानकारी तथा वैज्ञानिक, कृषि और व्यापार समुदाय के लिए व्यापक संपर्क के माध्यम से अपनी क्षमता तथा दक्षता को आगे बढ़ा सकते हैं। किसान की फसल और कृषि उत्पाद के विभिन्न विपणन चैनल के बारे में सार्थक निर्णय लेने के लिए और अपनी उपज को बेचने के लिए सशक्त बनाया जा सकता है।

कृषि में आईसीटी के उपयोग

कृषि क्षेत्र में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के अनेक उपयोग निम्नवत् हैं

- छोटे पैमाने पर खेतों की दक्षता, उत्पादकता और स्थिरता बढ़ाना।
- कीटनाशी और पादप व्याधि रोग नियंत्रण के बारे में जानकारी, विशेष रूप से प्रारंभिक चेतावनी प्रणाली विकसित करना।
- नई किस्मों, गुणवत्ता नियंत्रण के लिए उत्पादन और नियमों का अनुकूलन करने के नए तरीके बताना।
- भविष्य की फसल और कृषि उपयोगी वस्तुओं के बारे में समुचित निर्णयों और उत्पाद बेचने और खरीदने के लिए सर्वोत्तम समय और स्थान की जानकारी उपलब्ध कराना।
- वस्तुओं, आदानों और उपभोक्ता रुझानों के लिए कीमतों पर अद्यतन (सामजिक) बाजार मंडियों की जानकारी।
- लागत (इनपुट) और खर्च (आउटपुट), भूमि के दावों, संसाधन अधिकारों और बुनियादी ढांचा परियोजनाओं पर जानकारी।
- सरकार के निर्वाचित सदस्यों का अपने निर्वाचन क्षेत्रों का क्षमतापूर्ण और बेहतर प्रतिनिधित्व।
- राष्ट्रीय या वैश्विक विकास के संदर्भ में स्थानीय समुदायों के परिप्रेक्ष्य को बढ़ावा देना।
- नए व्यापारिक अवसरों को प्रदान करना।
- दोस्तों और रिश्तेदारों के साथ आसान संपर्क स्थापित करना।

भारत में आईसीटी पहल के लिए उपयोग किए जाने वाले प्रमुख घटक

किसानों को आईसीटी सेवाएं प्रदान करने के लिए हमारे देश में जिन प्रमुख घटकों का उपयोग किया जाता है, वे हैं वेब पोर्टल, एंड्रॉइड फोन पर मोबाइल एप्लिकेशन, सरल टूजी फोन पर एसएमएस और वॉयस संदेश, विशेषज्ञों के साथ सूचना कियोस्क, वीडियो और वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग, किसानों को सूचना प्रसारित करने की पूरी प्रक्रिया में कृषि विशेषज्ञ प्रमुख घटक हैं।

भारतीय सूचना एवं संचार प्रोद्यौगिकी के संघटक

आईसीटी घटक उपयुक्त समय पर किसानों को प्रासंगिक, वास्तविक, अनुकूलित जानकारी का प्रसार कर सकते हैं। इसलिए, आईसीटी आम लोगों तक आसानी से पहुंचने और वैश्विक और स्थानीय जानकारी को हितधारकों तक आसानी से पहुंच बनाने के लिए एक मंच प्रदान करती है। मोबाइल टेलीफोन शहरी और ग्रामीण लोगों की सबसे बड़ी पसंद के रूप में उभरा है। किसानों के बीच संचार के लिए और विशेष रूप से उपज के विपणन के लिए कृषि से संबंधित जानकारी तक पहुँचने के लिए मोबाइल फोन सबसे व्यापक एक्सेस टूल है। एक तुलनात्मक अध्ययन में यह पाया गया कि उत्तर प्रदेश के पशुपालक, जो आईसीटी–आधारित जानकारी का उपयोग कर रहे थे, उन्होंने आईसीटी गैर–उपयोगकर्ता की तुलना में विभिन्न पशुधन प्रथाओं पर काफी बेहतर निर्णय लिए। इसके अलावा, कुछ अध्ययनों ने बताया कि आईसीटी आधारित पहलों से मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश और भारत के तमिलनाडु के किसानों को सूचना प्राप्त करने और इनपुट और आउटपुट के विवरण डाटा से बाजार में लेन–देन करने में मदद मिली है।

भारत में कृषि के लिए आईसीटी की पहल

पूरी दुनिया की लगभग 45 प्रतिशत आईसीटी परियोजनाओं को भारत में लागू किया गया है और ग्रामीण भारत में अधिकतम संख्या में सूचना कियोस्क लगाए गए हैं। फिर भी, यह पाया गया है कि कृषि में इन आईसीटी परियोजनाओं के बहुमत को दक्षिण और उत्तर भारत के सामाजिक और आर्थिक रूप से विकसित राज्यों में ही लागू किया गया है जबकि वंचित राज्यों को इन आईसीटी पहलों से कोई लाभ नहीं हुआ है। भारत में कुछ ई–कृषि पहलों के विवरण नीचे दिए गए हैं।

एग्रिसनेट (Agrisnet)

भारतीय किसानों के लिए प्रासंगिक जानकारी प्रसारित करने के लिए एग्रिसनेट एक व्यापक वेब पोर्टल है, जिसे भारत सरकार के कृषि मंत्रालय द्वारा शुरू और वित्त पोषित किया गया था। तमिलनाडु के कृषक समुदाय को आईसीटी के उपयोग के माध्यम से सूचना का प्रसार और सेवाएं प्रदान करता है। इसके निम्नलिखित लक्ष्य हैं:

- किसानों को इनपुट की गुणवत्ता और इसकी उपलब्धता के बारे में जानकारी प्रदान करना।
- विभिन्न सरकारी योजनाओं की जानकारी का प्रसार और मिट्टी परीक्षण के बाद उर्वरकों की सिफारिश करना।
- कृषि में उत्पादकता बढ़ाने के लिए नवीनतम तकनीकों पर जानकारी प्रदान करना।

डिजिटल ग्रीन (Digital Green)

डिजिटल ग्रीन एक अंतरराष्ट्रीय संगठन है, जो डिजिटल प्लेटफॉर्म का उपयोग करके ग्रामीण समुदाय को अपनी आजीविका में सुधार करने के लिए भागीदारी के दृष्टिकोण के साथ काम करता है। विशेषज्ञों की सहायता से प्रगतिशील किसानों द्वारा किसानों के लिए इंटरएक्टिव और स्व व्याख्यात्मक वीडियो तैयार किए जाते हैं। ये वीडियो किसानों को व्यक्तिगत स्तर पर या समूहों में दिखाए जाते हैं। वीडियो ग्रामीण जनता की आवश्यकताओं और कल्याण को ध्यान में रखते हुए तैयार किए जाते हैं।

ईसागू (eSagu)

ईसागू सिस्टम 2004 में तेलंगाना और आंध्र प्रदेश के किसानों की सुविधा हेतु ट्रिपल–आईटी, हैदराबाद द्वारा विकसित किया गया था। यह पोर्टल किसानों की समस्याओं का अनुकूलित समाधान प्रदान करता है और उन्हें बुवाई से लेकर कटाई तक की सलाह देता है। किसान अपने खेत की स्थिति को डिजिटल तस्वीरों और वीडियो के रूप में भेजते हैं, जिसका विश्लेषण कृषि वैज्ञानिकों और विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है। उसके बाद, वे अन्य किसानों को तथा छोटे और सीमांत किसानों को भी इसके लिए सही चीजों का सुझाव देते हैं और वे इससे लाभ उठा रहे हैं। विशेषज्ञ की सलाह से संबंधित किसान को कम समय में अवगत कराया जाता है। अनपढ़ किसानों के प्रश्नों को ग्रामीण स्तर पर शिक्षित समन्वयकों की सहायता से निपटाया जाता है। कृषि विशेषज्ञों को खेत की स्थिति या समस्या से अवगत कराया जाता है और वे किसानों तक सटीक जानकारी पहुँचाते हैं।

वारणा "वायर्ड विलेज" परियोजना (Warana Wired Village Project)

वारणा "वायर्ड विलेज" परियोजना 1998 में प्रधान मंत्री कार्यालय सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) टास्क फोर्स द्वारा किसानों को उत्पादकता बढ़ाने के लिए कृषि सूचना और सेवाएं प्रदान करने के उद्देश्य से शुरू की गई थी। यह जानकारी स्थानीय भाषा में किसानों को कृषि उत्पादन की कीमतों, महाराष्ट्र सरकार की रोजगार योजनाओं और शैक्षिक अवसरों के बारे में प्रेषित की जाती है। सूचना परिचालक जो किसानों और कृषि व्यापारियों के बीच मुख्य संबंध होते हैं, उनके माध्यम से सूचना को प्रचारित किया जाता है।

इफको किसान (IFFCO Kisan)

इफको किसान को 2012 में शुरू किया गया था। यह मोबाइल फोन पर वॉयस मैसेज के माध्यम से संबंधित किसानों को प्रासंगिक जानकारी और कस्टम–निर्मित समाधान प्रदान करता है। किसान 'फोन–इन' कार्यक्रमों के माध्यम से स्पष्ट विषयों पर कृषि विशेषज्ञों से सीधे संवाद कर सकते हैं।

एगमार्कनेट (AGMARKNET)

कृषि विपणन सूचना नेटवर्क एगमार्कनेट मार्च, 2000 में कृषि मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा किसानों को उनकी उपज बेचने के बारे में निर्णय लेने की क्षमता को सशक्त बनाने के उद्देश्य से शुरू किया गया था। इस पोर्टल को बाजार में कृषि वस्तुओं की आमद और उत्पादकों, उपभोक्ताओं, व्यापारियों और नीति निर्माताओं को पारदर्शी और शीघ्रता से जानकारी उपलब्ध कराने के माध्यम से कृषि विपणन प्रणाली को गति देने के लिए विकसित किया गया था।

डिजिटल मंडी (Digital Mandi)

डिजिटल मंडी किसानों और व्यापारियों को भौगोलिक और लौकिक सीमाओं से परे कृषि उपज बेचने और खरीदने की सुविधा के लिए एक इलेक्ट्रॉनिक ट्रेडिंग प्लेटफॉर्म है। नकदी संकट को दूर करने के लिए विभिन्न वित्तीय संस्थान भी कृषि उत्पादन के ऑनलाइन ट्रेडिंग में भाग लेते हैं।

एरिक परियोजना (Arik Project)

एरिक परियोजना 2007 में शुरू की गई थी और इसका उद्देश्य जलवायु स्मार्ट कृषि प्रथाओं का प्रसार करना और खाद्य सुरक्षा प्राप्त करना है। यह उत्तर–पूर्वी भारत में कृषि सूचना और प्रौद्योगिकी की पहुंच बढ़ाने के लिए एक एकीकृत मंच है। इसमें फसल की खेती, फसल प्रबंधन और विपणन पर कृषि विशेषज्ञ सलाह देता है। किसान पोर्टल से सीधे जानकारी भी प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन फील्ड कर्मचारी किसानों को आईसीटी आधारित जानकारी तक पहुँचने या अन्य कृषि विशेषज्ञों से परामर्श करने में मदद करते हैं।

आकाशगंगा (Akashganga)

यह आईसीटी परियोजना दूध संग्रह, वसा परीक्षण और समय पर भुगतान को उपयोगकर्ता के अनुकूल तरीके से संभव बनाती है। यह उन्नत प्रौद्योगिकी के समावेश के माध्यम से डेयरी किसानों की आय में वृद्धि करता है।

अक्वा (AAQUA)

अक्वा (लगभग सभी सवालों के जवाब) एक बहुभाषी ऑनलाइन प्रणाली है जो किसानों को सलाह देकर, उनकी समस्याओं को हल करने और कृषि से संबंधित उनके सवालों का जवाब देने की सुविधा प्रदान करती है। किसानों को ऑनलाइन या टेलीफोनिक रूप से प्लेटफॉर्म पर पंजीकरण करना होता है। उसके बाद, कृषक पोर्टल पर अपने प्रश्नों को पोस्ट कर सकते हैं, जिसके लिए उन्हें शीघ्र ही उत्तर मिलते हैं।

फिशर फ्रेंड मोबाइल एडवाइजरी (Fisher Friend Mobile App/FFMA)

मत्स्य लोक को व्यावसायिक खतरों से बचाने और मछुआरों के आजीविका की सशक्त बनाने के लिए 2009 में एम एस स्वामीनाथन रिसर्च फाउंडेशन का फिशर फ्रेंड प्रोग्राम (एफएफपी) शुरू किया गया था। इसके अंतर्गत लहर की ऊंचाई, हवा की गति और दिशा, संभावित मछली पकड़ने के क्षेत्र, प्रासंगिक समाचार, सरकारी योजनाओं और बाजार मूल्य की प्रासंगिक जानकारी स्थानीय भाषा में मछुआरों को प्रदान की जाती है। एफएफपी तमिलनाडु, पुडुचेरी, आंध्र प्रदेश, केरल और ओडिशा में सीमांत तटीय मछुआरा समुदायों को शामिल करता है। यह पोर्टल अंग्रेजी, तमिल, तेलुगु, मलयालम, ओडिया भाषाओं में सक्रिय है।

रॉयटर मार्केट लाइट (Reuter Market Light)

रॉयटर्स मार्केट लाइट (आरएमएल) की शुरुआत अक्टूबर, 2007 में मोबाइल–एसएमएस के माध्यम से पंजीकृत किसानों को खेती–बाड़ी की सटीक जानकारी देने के लिए की गई थी। यह राज्यों में आठ स्थानीय भाषाओं में सूचना का प्रसार करता है।

एमकिसान पोर्टल (mKisan Portal)

एमकिसान पोर्टल विभिन्न क्षेत्रों के तहत कृषि, बागवानी, पशुपालन और मत्स्य पालन सेवा वितरण के लिए एक मंच पर कार्य करता है।

इस पोर्टल को तीन तरीकों से किसानों की सेवा के उद्देश्य से बनाया गया है

- ❖ विभिन्न कृषि गतिविधियों के बारे में जानकारी का प्रसार करने के लिए,
- ❖ मौसमी सलाह प्रदान करने के लिए, और
- ❖ स्थानीय भाषाओं में एसएमएस के माध्यम से किसानों को सीधे विभिन्न सेवाएं प्रदान करना।

महिंद्रा किसान मित्र (Mahindra Kisan Mitra)

यह पोर्टल प्रगतिशील किसानों की सफलता की गाथा के साथ–साथ किसानों को वस्तुओं की कीमत, मौसम की भविष्यवाणी, फसल सलाह, ऋण, बीमा, कोल्ड स्टोरेज और गोदामों की जानकारी प्रदान करता है।

किसान कॉल सेंटर (KCC)

केसीसी की शुरुआत 21 जनवरी, 2004 को कृषि और सहकारिता विभाग द्वारा की गई थी, जिसमें स्थानीय भाषाओं में कृषक समुदाय के लिए उनकी समस्याओं को समाप्त करने का मुख्य उद्देश्य था। किसानों की जिज्ञासाओं को कृषि स्नातकों द्वारा हेल्प लाइन, उनकी स्थानीय भाषा में टोल फ्री नंबर से निपटाया जाता है। कृषि वैज्ञानिक इन समस्याओं को हल करने के लिए मदद करते हैं।

ग्राम ज्ञान केंद्र (VKC)

एमएस स्वामीनाथन अनुसंधान फाउंडेशन द्वारा ग्राम ज्ञान केंद्र (वीकेसी–विलेज नॉलेज सेन्टर), 1998 में पांडिचेरी में कृषि आदानों, आउटपुट की कीमत, फसल चक्र, उर्वरकों और कीटनाशकों के उपयोग से संबंधित तकनीकी जानकारी के प्रवेश द्वार के रूप में शुरू किए गए। इसमें सार्वजनिक पता प्रणाली के माध्यम से सूचना का प्रसार किया जाता है।

एग्रोनेट (Agronet)

एग्रोनेट प्लेटफॉर्म किसानों के लिए मल्टीटास्किंग प्लेटफॉर्म है, जहां किसान इनपुट, कृषि सलाह, मौसम की स्थिति इत्यादि प्राप्त कर सकते हैं। एग्रनोक्स्ट किसानों की कृषि लाभप्रदता को अधिकतम करने वाली विश्वसनीय और सामयिक सूचना देकर

कृषि उद्योग में योगदान करने का प्रयास करता है। यह कृषि उत्पादकता और स्थिरता को कायम रखने में सहायता करता है।

भावी संभावनाएं

हमारे देश में कृषि अपरिहार्य क्षेत्रों में से एक है। यह सर्वविदित तथ्य है कि आईसीटी कई मायनों में कृषि में क्रांति ला सकता है। कृषि परियोजनाओं के लिए आईसीटी के उपयोग को अधिक बल देने की आवश्यकता है। साथ ही, आईसीटी की तुलना और सटीक मूल्यांकन करने की परम आवश्यकता है। इसके माध्यम से एप्प साइट से जानकारी प्राप्त करने और कृषि में उन्नत आईसीटी का उपयोग करने की पहल, समय की माँग है। वर्तमान आईसीटी–आधारित सूचना सेवा मॉडल की समीक्षा और विश्लेषण करने के बाद, निम्नलिखित सुझाव जो सरकारी संगठनों और आईसीटी डेवलपर्स के लिए प्रासंगिक हैं, उन्हें भविष्य के विकास और अनुसंधान के लिए प्रदान किया जा सकता है:

- ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों के साथ सीधे काम करने वाले जमीनी स्तर के श्रमिकों तथा कृषि अधिकारियों की प्रतिक्रिया के आधार पर कृषि में आईसीटी परियोजनाओं को चलाने के लिए मौजूदा रणनीतियों और नीतियों की प्रभावशीलता का मूल्यांकन।
- सामाजिक और आर्थिक लाभ को और बेहतर बनाने के लिए कृषि क्षेत्र को आधुनिक डिजिटल कृषि में बदलना।
- तकनीकी प्रगति और कौशल में सुधार के साथ किसानों द्वारा डिजिटल पहुंच में सुधार।
- कृषि में अधिक उन्नत आईसीटी उपकरणों को अपनाना जैसे कि जीपीएस, जीआईएस, आरएफआईडी, रिमोट सेंसिंग, सटीक कृषि के लिए स्मार्ट डिवाइस, स्थिरता, पर्यावरण, खाद्य सुरक्षा, इत्यादि।
- कृषि में बिग डाटा का विश्लेषण और प्रबंधन।

भारतीय अर्थव्यवस्था का एक बड़ा हिस्सा होने के बावजूद, कृषि कई पहलुओं में पीछे है। इनमें खराब कनेक्टिविटी और बाजार के विघटन की विशेषता, किसानों के लिए अविश्वसनीय और विलंबित जानकारी, छोटे भूमि जोत और उन्नत प्रौद्योगिकी को कम अपनाना इत्यादि प्रमुख हैं। आधुनिक तकनीकों और प्रासंगिक जानकारी के बारे में हमारे किसानों को अद्यतन रखने के लिए विभिन्न तरीकों का पता लगाना अपरिहार्य हो गया है। विभिन्न कृषि–जलवायु परिस्थितियों, भूमि धारण का आकार, मिट्टी के प्रकार, फसलों के प्रकार और संबंधित नाशी कीटों तथा बीमारियों के लिए विशिष्ट बेहतर व्यक्तिगत प्रौद्योगिकियों का विकास और समय पर प्रसार कृषि वैज्ञानिकों तथा विशेषज्ञों के लिए आगे बढ़ने के लिए वास्तविक मुददा है। सही जानकारी की समय पर उपलब्धता और इसका उचित उपयोग कृषि के लिए अपरिहार्य है। सूचना के प्रसार, प्रौद्योगिकी के हस्तांतरण, आदानों की खरीद और प्रदानों की बिक्री के लिए आईसीटी आधारित पहल की जा सकती है, ताकि किसानों को लाभान्वित किया जा सके। कृषि समस्याओं की समय पर जानकारी और व्यावहारिक समाधान किसानों को सम्मुन्नत कृषि प्रौद्योगिकी तथा पद्धति को अपनाने एवं वाणिज्यिक आदान–प्रदान के बेहतर विकल्प बनाने और खेती को प्रगतिशील ढंग से करने में मदद करता है।

भारत ने डिजिटल स्ट्राइक करते हुए चीन के बहुत सारे ऐप्स को बैन कर दिया है, जिसके बाद भारत सरकार द्वारा 'आत्मनिर्भर भारत एप्प' को लॉन्च किया गया है। इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय के अनुसार भारतीय ऐप निर्माताओं और नवोन्मेषकों को प्रोत्साहित के लिए आत्मनिर्भर भारत ऐप को शुरू किया गया है। यह आत्मनिर्भर भारत ऐप इनोवेशन चैलेंज दो ट्रैक पर काम करेगा। ट्रैक–1 मिशन मोड में काम करते हुए अच्छी क्वालिटी के ऐप्स की पहचान करेगा। ट्रैक–2 के तहत नए ऐप्स और प्लेटफॉर्म बनाने के लिए आत्मनिर्भर धारणा के स्तर से लेकर के बाजार की पहुंच तक सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएंगी। आईसीटी के माध्यम से मौजूदा, ई–लर्निंग, वर्क फ्रॉम होम, गेमिंग, बिजनेस, एंटरटेनमेंट, ऑफिस यूटिलिटीज और सोशल नेटवर्किंग की श्रेणियों वाले ऐप्स को सरकार द्वारा प्रोत्साहन के साथ ही कृषि सुधार विधेयक, 2020 (1) कृषक उपज व्यापार और वाणिज्यविधेयक (संवर्धन और सरलीकरण), (2) कृषक (सशक्तीकरण व संरक्षण) कीमत आश्वासन और कृषि सेवा पर करार विधेयक, (3) आवश्यक वस्तु (संशोधन) विधेयक के अनुरूप देश की सूचना क्रांति को निसंदेह संबल देगी और इससे किसानों की आय को दोगुना करने के लिए भरपूर मदद मिलेगी।

विश्व में ट्रांसजेनिक फसलों की स्थिति

कृष्ण कुमार, पूजा शर्मा, अभिषेक झा, भूपेंद्र कुमार, प्रांजल यादव एवं सुजय रक्षित
भा.कृ.अनु.प–भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना, पंजाब
संवादी लेखक का ई–मेलः krishjiwra@gmail-com

ट्रांसजेनिक या आनुवंशिक रूप से संशोधित (जीएम) फसलें, ऐसी फसल हैं जिनके डी.एन.ए. में मौजूदा गुणों को सुधारने के लिए या नये वांछित गुणों (जोकि प्राकृतिक रूप से उन फसल प्रजातियों में नहीं होते हैं) को डालने के लिए आनुवंशिक इंजीनियरिंग तकनीकों का उपयोग करके संशोधित किया जाता है । पौधों के जीनोम में बाहरी न्यूक्लिक एसिड अनुक्रम/जीन को ट्रांसफौरमेसन विधियों का उपयोग करके (जैसे कि एग्रोबैक्टीरियम–मध्यस्थता परिवर्तन या प्रत्यक्ष जीन हस्तांतरण) सम्मिलित करने से उत्पन्न होने वाले संशोधित पौधों को ट्रांसजेनिक पौधे कहते है। सम्मिलित (डाले गये) जीन को ट्रांसजीन के रूप में भी जाना जाता है, जो की पूरी तरह से अलग प्रजातियों से जैसे–कि किसी असंबंधित पादप, बैक्टीरिया, फंगस या किसी जानवर प्रजाति से लिया जा सकता है। इस प्रकार, आनुवांशिक संशोधन ने पारंपरिक पादप प्रजनन (जिसमें प्रजातियों के बीच लैंगिक संगतता/अनुकूलता आवश्यक होती है) की बड़ी कमी पर काबू पा लिया है। वर्ष 1977 में, एग्रोबैक्टीरियम ट्यूमेफेशियन्स की प्राकृतिक क्षमता– पौधों की कोशिका के जीनोम में टीआई प्लास्मिड डीएनए (टी–डीएनए) को सम्मिलित करने (डालने) की खोज हुई और इसलिए टीआई प्लास्मिड्स को वेक्टर के रूप में प्रस्तावित किया गया ताकि पौधे की कोशिकाओं में बाहरी जीन को प्रवेश कराया जा सके। इस अध्ययन ने ट्रांसजेनिक पौधों के विकास से संबंधित सफलता का नेतृत्व किया। इसके बाद, विशिष्ट जीन अनुक्रम को आनुवंशिक इंजीनियरिंग प्रौद्योगिकी और ट्रांसफौरमेसन तकनीक का उपयोग करके पादप कोशिका में स्थानांतरित किया गया। प्रथम ट्रांसजेनिक पादप, अर्थात एंटीबायोटिक प्रतिरोधी तंबाकू और पेटुनीया, को परस्पर एक ही वर्ष में विकसित किया गया था। 1983 में, सूरजमुखी में सेम (बीन) से 'फेजोलिन' जीन की अभिव्यक्ति कराई गयी थी और इस प्रकार इस अध्ययन के जरिए पौधे के जीन की टैक्सोनॉमिक रूप से अलग एंजियोस्पर्म परिवार में स्थानांतरण कराने पर भी अभिव्यक्ति का प्रदर्शन किया गया। 1994 में, ट्रांसजेनिक टमाटर, 'फ्लेवर सेवर' ज्यादा शैल्फ जीवन (निधानी आयु) और देरी से पकने वाले गुणों के साथ मोनसेंटो कंपनी द्वारा विकसित की गयी, जिसे खाद्य और औषधि प्रशासन (एफडीए) द्वारा अमेरिका में बिक्री के लिए अनुमोदित किया गया था। बाद में, कई ट्रांसजेनिक फसलें, जैसे संशोधित तेल संरचना वाला कैनोला, बीटी आलू, बीटी मक्का, बीटी कपास, ब्रोमॉक्सिनिल हर्बिसाइड प्रतिरोधी कपास, और ग्लाइफोसेट–प्रतिरोधी सोयाबीन आदि को व्यावसायिक खेती के लिए मंजूरी मिली। आज तक, कुल 32 फसलों में 525 ट्रांसजेनिक घटनाओं (इवेंट्स) का व्यावसायिक खेती के लिए मंजूरी दी गई है (स्रोतः आई.एस.ए.ए.ए. डेटाबेस)। इनमें से, मक्का में अधिकतम इवेंट्स/घटनाओं (238) को व्यावसायिक खेती के लिए मंजूरी मिली है, उसके बाद कपास (61 इवेंट्स), आलू (49 इवेंट्स), अर्जेंटीना कैनोला (42 इवेंट्स), सोयाबीन (41 इवेंट्स), कार्नेशन (19 इवेंट्स) और अन्य शामिल हैं।

पिछले दो दशकों में ट्रांसजेनिक फसलों की खेती ने कृषि उत्पादकता में उल्लेखनीय वृद्धि की है। ट्रांसजेनिक फसल अपनाने के प्रभाव का एक वैश्विक मेटा (बड़ा)–विश्लेषण में अनुमान लगाया गया है कि औसत ट्रांसजेनिक तकनीक ने फसलों की पैदावार में 22% की वृद्धि के साथ किसानों के लाभ में 68% की वृद्धि हुई है। हालांकि, बाहरी (फॉरिन) जीन वाली ट्रांसजेनिक फसलें और इनके वाइल्ड रिलेटिव्स (जंगली रिश्तेदारों) के बीच इन बाहरी जीन की प्रवाह की संभावना के कारण ये फसलें विभिन्न चिंताओं का विषय बनी हुई हैं जैसे–कि पर्यावरण के सूक्ष्म जीव (रोगाणुओं) में एंटीबायोटिक प्रतिरोध जीन के हस्तांतरण की संभावना और स्वास्थ्य पर संभावित प्रतिकूल प्रभाव, जैसे– कि मनुष्यों को एलर्जी और विषाक्तता आदि की वजह से, ट्रांसजेनिक फसलों को दुनिया के कई हिस्सों में सार्वजनिक स्वीकृति की कमी का सामना करना पड़ रहा है, जिसके फलस्वरूप, इन फसलों को

व्यापक रूप से अपना लेना असंभव बन गया है। बाहरी जीन स्थानांतरण/ सम्मिलन से संबंधित चिंताओं को दूर करने के लिए, दो नई तकनीकों, जिनका नाम सिसजेनेसिस और इंट्राजेनेसिस है, को ट्रांसजेनेसिस के विकल्प के रूप में विकसित किया गया। इन दोनों तकनीकों में, फसल में सुधार के लिए उपयोग होने वाला जेनेटिक तत्व/ जीन, समान या निकट संबंधी प्रजातियों यानी लैंगिक संगत/अनुकूल जीन पूल से संबंधित होता हैं । इसके अलावा, हाल के वर्षों में जीनोम संपादन (एडिटिंग) की महत्वपूर्ण तकनीक के आगमन ने फसल जीनोम को एक अभूतपूर्व सहजता, सटीकता और शुद्धता के साथ संशोधित करने में सक्षम बनाया है। नई एडिटिंग तकनीकों, अर्थात, जिंक फिंगर न्युक्लिअसिज (जेडएफएन), ट्रांसक्रिप्शन एक्टीवेटर–जैसे एफ्फेक्टर न्युक्लिअसिज (टीएएलईएनस) और क्लस्टर्ड रेग्युलर्ली इंटरस्पेस्ड शॉर्ट पेलिंड्रॉमिक रिपीट्स (सीआरआइएसपआर) / कैस सिस्टम, द्वारा पारंपरिक यादृच्छिक उत्परिवर्तन (म्युटाजेनेसिस) और ट्रांसजेनेसिस से जुड़ी अप्रत्याशितताओं और अक्षमता पर काबू पाने में बड़ी सफलता पाई गई है। इन जीन एडिटिंग टूल्स में ट्रांसजेनिक्स से जुड़े कई नियामक मुद्दों को संबोधित करने की क्षमता है और इसलिए लक्षित उत्परिवर्तनों (टारगेटेड म्युटाजेनेसिस), अंतर्जात जीन का सटीक संपादन (एडिटिंग) और जीन के साइट विशिष्ट सम्मिलन जैसे हस्तक्षेपों के माध्यम से उन्नत किस्मों को विकसित करने के लिए योगदान करने को तैयार हैं।

जैव सुरक्षा और पर्यावरण संबंधी चिंताओं के बावजूद, ट्रांसजेनिक प्रौद्योगिकी बेहतर फसल पौधों के तेजी से विकास और कई अनुकूल लक्षणों के एक साथ संयोजन (स्टैक्ड इवेंट्स) के लिए एक पसंदीदा विधि रही है। पिछले 22 वर्षों में, ट्रांसजेनिक फसलों का वैश्विक क्षेत्र 1996 में 1.7 मिलियन हेक्टेयर से बढ़कर 2018 में 191.7 मिलियन हेक्टेयर हो गया है, यानी लगभग 113 गुना वृद्धि (स्रोतः आईएसएएए 2018)। इस 191.7 मिलियन हेक्टेयर मे से ट्रांसजेनिक सोयाबीन का 95.9 मिलियन हेक्टेयर (50:), ट्रांसजेनिक मक्का का 58.9 मिलियन हेक्टेयर (31%), ट्रांसजेनिक कपास का 24.9 मिलियन हेक्टेयर (13%), ट्रांसजेनिक कैनोला का 10.1 मिलियन हेक्टेयर (5.3%) और अन्य ट्रांसजेनिक फसलों का 1.9 मिलियन हेक्टेयर (<1%) क्षेत्र था (चित्रः1) । इस प्रकार, ट्रांसजेनिक तकनीक को आधुनिक कृषि में अपनाई जाने वाली सबसे तेज पादप प्रौद्योगिकी माना जाता है। 2017–18 में, इन फसलों को 26 देशों में लगभग 17 मिलियन किसानों द्वारा लगाया गया था और उनका अनुमानित वैश्विक बाजार मूल्य 18.2 बिलियन यूएस डॉलर था (स्रोतः आईएसएएए 2018) ।

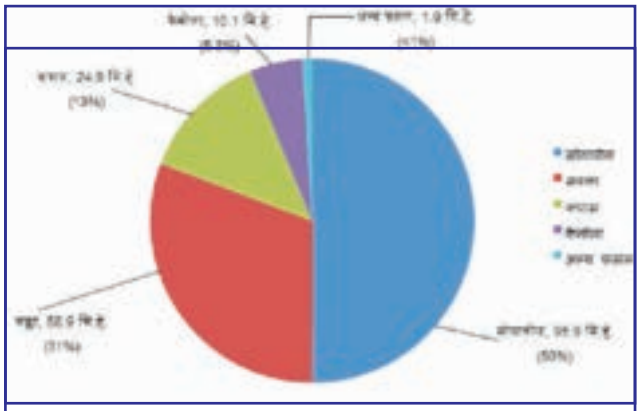

चित्र 1: 2017–18 में वैश्विक भूमि क्षेत्र में लगाया गये ट्रांसजेनिक फसलों का प्रतिशत (स्रोतः आईएसएएए, ग्लोबल स्टेटस ऑफ कमर्शियल जीएम फसलः 2017)

26 देशों में से शीर्ष पांच ट्रांसजेनिक फसल उगाने वाले देश – संयुक्त राज्य अमेरिका 75 मिलियन हेक्टेयरय 93.3% (सोयाबीन, मक्का और कैनोला का औसत) अपनाने की दर,, ब्राजील (50.2 मिलियन हेक्टेयरय 93% अपनाने की दर), अर्जेंटीना (23.9 मिलियन हेक्टेयरय् 100% अपनाने की दर), कनाडा (12.7 मिलियन हेक्टेयरय 92.5% अपनाने की दर) और भारत (11.6 मिलियन हेक्टेयरय 95% अपनाने की दर) हैं (चित्रः 2) । जिन प्रमुख लक्षणों / गुणों के लिए, ट्रांसजेनिक फसलों को विकसित किया गया है और उन्हें व्यावसायीकरण के लिए मंजूरी दी गई है, उनमें हर्बिसाइड टॉलरेंस (खरपतवार नाश सहिष्णु), कीट प्रतिरोधक (इंसेक्ट रेजिस्टेंस), रोग प्रतिरोधक, अजैविक तनाव सहिष्णुता (अबायोटिक स्ट्रेस टॉलरेंस), पोषण वृद्धि आदि शामिल है। जिसमें, हर्बिसाइड टॉलरेंस सबसे प्रमुख है जिसको वर्ष 2017 में ट्रांसजेनिक फसलों के कुल क्षेत्रफल का लगभग 88.7 मिलियन हेक्टेयर या 47%: हिस्सा में बोया गया । हर्बिसाइड टॉलरेंस के बाद, स्टैक्ड इवेंट्स ट्रांसजेनिक फसलें (दो या दो से अधिक लक्षणों का एक ही पोधे में एक साथ संयोजन वाली फसलें) और

कीट प्रतिरोधक लक्षण ने वैश्विक ट्रांसजेनिक फसल क्षेत्र का लगभग 41% और 12% हिस्सा कवर किया हुआ है। शेष लक्षण वाले ट्रांसजेनिक फसलें 1% से भी कम क्षेत्र में लगाई गई थी (आईएसएएए 2018)। इसके अलावा कई नये गुणों को समावेशित करने के लिए अभी शोध हो रहा है।

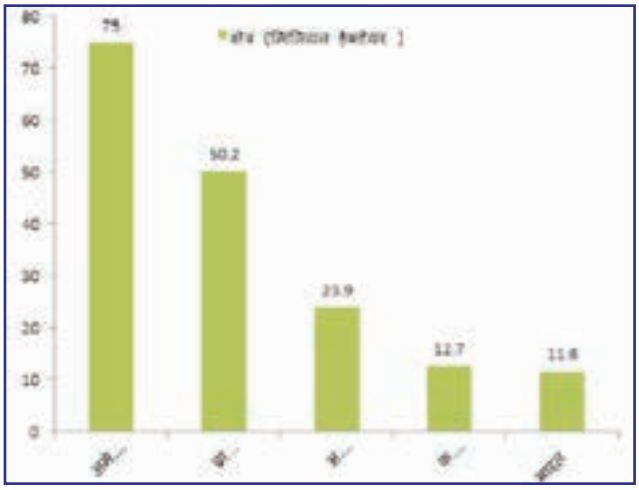

चित्र 2: 2018 में ट्रांसजेनिक फसलें की खेती करने वाले शीर्ष 5 देश (स्रोतः आईएसएएए 2018)

भारत में ट्रांसजेनिक फसलों की स्थिति

भारत में अभी तक ट्रांसजेनिक (इंसेक्ट रेजिस्टेंस बीटी) कपास को ही व्यावसायिक खेती के लिए मंजूरी दी गई है। भारत के किसान कई वर्षों से ट्रांसजेनिक कपास लगा रहे हैं। 2017 में, भारत में बीटी कपास के क्षेत्र में 600,000 हेक्टेयर की वृद्धि हुई । 2016 में बीटी कपास का क्षेत्रफल 10.8 मिलियन हेक्टेयर से बढ़कर 11.4 मिलियन हेक्टेयर हो गया है, जो देश में कपास के कुल 12.24 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र का 93% है। ट्रांसजेनिक बीटी कपास की खेती ने राष्ट्रीय कपास उत्पादन को बढ़ावा दिया है, जिसने छोटे संसाधन वाले गरीब किसानों के जीवन को उच्च आय, स्वास्थ्य के अनुकूल खेती के तरीकों और मन की शांति के साथ लाभान्वित किया है।

इसके अलावा 2017 में, पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय (एमओईएफ एवं सीसी) की जेनेटिक इंजीनियरिंग मूल्यांकन समिति (जीईएसी) ने जीएम सरसों की सुरक्षा और प्रदर्शन का अच्छी तरह से आकलन किया और ट्रांसजेनिक सरसों, 'हाइब्रिड धारा सरसों हाइब्रिड –11' (डीएमएच–11) के पर्यावरणीय रिलीज की सिफारिश की। इस ट्रांसजेनिक हाइब्रिड सरसों की घटनाओं (इवेंट्स) और इसकी पेरेंटल लाइनें को 'बार्नेज', 'बारस्टार' और 'बार' जीन का उपयोग करके दिल्ली विश्वविद्यालय के सेंटर फॉर जेनेटिक मैनिपुलेशन ऑफ क्रॉप प्लांट्स (सीजीएमसीपी) द्वारा विकसित किया गया है। 26 अक्टूबर, 2017 को, एमओईएफ और सीसी ने ट्रांसजेनिक सरसों के पर्यावरणीय रिलीज से संबंधित मामलों को अलग–अलग हितधारकों से विभिन्न अभ्यावेदन की प्राप्ति के आधार पर आगे की समीक्षा तक लंबित रखने का फैसला किया (एमओईएफ और सीसी, 2017)। इसी प्रकार, जीईएसी ने विभिन्न शाकनाशी सहिष्णु सोयाबीन घटनाओं (इवेंट्स) से प्राप्त कच्चे सोयाबीन तेल के आयात से संबंधित आवेदन को स्थगन में रखा हुआ है।

निष्कर्ष

लगातार बढ़ती मानव आबादी, कृषि योग्य भूमि के क्षेत्रफल में बढ़ती कमी और वैश्विक जलवायु परिवर्तन की तीव्रता ध्यान में रखते हुए, उच्च उपज वाली फसल किस्मों को विकसित करने की आवश्यकता है जो पोषण से समृद्ध और विभिन्न पर्यावरणीय और जैविक तनावों के प्रति सहिष्णु (टॉलरेंट) हो। ट्रांसजेनिक तकनीक ने फसल की उन्नत किस्मों के विकास में बहुत योगदान दिया है, जैसे–कि ज्यादा उपज, जैविक और अजैविक तनावों के प्रतिरोधक, और खाद्य गुणवत्ता में वृद्धि की किस्में। इस प्रकार ट्रांसजेनिक फसलों के कारण पेस्टिसाइड और कीटनाशकों के उपयोग में और पर्यावरण फुटिप्रन्ट में कमी आयी है और किसान की आय में वृद्धि हुई है। हालांकि इन फसलों को सख्त सुरक्षा मूल्यांकन, जैसे कि एलर्जी, विषाक्तता और संरचना संबंधी विश्लेषण आदि करने के बाद ही नियामक स्वीकृति प्रदान की जाती है, हालाँकि पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य की सुरक्षा की चिंताओं जैसे–कि संभावित जीन प्रवाह, आनुवांशिक बहाव, गैर–लक्षित जीवों पर प्रतिकूल प्रभाव, प्रतिरोधी खरपतवारों और कीड़ों की संभावित उन्नति (उत्पत्ति), विषाक्तता और एलर्जी आदि संभावित जोखिमों के कारण इन फसलों के बारे में प्रश्न उठाया गया है। ट्रांसजेनिक फसलों के ऐसे संभावित पर्यावरणीय और मानव स्वास्थ्य निहितार्थ के कारण कई देशों ने इन्हे कम स्वीकार किया है। ट्रांसजेनिक फसलों से जुड़ी कुछ प्रमुख चिंताओं को दूर करने के लिए, नई वैकल्पिक तकनीक, जैसे कि सिसजेनेसिस, इंट्राजेनेसिस और सबसे हाल ही में, जीनोम एडिटिंग का उपयोग बेहतर फसल पौधों को विकसित करने के लिए किया जा रहा है।

सौर ऊर्जा द्वारा पशु आहार उबालने के लिए नॉन–ट्रेकिंग सौर चूल्हे की डिजाइन, विकास और प्रदर्शन मूल्यांकन

सुरेन्द्र पुनियाँ, ए.के. सिंह एवं दिलीप जैन
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर, राजस्थान
संवादी लेकख का ई–मेल : surendra.poonia@icar.gov.in

सर्व विदित है कि ईंधन आधारित ऊर्जा की तेजी से कमी को देखते हुए, अक्षय ऊर्जा दुनिया के भविष्य की ऊर्जा सुरक्षा के लिए सबसे व्यवहार्य विकल्प है। वर्तमान में, दुनिया के वैश्विक बिजली उत्पादन में अक्षय ऊर्जा की हिस्सेदारी 22.8 प्रतिशत है जो ज्यादातर पन बिजली के योगदान से किया जाता है। भारत का कुल पवन ऊर्जा स्थापना में विश्व में 5 वाँ स्थान है। वर्तमान में भारत में ऊर्जा उत्पादन का 13 प्रतिशत नवीकरणीय पवन, सौर तथा बायोमास जैसे श्रोतों के माध्यम से पूरा किया जाता है। जबकि कोयला 60 प्रतिशत योगदान के साथ अभी भी ऊर्जा उत्पादन का मुख्य श्रोत है। वर्तमान में राजस्थान एवं गुजरात सौर ऊर्जा उत्पादन के क्षेत्र में अंग्रणी राज्य हैं एवं कुल सौर ऊर्जा का लगभग 58 प्रतिशत इन राज्यों से उत्पादित किया जाता है। केन्द्र सरकार ने राष्ट्रीय सौर मिशन के तहत 2021–22 में 1,00,000 मेगावाट (100 गीगावाट) सौर ऊर्जा पैदा करने का महत्वाकांक्षी लक्ष्य रखा है। इसी तरह राजस्थान रिन्यूएबल एनर्जी कॉर्पोरेशन लिमिटेड ने सन् 2022 तक राजस्थान में 25,000 मेगावाट के सौर ऊर्जा प्लांट लगाए जाने का लक्ष्य निर्धारित किया है।

थार मरूस्थल देश का एक ऐसा क्षेत्र है जहां सबसे ज्यादा सौर ऊर्जा उपलब्ध रहती है और सबसे ज्यादा समय तक सूर्य प्रकाश उपलब्ध रहता है। शुष्क क्षेत्र में सौर ऊर्जा की प्रचुर मात्रा में उपलब्धता को देखते हुए इसका अधिक से अधिक दोहन हो सकता है। इस कभी खत्म न होने वाली सौर ऊर्जा का उपयोग करने के लिए काजरी में पिछले तीन दशक में विभिन्न प्रकार के घरेलू, खेती और उद्योग में काम आने वाले सौर यन्त्रों के विकास हेतु शोध कार्य किया जा रहा हैं। सौर ऊर्जा का खाना पकाने, कृषि उत्पादों को सुखाने, पानी गर्म करने, जल को शुद्ध करने, पशु आहार उबालने, आसुत जल उत्पादन, मोम पिघालने, शीत भण्डारण आदि में उपयोग किया जा सकता है। इसके अलावा पौधों में दवाई छिड़कने के लिए सोलर स्प्रेयर और सोलर डस्टर भी बनाए गए। वर्तमान में काजरी में कृषि–वोल्टेइक प्रणाली या सौर खेती की परियोजना पर कार्य चल रहा है। जिसके द्वारा एक ही भूमि इकाई से फसल और बिजली, दोनों का उत्पादन किया जा सकता है।

खेती मानसून आधारित है, और वर्षा हुई तो खेती, नही तो छेती अर्थात कोई फसल नही, आदि कहावतें पश्चिमी राजस्थान के सन्दर्भ में आज भी पूर्णतया सही है। अकाल एक ऐसी प्राकृतिक आपदा है जिसके कारण किसानो की फसलों को प्रायः किसी न किसी रूप में हानि होती रहती है। ऐसी परिस्थितियों में किसान की माली हालत दिन–प्रतिदिन खराब हो रही है। भारत के पश्चिमी राजस्थान प्रदेश पर वर्षों से प्रकृति की कृपा दृष्टि नहीं रही है। अकाल एवं जलवायु परिवर्तन इस क्षेत्र में कोढ़ में खाज का कार्य रहे है। भारत का गर्म शुष्क क्षेत्र (लगभग 61.9 प्रतिशत भू–भाग) मुख्य रूप से पश्चिमी राजस्थान के 12 जिलों में फैला हुआ है। पश्चिमी राजस्थान की अर्थव्यवस्था में पशुपालन व्यवसाय का विशेष महत्व है। शुष्क क्षेत्र के किसानों के लिये पशुपालन न केवल जीविकोपार्जन का आधार है, बल्कि यह उनके लिये रोजगार और आय प्राप्ति का सुदृढ़ तथा सहज स्रोत भी है। राज्य के मरुस्थलीय क्षेत्र में भौगोलिक और प्राकृतिक परिस्थितियों का सामना करने के लिये एकमात्र विकल्प पशुपालन व्यवसाय ही रह जाता है। राज्य में जहाँ एक ओर वर्षाभाव के कारण कृषि से जीविकोपार्जन करना कठिन होता है, वहीं दूसरी ओर औद्योगिक रोजगार के अवसर भी नगण्य हैं। ऐसी स्थिति में ग्रामीण लोगों ने पशुपालन को ही जीवन शैली के रूप में अपना रखा है। पशुपालन व्यवसाय से राज्य की अर्थव्यवस्था अनेक प्रकार के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष घटकों से लाभान्वित होती है। शुष्क पश्चिमी राजस्थान में पशुपालन ग्रामीण लोगों की आय का एक बड़ा हिस्सा है। पशुधन घरेलू उपयोग के लिए दूध उपलब्ध कराने, दूध की बिक्री के माध्यम से आय सृजन, मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने के लिए खाद आदि के रूप में लाभ

प्रदान करता है। इसके अलावा यह रोजगार पैदा करने और ग्रामीण इलाकों में गरीबी को कम करने में एक प्रमुख भूमिका निभाता है। हालाँकि, ये लाभ तब उपलब्ध होते हैं जब सुपाच्य और पोषक आहार इन पशुधन को दिया जाता है।

गांवो में पशु आहार (बांटा) पकाने के लिये बड़े पैमाने पर लकड़ी व गोबर को जलाया जाता है जिससे वातावरण में प्रदूषण फैलता है। पशु आहार सौर चूल्हा के उपयोग से पारम्परिक ईंधन की बचत की जा सकती है। लकड़ी की बचत से इकोसिस्टम की रक्षा एवं गोबर की बचत से रासायनिक खाद की बचत की जा सकती है जिससे कृषि उत्पादन में वृद्धि संभव है। इसके अतिरिक्त CO_2 उत्सर्जन में कमी भी प्राप्त की जा सकती है। पशु आहार सौर चूल्हा में धीमी गति से आहार (बांटा) पकने के कारण भोजन के पोषक तत्व नष्ट नहीं होते है तथा आहार (बांटा) पकाते समय निरंतर देखभाल की जरूरत नहीं पड़ती। भारत के थार रेगिस्तान में सौर विकिरण उर्जा, प्रचुर मात्रा (6-0-7.4 किलो वाट घंटा मी$^{-2}$ प्रतिदिन) में उपलब्ध है एवं लगभग 300 दिनों तक आसमान साफ रहता हैं इसलिए पशु आहार सौर चूल्हा काफी उपयोगी है। बाजार में उपलब्ध सौर चूल्हा दिन में दो बार खाना बनाने में सक्षम है। इसलिए इसकी कीमत भी बहुत अधिक है। चूँकि पशुओं के लिए एक बार ही आहार (बांटा) को उबालना पड़ता है इसलिए यह सस्ता पड़ता है। पशुओं के खाद्य पदार्थ (बांटा) पकाने हेतु एक बड़े आकार का सौर कुकर रेखांकित, विकसित, अन्विक्षित एवं मूल्यांकित किया गया जो ए.एस.ए.ई. एवं बी.आई.एस. (भारतीय मानक ब्यूरो) के मानकों पर खरा उतरता है।

पशु आहार सौर चूल्हे का रेखांकन एवं विकास

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में एक दोहरे काँच का स्थायी पशु आहार सौर चूल्हे का निर्माण किया गया (चित्र 1)। कुकर में स्थानीय रूप से उपलब्ध एवं सस्ती सामग्री ईंट, सीमेन्ट, रेत, बजरी एवं बाजरे की भूसी (कुचालक) के रूप में काम में आती है। व्यवसायिक सामग्री जो इसके निमार्ण हेतु आवश्यक है वह है सादा कांच, लकड़ी, माइल्ड स्टील एंगल और सीट, एल्यूमिनियम सीट व पकाने के बर्तन आदि। ईंट, सीमेन्ट, रेत एवं बजरी को 1:6 के अनुपात में मिलाकर 6′3′ निर्मित ढाँचा तैयार किया जातां है। इसका कुकर का बाहरी सकल आयाम 1980760100 मि.मी. एवं आंतरिक सकल आयाम 187065050 मि.मी. है (चित्र 2)। इसके पैंदे में बाजरे की भूसी भर दी जाती है जो कि कुचालक का काम करती है। उसके ऊपर 24 गेज की जी आइ शीट (अवशोषक प्लेटः 6′2′) पेंदे में रखकर काले ब्लैक बोर्ड पेन्ट से रंग दिया गया ताकि यह अधिकतम सौर विकिरण ऊर्जा अवशोषित कर सके। दो दोहरे काँच (6′3′′ लम्बाई 2′3′′ चौड़ाई एवं 4 मिमी मोटाई) लकड़ी के फ्रेम में जो कब्जों द्वारा फिक्स है लगा दिये गये। इसी नाप का एक परावर्तक लगाया गया जिसे 0 डिग्री सेन्टीग्रेड से लेकर 120 डिग्री सेन्टीग्रेड तक मौसम के हिसाब से फिक्स कर सकते है। पशु आहार सौर चूल्हे का क्षेत्रफल 1.21 वर्गमीटर है। चार एल्यूमिनियम/स्टेनलेस स्टील के बर्तन/कड़ाही को काले किए गए ढक्कन से ढक देते है। पशु आहार को पानी में मिलाकर बर्तन में रख देते है। इसके द्वारा 5 पशुओं हेतु बाँटा (खाने की सामग्री: तिल की खल, मूगँफली की खल, कपास बीज की चूरी, ग्वार की चूरी, बाजरा, मेथी) 10 किग्रा तक 3-4 घंटे में दिन के 3:00 बजे तैयार हो जाता है। पशु आहार सौर चूल्हे की लम्बाई, चौड़ाई की 3 गुना है जो कि अधिकतम सौर ऊर्जा अवशोषित करता है एवं इसको सूर्य की और घुमाने की आवश्यकता नहीं होती। इस नाप का पशु आहार सौर चूल्हा लगभग 38 प्रतिशत परावर्तित विकिरण को अवशोषित कर लेता है जिसकी वजह से इसे सूर्य की ओर घुमाना नहीं पड़ता।

मूल्यांकन

जोधपुर (2618 उत्तर एवं 7304 पूर्व) स्थित केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान (काजरी) में विकसित पशु आहार सौर चूल्हे का मूल्यांकन 2019 में किया गया। इन प्रयोगों में सौर विकिरण ऊर्जा को थर्मोपाइल पाइरनोमीटर द्वारा नापा गया एवं डीटीएम–150 थर्मामीटर (0.1 शुद्धता) द्वारा पशु आहार सौर चूल्हे का तापक्रम नापा गया। वातावरण का तापमान मर्करी थर्मामीटर से नापा गया। यह प्रयोग बादल रहित साफ आसमान वाले दिन प्रत्येक 15 मिनिट के अन्तराल से प्रातः 10:00 बजे से लेकर सांय 4:00 बजे तक किया गया।

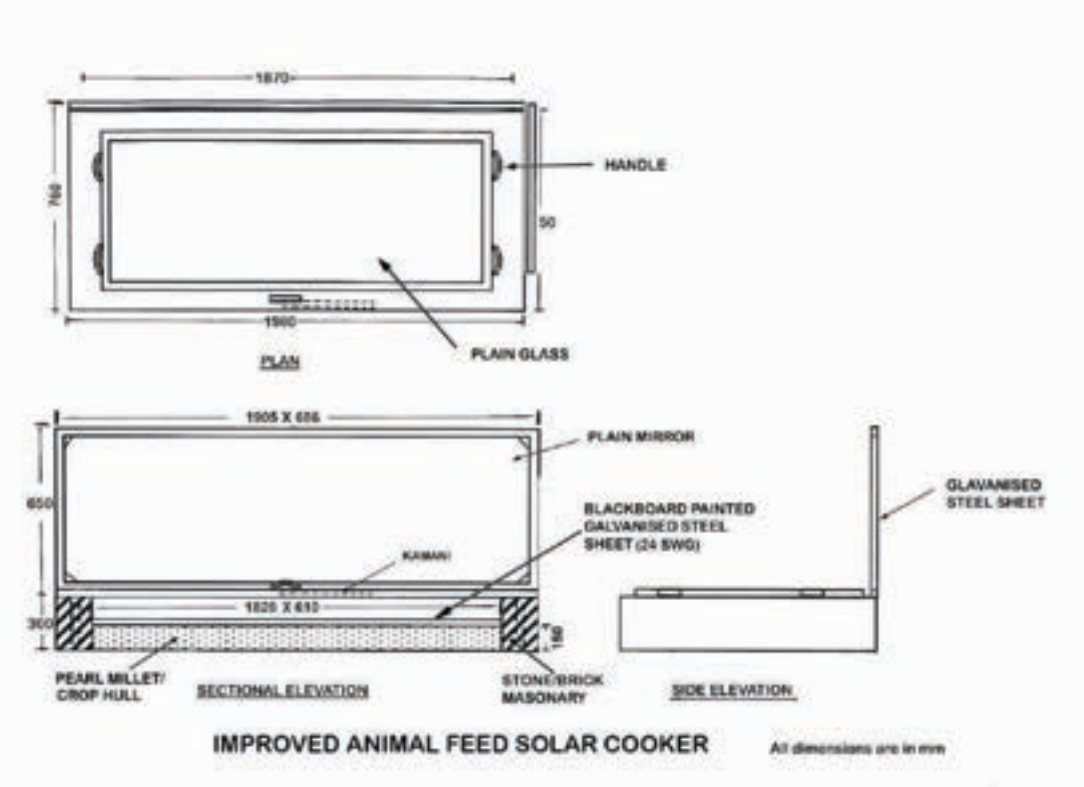

चित्र 1: पशु आहार सौर चूल्हे की डिजाइन

चित्र 2: पशु आहार सौर चूल्हा

तापीय निष्पादन एवं परीक्षण

पशु आहार सौर चूल्हे का परीक्षण ए.एस.ए.ई. एवं बी. आई.एस. (भारतीय मानक ब्यूरो) के मानको के हिसाब से किया गया। इसके अनुसार एफ–1 एवं एफ–2 मूल्यों का निर्धारण किया गया। एफ–1 नो लोड परीक्षण है जो यह यह दर्शाता है कि बिना किसी लोड के अधिकतम तापमान कहा तक पहुँचता है। एफ–2 वाटर ब्वायलिंग परीक्षण है। इसके अतिरिक्त पशु आहार सौर चूल्हे () का भी निर्धारण किया गया।

प्रथम मूल्यांकन (एफ–1) का निर्धारण

इसका निर्धारण इस बात पर निर्भर करता है कि किसी बादल रहित आसमान वाले दिन पशु आहार सौर चूल्हे का अधिकतम तापमान परावर्तक से बिना टकराए कहॉ तक पहुँचता हैं एवं उस समय सौर विकिरण ऊर्जा की मात्रा कितनी है। इस परीक्षण में परावर्तक को काले कपड़े से ढ़क देते हैं। निम्नलिखित समीकरण से एफ–1 का मूल्य निकाल सकते है।

द्वितीय मूल्यांकन (एफ–2)का निर्धारण

पशु आहार सौर चूल्हे को पूर्णभारित (फुल लोड) स्थिति में रखकर एफ–2 का मूल्य निर्धारित करते है। यह उष्मा विनिमय दक्षता एवं प्रकाशिकी दक्षता का गुणा होता है। इसे निम्नलिखित समीकरण से निकाल सकते है।

$$F_1 = \frac{\eta_0}{U_L} = \frac{(T_{ps} - T_a)}{G} \quad \text{———— (1)}$$

पशु आहार सौर चूल्हे के आहार पकाने की शक्ति का आंकलन

फंक (2000) ने पशु आहार पकाने की शक्ति के आकंलन के लिए दो प्रकार के परीक्षण पर चर्चा की। ये मुख्य रूप से मौसम के मापदंडों के रूप में अनियंत्रित चर हैं और कुकर के डिजाइन मापदंडों के रूप में नियंत्रित चर हैं। फंक की परिभाषा से आहार पकाने की शक्ति, P, को हीटिंग अवधि के दौरान उपलब्ध उपयोगी ऊर्जा की दर के रूप में परिभाषित किया गया है। यह आहार पकाने के बर्तन में निहित पानी के प्रत्येक अंतराल, द्रव्यमान और विशिष्ट गर्मी क्षमता के लिए पानी के तापमान में परिवर्तन के उत्पाद के रूप में निर्धारित किया जा सकता है। समय–समय पर उत्पाद को विभाजित करना (अमेरिकन सोसायटी ऑफ एग्रीकल्चरल इंजीनियर्स के अनुसार 10 मिनट के अंतराल में 600 एस) एक आवधिक अंतराल में निहित खाना पकाने की शक्ति के रूप में देता है।

पशु आहार सौर चूल्हे की दक्षता का निर्धारण

पशु आहार सौर चूल्हे का तापमान एवं जल का प्रारम्भिक तापमान एवं अंतिम तापमान नापकर निकाली जा सकती है। इसे निम्नलिखित समीकरण से निकाल सकते है।

$$P_s = \frac{700\, M C_w\, \Delta T_w}{600\, G_s} \quad \text{---------- (3)}$$

$$\eta = \frac{(M C_w + M_1 C_L)(T_{w2} - T_{w1})}{C A \int_0^t G\, dt} \quad \text{———— (4)}$$

$$F_2 = F'\eta_0 C_R = \frac{F_1 (MC) w}{A(t_2 - t_1)} \ln \left[\frac{1 - \frac{1}{F_1}\left(\frac{T_{w1} - \bar{T}_a}{\bar{G}_s}\right)}{1 - \frac{1}{F_1}\left(\frac{T_{w2} - \bar{T}_a}{\bar{G}_s}\right)} \right] \quad \text{———— (2)}$$

परिणाम एंव व्याख्या

अधिकतम तापमान परीक्षण में यह पाया गया कि 10:00 बजे तापमान 61 डिग्री सेन्टीग्रेड से लेकर 10:30 बजे यानि आधे घंटे में तापमान 80 डिग्री सेन्टीग्रेड तक पहुँच गया जो कि 13:30 बजे 130 डिग्री सेन्टीग्रेड पर लगभग स्थिर हो गया। 14:00 बजे अधिकतम तापमान 132 डिग्री सेन्टीग्रेड तक पहुँचा जब सौर विकिरण 840 वाट प्रति वर्गमीटर था। एफ–1 का मूल्य 0.113 पाया गया जो कि ए.एस.ए.ई. एवं बी.आई.एस. (भारतीय मानक ब्यूरो) के मानको के हिसाब से बिल्कुल सटीक बैठता है एवं दर्शाता है कि पशु आहार सौर चूल्हा ए श्रेणी का है।

पूर्णभारित (फुल लोड) स्थिति में 10:00 बजे पानी का तापमान (Tw_1) 55 डिग्री सेन्टीग्रेड से बढ़कर 14:00 बजे अधिकतम तापमान (Tw_2) 92 डिग्री सेन्टीग्रेड तक पहुँच गया एवं सौर विकिरण में वृद्धि के साथ जल का तापमान भी बढ़ता गया। एफ–2 का मूल्य 0.402 पाया गया जो समीकरण-2 में विभिन्न घटको के मूल्यों को रखने से प्राप्त होता है। इस तरह प्राप्त एफ–2 का मूल्य (0.402) ए. एस.ए.ई. एवं बी.आई.एस. के मानको के हिसाब से बिल्कुल सटीक बैठता है (0.254–0.490)। इसका उच्च मूल्य अधिक तापीय विनिमय दक्षता को प्रदर्शित करता है। भार में बढ़ोतरी के साथ एफ–2 का मूल्य भी बढ़ता रहता है क्योंकि बर्तन में पानी की मात्रा बढ़ती रहती है। सौर जल शुद्धक में तापमान 92 डिग्री सेन्टीग्रेड तक गर्मी में तथा 86 डिग्री सेन्टीग्रेड तक शरद ऋतु में पहुँचता है। इस तापमान पर पशु आहार पशओुं को खिलाने के लिए पूरी तरह से उबल जाता है।

अप्रैल, 2019 को अमेरिकन सोसायटी ऑफ एग्रीकल्चरल इंजीनियर्स की मानक प्रक्रिया के आधार पर कुकिंग पावर प्रयोग किया गया था। 4.0 किलोग्राम पानी के भार के लिए प्रयोग किया जाता है। पशु आहार सौर चूल्हे को सूरज से 10.00 बजे से 14.00 बजे तक, और पानी का प्रारंभिक तापमान, पानी का अंतिम तापमान, परिवेश का तापमान और सौर पृथक्करण 10 मिनट के अंतराल से दर्ज किया गया। अंतर्राष्ट्रीय परीक्षण मानकों के अनुसार, निर्धारण का गुणांक (R^2), 0.75 (फंक, 2000) से बेहतर होना चाहिए। एएसएई अंतर्राष्ट्रीय परीक्षण प्रक्रिया की सीमा के भीतर प्रारंभिक आहार पकाने की शक्ति 69.78 पाई गई (चित्र 3)। मानकीकृत खाना पकाने की शक्ति की गणना क्रमशः प्रतिगमन समीकरण (Regression equation) $Ps = 27.40\ W$ का उपयोग करके की गई थी, जो कि अन्य प्रणालियों की तुलना में काफी उच्च मूल्य हैं।

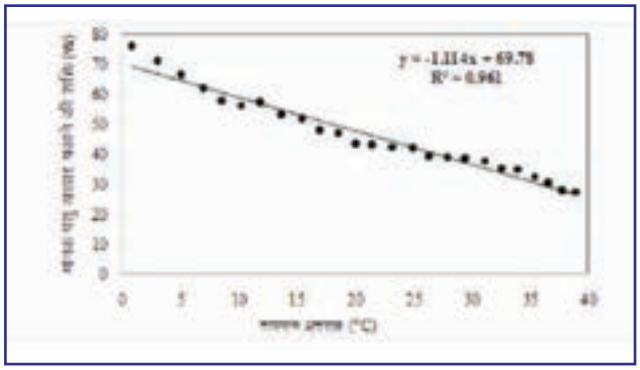

चित्र 3: मानक पशु आहार पकाने की शक्ति एवं तापमान अंतराल में संबंध

पशु आहार सौर चूल्हे की दक्षता समीकरण-4 से निकाली गई तथा इसकी दक्षता 26.4 प्रतिशत पाई गई। पशु आहार सौर चूल्हे की थर्मल दक्षता सौर विकिरण, भरे हुए पानी के द्रव्यमान, पानी को उबालने में लगने वाला समय, परावर्तक के नियंत्रण आदि जैसे कारकों पर निर्भर करती है। इसलिए, थर्मल दक्षता पर उनके प्रभावों को पूरी तरह से समझने के लिए बहुत सारे प्रयोगों की आवश्यकता होगी। पशु आहार सौर चूल्हा प्रतिवर्ष लगभग 1059 कि.ग्रा. ईंधन की लकड़ी की बचत करता है जो कि

3611 मेगाजूल ऊर्जा के बराबर है। इसकी कीमत परार्वतक के साथ लगभग 12,500 है। पशु आहार सौर चूल्हे के उपयोग से प्रतिवर्ष 1442.64 किग्रा तक कार्बन डाइआक्साइड उत्सर्जन में कटौती कर सकते हैं।

निष्कर्षः

पशु आहार सौर चूल्हे का विकास राजस्थान के शुष्क क्षेत्रों के गांवों में पशु आहार बनाने के लिए किया गया। यह दोहरे काँच एवं परावर्तक द्वारा निर्मित है जिसकी लम्बाई; चौड़ाई की तीन गुना है जो ट्रैकिंग आवश्यकताओं को समाप्त करता है। इसलिए यह अधिकतम परावर्तित सौर विकिरण प्राप्त करता है। एफ–1 का मूल्य 0.113 तथा एफ–2 का 0.402 और मानकीकृत खाना पकाने की शक्ति 27.40 डब्ल्यू थे जो कि अमेरिकन सोसायटी ऑफ एग्रीकल्चरल इंजीनियर्स स्टैंडर्ड (ए.एस.ए.ई.) एवं बी.आई.एस. (भारतीय मानक ब्यूरो) के ए ग्रेड मानकों पर खरा उतरता है। यह पशु आहार सौर चूल्हा दिन में एक बार 8–10 किलो पशु आहार उबालने में सक्षम है, जो कि चार पशुओं के लिए पर्याप्त है। पशु आहार सौर चूल्हे की दक्षता 26.4 प्रतिशत पाई गई जो कि समकक्ष सौर चूल्हे की दक्षता से अधिक है। वर्तमान पशु आहार सौर चूल्हे ने अधिकतम भार के लिए सबसे अच्छा प्रदर्शन और उच्चतम दक्षता दिखाई है। इस कुकर से सालाना 1059 किलो ईंधन लकड़ी बचती है और दूध देने वाले जानवरों को उबला हुआ आहार मिलता है। यह बहुत उपयुक्त पाया गया है क्योंकि पशु आहार दिन में केवल एक बार उबाला जाता है। पशु आहार तैयार करने के लिए विकसित की गई तकनीक न केवल ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करती है, बल्कि ईंधन संरक्षण और मादक पदार्थों की कमी में भी मदद करती है। इस तरह के आहार पकाने का संचालन ज्यादातर महिलाओं द्वारा किया जाता है, और वे कृषि ऑपरेशन में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं, इस प्रकार समय बचा सकते हैं और अपने परिवार या अन्य कृषि कार्यों की देखभाल के लिए अधिक समय व्यतीत कर सकते हैं।

विचारों का परिपक्व होना भी उसी समय संभव होता है,
जब शिक्षा का माध्यम प्रकृतिसिद्ध मातृभाषा हो
और हमारी प्रकृति सिद्ध भाषा हिन्दी ही है।
– पं. गिरधर शर्मा

चुकंदर में जैव सूचना तकनीक से जैविक ऊर्जा एवं औद्योगिक उपयोगिता की संभावनाएँ

राघवेन्द्र कुमार[1], संगीता श्रीवास्तव[1], मीर आसिफ इकवाल[2], सारिका जयसवाल[2] एवं दिनेश कुमार[2]
भा.कृ.अनु.प.– गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ
[2]कृशि जैव सूचना केन्द्र, भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृशि साँख्यिकीय अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
संवादी लेकख का ई–मेल : raghwendkumar@gmail.com

चुकंदर शर्करा उत्पादन के लिए गन्ना के बाद सबसे महत्वपूर्ण नकदी फसल है। यह प्रायः समशीतोश्ण जलवायु में उगाए जाने वाली द्विबीजपत्रीय फसल है, जो 6 माह की अवधि में तैयार हो जाती है। वनस्पतिशास्त्र के अनुसार चुकंदर, बीटा वल्गेरिस को एमरेन्थेसीई कुल तथा बीटोआइडी उपकुल में वर्गीकृत किया जाता है। इसके कन्दमूल को पतले टुकड़ों (स्लाइस) में विभक्त करके लुगदी (पल्प) से चीनी का उत्पादन होता है। इसमें लगभग 15 से 20 प्रतिशत तक वृहत मात्रा में सुक्रोज सामग्री पाई जाती है। अतः यह विश्व के वार्षिक शर्करा उत्पादन के लगभग 30 प्रतिशत हिस्से का प्रतिनिधित्व करता है।

लगातार बढ़ती जनसंख्या के सन् 2050 तक लगभग 10 बिलियन का आँकड़ा पार कर लेने की स्थिति में, जीवाष्म ईंधन के अलावा वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों के लिए एक स्थायी परिपेक्ष्य में सतत् अक्षय ऊर्जा स्रोत के लिए एक स्थायी जैविक समाधान की खोज एक महत्वपूर्ण अनुतरित प्रश्न बनता जा रहा है। यदि चुकंदर के बायोमास के एनसाइलेज तथा अवायुवीय (ऐनेरॉबिक) पाचन का उपयोग किया जाए तो इसमें बायोएथेनॉल उत्पादन की तुलना में प्रति हेक्टेयर अधिक जैविक ऊर्जा प्राप्ति की अपार संभावनाएँ निहित होती है।

चुकंदर से चीनी तथा बायोएनर्जी उत्पादन के संदर्भ में फसल औद्योगिक उपयोग के अलावा इसमें अतिरिक्त बहु–संख्यक गुणक लाभ पाए जाते हैं। इस फसल में विभिन्न जलवायु और बंजर कृषि भूमि में भी उपज के प्रति सहिष्णुता पाई जाती है। संक्षेप में कहा जाए तो इसकी खेती से तीन तरह फायदा किसानों को मिलता है: (1) नकदी फसल होने से त्वरित कमाई में बढ़ोत्तरी, (2) मृदा परिशोधन/मिट्टी की उर्वरता में सुधार, तथा (3) सूखे एवं गर्मी के दिनों के दौरान पशु चारा तथा उनके खनिज पूरक के लिए लाभकारी खासकर जब हरे चारे का अभाव हो।

औद्योगिक क्षेत्र में चुकंदर से डाई हाइड्रोक्सीटोन, जो एक विशेष प्रकार का सनलेस टैन्नर (चर्मशोधक) है, उत्पादित किया जाता है। कई प्रकार के जीवन रक्षक औषधियाँ मानव स्वास्थ्य के लिए उपयोगी है, जिनमें कैंसर विरोधी नाशक, एन्टीऑक्सीडेंट, अवसादरोधी, कामोद्दीपक गुण विद्यमान होते हैं। हर्बल थेरेपी (जड़ी–बूटी चिकित्सा) में इससे प्राप्त किए गए यौगिक विशेषकर बीटेन, फिनोलिक्स और बीटासाइन्सिन दवा उद्योग के लिए महत्वपूर्ण है। चुकंदर से प्राप्त बेटेन का उपयोग पीसीआर सहायक उद्योग में व्यापकतापूर्वक किया जाता है क्योंकि इससे जीनोमिक्स अनुक्रमों के प्रवर्धन में सुधार होता है।

प्लास्टिक के विकल्प के तौर पर इन दिनों चुकंदर के अवषेश से बने जैविक पॉलीएथिलीन अत्यंत लोकप्रिय हो रहे हैं। इटली के कई व्यवसायी इसके मोलासेस को जैव सूचना तकनीक से विकसित जीवाणुओं की मदद से किण्वनीकरण करके इसमें विद्यमान शर्करा को लैक्टिक अम्ल में बदलने के उपरान्त कई जटिल प्रसंस्करण विधि द्वारा जैविक पॉलीमर प्राप्त करने की औद्योगिक महारत हासिल किया है। सामान्यतः चुकंदर के जैविक पॉलीएथिलीन को पीएचपी (पॉलीहाईड्रॉक्सी एल्कोनेट) प्लास्टिक कहा जाता है। यह पर्यावरण में आसानी से स्वतः अपघटित होकर मिट्टी के उर्वरा शक्ति के विकास में सहायक होता है। 'सिंगल–यूज्ड प्लास्टिक' के दुरूपयोग से छुटकारा दिलाने में यह एक स्वागत योग्य पहल हो सकता है। अन्य शर्करा फसल जैसे गन्ना, मीठी ज्वार, इत्यादि से भी जैविक पॉलीएथिलीन का उत्पादन होता है, किन्तु आर्थिक दृष्टिकोण से चुकंदर सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

कृषि जैविक सूचना विज्ञान के महत्व

जैव सूचना विज्ञान (बायोइन्फार्मेटिक्स) के अंतर्गत जैविक

सूचना का अर्जन, भंडारण, संसाधन, विश्लेषण, वितरण, व्याख्या इत्यादि से संबन्धित शोध कार्य जीव विज्ञान, सूचना तकनीक तथा गणित के माध्यम से सम्पन्न होता हैं। इस कार्य के लिए कम्प्युटर और अन्य हार्डवेयर, इंटरनेट कनैक्शन, वर्ल्ड–वाइड–वेव, डाटाबेस, उपयुक्त सॉफ्टवेर के सधान नितांत आवश्यक होते हैं। समान्यतः डाटावेस माइनिंग (खोज) के लिए न्यूक्लिक अम्ल (डीऑक्सीरीबो न्यूक्लिक एसिड/डीएनए, रीबो न्यूक्लिक एसिड, प्रोटीन/एमीनो एसिड तथा जैविक अणुओं के अनुक्रम (सिक्वेंस) वांछित टूल्स (उपकरण) की सहायता से की जाती हैं। इसके उपरांत जीनोम की संरचना (डिज़ाइनिंग) प्राप्त होती हैं और इनके उपयोग से विभिन्न क्षेत्र मे शोध कार्य संचालित होते हैं।

जैव सूचना तकनीक के महत्व

जैविक ऊर्जा तथा औद्योगिक अनुप्रयोग में सम्मुन्नत बीज उत्पादन में सुधार के लिए आनुवंशिक विविधताओं के विकास तथा विभिन्न प्रकार के जैविक तथा अजैविक कारकों के प्रति सहनशील जीन (आनुवंशिक अणु) से युक्त जीवद्रव्य (जीनोटाइप) की खोज की जाती है। जीवद्रव्य पौधों में आनुवंशिक गुणों के तलाश में जैविक अणु, डीऑक्सीराइबो न्यूक्लिक अम्ल (डीएनए) में गहन आणविक अध्ययन किया जाता है। डीएनए में विभिन्न प्रकार के जीन अनुक्रम की पहचान के लिए आणविक मार्कर का उपयोग किया जाता है। जीनोमिक्स अध्ययन में 'वेट–लैब' से जुड़े प्रयोग में चुकंदर के जीनोटाइप 'केडब्लूएस 2320' में अनुक्रमित जीनोम डाटा का उपयोग किया गया था।

वर्तमान समय में जीनोमिक्स से जुड़े 'वेट–लैब' प्रयोग में सर्वप्रथम चुकंदर के डीऑक्सीराइबो न्यूक्लिक अम्ल (डीएनए) निष्कासित किए जाते हैं। डीएनए में पॉली न्यूक्लियोटाइड श्रृंखला एक अक्ष पर स्प्रिंग की भाँति द्विकुण्डलिनी (डबल हेलिक्स) संरचना बनाती है और मूलतः 4 प्रकार के आधार नत्रजनीय समाक्षार एडिनीन, थायमीन के साथ तथा ग्वानिन, साइट्रोसीन के साथ एक दूसरे से गूंथे रहते है। प्रत्येक श्रृंखला में फॉस्फोरस बंध खास न्यूक्लियोटाइड के अनुक्रम शर्करा के अणु से जुड़े होते हैं। इनको हाइड्रोजन बंध एक–दूसरे से एक साथ विशेष परिस्थितियों में जोड़े रखता है। जैव रासायनिक अभिक्रिया के संयोग द्वारा द्विकुण्डलिनीडीएनए टूटकर एकल कुण्डलिनी (सिंगल हेलिक्स) संरचना राइबोन्यूक्लिक अम्ल (आरएनए) में परिवर्तित होकर थाइमिन के स्थान पर यूरेसिल से जुड़कर आवश्यक जैव सूचनाओं को एक स्थान से दूसरे स्थान अर्थात् केन्द्रक से कोशिका द्रव्य तक संचारित करते है। इस जैविक घटना को ट्रांसक्रिप्सन कहा जाता है।

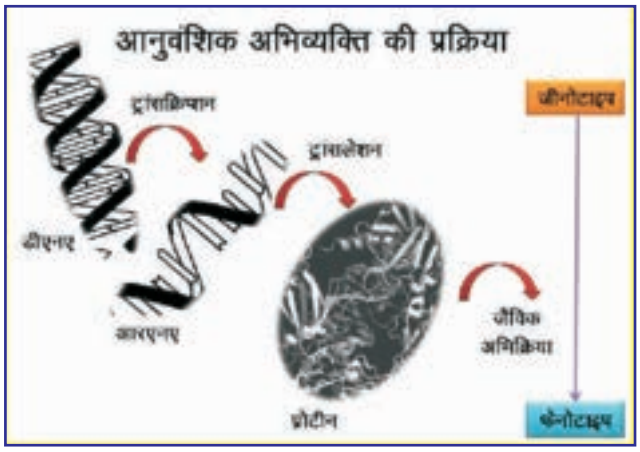

आणविक जीव विज्ञान की केन्द्रीय मताग्रह (डीग्मा)

वस्तुतः ऐसे ट्रांसक्रिप्टोम्स अणु विशिष्ट प्रकार के जैविक सूचनाओं को अरबो तथा खरबों की संख्या से अधिक आँकड़ों में संचारित करते हैं। आगे चलकर ऐसे तमाम जैव अणु विशिष्ट प्रकार के प्रोटीन के ट्रांसलेशन प्रक्रिया में हिस्सा लेती है। प्रोटीन के जैव अणु मूलरूप से किसी भी जैविक गुणों को प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से प्रभावित करते हैं और अनुकूल एमीनो अम्ल का निर्माण होने लगता है। इस क्रम में प्रोटीन से प्रोटीन तथा प्रोटीन से डीएनए के समागमन होने लगता है। समागमन से प्रोटीन की मॉड्यूलिंग को कम्प्यूटर के विभिन्न टूल्स (उपकरण) की सहायता से चित्रित किया जाता है। इन दिनों वैज्ञानिकों ने लगभग 20 प्रकार के अति विशिष्ट गुणधर्म वाले अमीनो अम्ल की पहचान करने में सफलता हासिल किया है। कुल मिलाकर कहा जाए तो

जेनेटिक गुण एक खास जैविक संयोग, जिसमें प्रोटीन की सहभागिता अत्यंत प्रमुख है, के फलस्वरूप फिनोटिपिक गुणों को संप्रेषित करता है।

जैविक सूचना के गणितीय प्रस्तुतीकरण के आधार पर सिक्वेंस डाटाबेस का विशेष उपयोग जैव अभियांत्रिक के माध्यम से होता है। इस तरह के कार्य को 'ड्राई–लैब' में डाटा माइनिंग (आँकड़ा खनन) के नाम से जाना जाता है। डाटा माइनिंग के लिए मार्कर से गुणसूत्र में विद्यमान विभिन्न प्रकार के गुणों तथा लक्षणों (ट्रेट) की पहचान आसानी से किया जाता है। आणविक मार्कर के द्वारा जैविक अणु, डीएनए के खास समूह (फ्रेगमेंट्स) होते हैं जो किसी खास जीनोम की विशिष्ट जगह पर अज्ञात डीएनए के अनुक्रम को उजागर करने में सहायता प्रदान करते हैं। समस्याग्रस्त जीन को उजागर करने में इन के बहुमूल्य योगदान है।

चुकंदर के एसबीएमडीबी (SBMDb) के मार्कर

'ड्राई–लैब' शोध कार्य हेतु जैविक सूचना विज्ञान के विभिन्न सॉफ्टवेयर टूल्स (उपकरण) के कम्प्यूटरी विश्लेषण द्वारा सम्पन्न किए जाते है। वस्तुतः यह जीनोटाइप 567 एमबी अगुणित (हेप्लोएड) जीनोम के 85 प्रतिशत अनुक्रम डाटाबेस विकसित किया गया था। चुकंदर के 9 गुणसूत्रों (2n =18) के 63 प्रतिशत जीन सघनता समूह (एसेम्बली) के अध्ययन के द्वारा प्रतिपादित किया गया। इनसे प्राप्त डेटा संग्रहण से आगे की खोज (डेटा माइनिंग) में भरपूर मदद मिलती है। डीनोवो एसेम्बली के कम्प्यूटीकृत विश्लेषण से लगभग 27000 संख्या में प्रयोजन युक्त सार्थक जीन की सटीक पहचान की भविष्यवाणी की जाती है। इसके मिलान के लिए 'फास्टा' (FASTA) टूल के मदद जो नैशनल सेंटर फॉर बायोटेक्नोलॉजिकल इन्फॉर्मेशन (एनसीबीआई) के वेबसाइट से डाउनलोड करके संपादित किया जाता है। चुकंदर में कार्यात्मक 'सिम्पल सिक्वेंस रिपीट्स माइक्रोसेटेलाइट' मार्कर को जैव सूचना विज्ञान के शब्दावली में 'सिम्पल सिक्वेंस रिपिट्स–फंक्शनल डोमेन मार्कर' (SSR-FDMs) कहा जाता है। सहयोगी एक्सप्रेस्ड सिक्वेंस टैग (ESTs) के अनुक्रम ज्ञात करने के लिए कम्प्यूटर नेटवर्क के माध्यम से डाउनलोड किया जाता है।

साथ ही चुकंदर के 'प्यूटेटिव यूनिट ट्रांसक्रिप्ट्स' (PUT) के लिए 'प्लांटजीडीबी' टूल के 187 विमोचित संस्करण के वेबसाइट से डाउनलोड किया जाता है। सभी एक्सप्रेड सिक्वेन्स टैग तथा प्यूटेटिव यूनिक ट्रांसक्रिप्ट्स को सर्वप्रथम होमोपॉलीमर्स त्रुटियों के उपस्थिति के फलस्वरूप निदान हेतु स्कैन किया जाना नितांत आवश्यक है। डाटाबेस में उपलब्ध एक्सप्रेड सिक्वेंस टैग–ट्रिमर की सहायता से अनुक्रमों में व्याप्त अस्पष्टता को हटाने के उद्देश्य से वेबसाइट नेटवर्क निचली सेटिंग पर अनुक्रम श्रृंखला सुनिश्चित की जाती है। इसके लिए एमआइएसए (MISA) की मदद ली जाती है।

'एसएसआर–एफडीएम' मार्कर के जीनोटाइपिंग की सहायता से विशेष प्रकार के प्राइमरों को जीनोमिक डीएनए सिक्वेंश पर कम्प्यूटर के माध्यम से डिजाइन तैयार किया जाता है ताकि सिक्वेंश के आणविक विश्लेषण में आसानी से व्याख्या की जा सके। सम्पूर्ण जीनोम आधारित मार्करों को मोटिफ आकार, मोटिफ प्रकार, उनके लम्बाई तथा आकार के साथ समायोजित करके दोहराने की संख्या, दोहराए जाने के प्रकार, व्याप्त जीसी सामग्री और समाप्ति की स्थिति पर वर्णनात्मक जैव सूचनाओं के साथ ऑन लाईन प्रस्तुतिकरण दर्शाया जाता है। 'क्वालिटेटिव ट्रेट लोसी' (QTL) अथवा जीन के मान चित्रण से वांछित अंतराल पर प्रत्येक गुणसूत्र पर मार्कर लगाने के लिए विशेष प्रावधान विकसित किए जाते है। साथ ही मार्कर को मोटिफ प्रकार, रिपिट्स के प्रकार, जीसी सामग्री, बेस पेयर की संख्या और रिपिट यूनिट की संख्या के आधार पर चयन की प्रक्रिया सम्पन्न होती है, क्योंकि आठ से अधिक रिपिट्स वाले मार्कर अक्सर डीएनए प्रतिकृति घटना के फलस्वरूप बहुरूपता (पॉलीमार्फिज्म) प्रदर्शित करते है। प्राइमर पीढ़ी का एक अतिरिक्त 'प्लग–इन' ऐसे विशेष मार्करों के लिए लागू किया गया था। प्राइमर 3 कोर को अमल में लाते हुए 500 बीपी अपस्ट्रीम तथा डाउनस्ट्रीम सीक्वेंस को 'पर्ल' (PERL) टूल की मदद से लगभग 1000 बीपी के विशिष्ट प्राइमर डिजाइनिंग के लिए टेम्पलेट का लक्ष्य सुनिश्चित किया जाता है।

फंक्शनल डोमेन मार्कर की विशिष्ट श्रृंखला में चुकंदर के 'एसबीएमडीबी' (SBMDb) मार्कर के लिए विकसित विश्लेषणात्मक पाइपलाइन के प्रभाव को जैव सूचना विज्ञान के अंतर्गत तर्क संगत तरीके से प्रदर्शित करता है। पहचान किए गए मार्करों के लिए वेब आधरित एप्लीकेशन विंडो, डब्लूएएमपी सर्वर के साथ 'अपाचे' (Apache), 'पीएचपी' (PHP) और 'माईसॉल'

(MySOL) डेटाबेस महत्वपूर्ण है। चुकंदर के आनुवंशिक लिंकेज मान चित्रण को समकालीन आणविक मार्कर की सहायता से लगभग 9 समूहों में बाँटा गया है और इससे अभी तक लगभग 700 मार्करों की सटीक जानकारी उपलब्ध है।

ज्ञातव्य है कि 'शॉर्ट टैंडम रिपिट्स' (STR) मार्कर के विकास के पूर्व के शोध उतने सक्षम नहीं थे और इस कार्य में अधिक समय व्यर्थ होता था। आधुनिक सम्पूर्ण जीनोमिक अथवा ट्रांसक्रिप्टॉमिक डेटा का उपयोग करके शॉर्ट टैंडम रिपिट्स मार्कर के विकास करके फसल सुधार के क्षेत्र में अपार संभावनाओं के द्वार खुल गए है। पूरे जीनोम की मदद से बड़ी मात्रा में मार्कर की खोज में क्रांतिकारी बदलाव आए है। इन दिनों 'सिम्पल सिक्वेंस रिपिट्स–फंक्शनल डोमेन' जैसे माइक्रोसेटेलाइट मार्कर का व्यापक उपयोग मीठे चुकन्दर में जैविक ऊर्जा संरक्षण तथा बायोमास के प्रचलित जीवद्रव्य के 'डब्लूएस 2320' (KWS 2320) में आणविक प्रजनन कार्यक्रम के अंतर्गत बड़ी मात्रा में मार्करों की खोज 'इन–सिलिको' (कम्प्यूटर द्वारा) किया जाता है।

डाटाबेस का विकास

चुकंदर के माइक्रासेटेलाइट सापेक्षिक डाटाबेस मुख्यतः तीन टीयर आर्किटेक्चर जिसे क्लाईंट टीयर, मीडिल टीयर तथा डाटाबेस टीयर शामिल होते हैं। प्राइमर 3 के अंतर्गत चयनित एसटीआर की गणना करने के लिए समन्वित किया जाता है। विशिष्ट लोकस (लोसी) के लिए प्राइमर कॉल अर्थात् प्राइमर डिजाइनिंग का उत्पादन तथा उनके सापेक्षिक पिघलने का तापक्रम, गुआनिन साइटोसिन सामग्री, शुरूआती स्थिति और अनुमानित पीसीआर उत्पाद के आकार के साथ पाँच प्राइमरों की सूची डेटाबेस में उपलब्ध रहती है।

चुकंदर के डाटाबेस अन्वेषण का प्रवाह प्रस्ततीकरण

फंक्शनल डोमेन को सिंपल सीक्वेंस रीपिट् पैटर्न के साथ जोड़े जाने पर, सिम्पल सीक्वेंस को दोहराने के लिए फंक्शनल डोमेन मार्कर का सृजन होता है। कार्यात्मक डोमेन की पहचान करने के लिए सभी अनुक्रमों को सभी 6 रीडिंग फ्रेमों में अनुवाद किया जाता है। इसके डिफॉल्ट संटिंग्स का उपयोग करके प्रोटीन डोमेन का विश्लेषण तथा भविष्यवाणी करने के लिए 'इण्टरप्रोस्कैन' टूल का प्रयोग किया जाता है। कार्यात्मक डोमेन को प्राप्त करने वाले अनुक्रम और प्राइमर जोड़े के साथ मिलकर सरल अनुक्रम दोहराये जाते है जिन्हें कार्यात्मक मार्कर के रूप में वर्गीकृत किया जाता हे।

इस डाटाबेस को पादप जीव वैज्ञानिक तथा पादप प्रजनकों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए डिजाइन किया जाता है। मोटिफ (रूपांकन) टाइप के विकल्प जैसे मोनो, डाई, टेट्रा, पेन्टा और एक्सा रिपीट टाइप तथा रिपीट काइन्ड चुकंदर के सभी 9 गुणसूत्रों पर प्रजनन के लिए उपयोगी होता है। इस प्रकार क्यूटीएल के स्थापन हेतु वांछित एसटीआर मार्करों की सहायता से चयन करने में सुविधा मिलती है। चूँकि एसएसआर द्वारा पॉलीमॉर्फिक का प्रदर्शन 8 से अधिक रिपीट यूनिट से अधिक अथवा इसके बराबर होने के फलस्वरूप पॉलीमॉर्फिक मार्करों की खोज के उद्देश्य से मोनो–न्यूक्लियोटाइड रिपिट्स को छोड़कर सभी सिम्पल रिपिट्स का चयन सुविधानुसार किया जाता है। सामान्यतः इसके लिए 'पर्ल' लिपि का प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा चयनित प्राइमरों को पाँच जीनोटाइप के बीच ई–पीसीआर में रखा जाता है ताकि पीसीआर उत्पाद में होने वाले अंतर से लोकस को बहुरूपी माना जा सके।

भविष्य की संभावनाएँ

पूर्व के मार्कर संबंधित शोध कार्य में चुकंदर के दो प्रमुख स्पेसिज, बीटा वल्गेरिस तथा बीटा वेबेनिया के रूपान्तरण मार्कर के आधार पर जैव सूचना विज्ञान प्रस्तुत किया गया था, जो आइसोएन्जाइम की मदद से सम्पन्न हुई है। पहली बार एसटीआर तथा एसएनपी मार्कर से सीमित मात्रा में चुकंदर की प्रजाति संबंधित आणविक जैव सूचना उजागर हुए है। भारत में सन् 2015 में कृषि जैव सूचना केन्द्र, भाकृअनुप–भारतीय कृशि साँख्यिकीय अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली के वैज्ञानिकों ने मीठे चुकंदर के सम्पूर्ण जीनोम आधारित एसटीआर खनन के तमाम माइक्रोसेटेलाइट मार्कर डेटाबेस का विकास सफलतापूर्वक किया है। प्रत्येक गुणसूत्र से सटीक चयन के साथ प्राइमर डिजाइनिंग तथा बहुरूपता मूल्याँकन संबंधित बायोइंफार्मेटिक्स शोध शुगर बीट माइक्रोसेटेलाइट वेबसाइट http:// webapp.cabgrid.res.in/sbmdb/ पर जैव सूचना विज्ञान भाोध कार्य हेतु आसानी से उपलब्ध है तथा संबंधित मूल शोध पत्र, 'डाटाबेस' (DATABASE) शोध पत्रिका में पहली बार सन् 2015 में प्रकाशित हुआ है। इस दिशा में संस्थान के अधीन कार्यरत सुपर कम्प्यूटर, 'अ ाोका' (एडवांस्ड सुपर कम्प्यूटरिंग हब ऑफ ओमिक्स नॉलेज इन एग्रीकल्चर) कृषि जैव सूचना विज्ञान में शोध हेतु महत्वपूर्ण है।

एसटीआर मार्कर का जीन अभिव्यक्ति (एक्सप्रेशन) तथा विनियामक अथवा नियंत्रण (रेगूलेशन) में व्यापक उपयोग होता है। इससे अभिनव सृजन की दिशा में भरपूर सहयोग मिलता है। एसटीआर जीन अभिव्यक्ति के लिए एक 'ट्यूनिंग नॉब्स' की तरह काम करता है। इस नॉब्स की सहायता से किसी खास फिनोटिपिक बदलाव के मकसद से जेनेटिक बदलाव कर पाना संभव हुआ है। सामान्यतः इनका प्रयोग रोगों से निदान में वांछित जीन के बदलाव के लिए होता है। इन परीक्षण से फसल से विभिन्न प्रजाजियों के मॉर्फोलॉजिकल गुणों का अध्ययन किया जाता है। जो प्रजनन संबंधित शोध कार्य में महत्वपूर्ण है।

चुकंदर में अधिक बायोएथेनॉल तथा बायोमास के उत्पादन में एसटीआर मार्कर का उपयोग से विभिन्न पादप जीन नियमन में प्रयोज्य तत्व का विकास चुकंदर में भी संभव है। रिपिट्स सिक्वेंस के खनन से जीन एक्सप्रेशनके अध्ययन में फायदा मिलता है।

चुकंदर प्रक्षेत्र के बिहंगम दृश्य

एसटीआर के उपयोग से जेनेटिक मॉडीफायड चुकंदर, आनुवांशिक विविधता और कंदमूल के ट्रेट में विकास की अपार संभावना निहित है जो भविष्य की अक्षय ऊर्जा संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण है। इस दिशा में अब तक 2027 पॉलीमार्फिक मार्करों की खोज 'इन–सिलिको' डेटाबेस में सुरक्षित है। इससे कृषि जगत में विभिन्न प्रकार के उत्पाद जैसे चीनी, जैविक ईंधन, स्वास्थ्य संबंधित औषधी, रंग–रंजक, के उत्पाद में निःसंदेह बदलाव आएगें।

आनुवांशिक विविधिता अध्ययन के अलावा प्रजातियों के फाइलो जेनेटिक अध्ययन से विभिन्न प्रकार के जैविक सूचनाओं के उपयोगिता के आधार पर अन्य जीव में हस्तानांतरित करने में मदद मिलती है। ऐसे शोध कार्य प्रायः कम्प्यूटर की मदद से होने से अनुसंधान तथा विकास के मद मे व्यय भारी धनराशि स्वतः बच जाएगी। यर्थात् में कृषि जैविक सूचना विज्ञान का एकमात्र उद्देश यही होता है कि कृषि अनुसंधान में व्यय हो रहे लागत खर्च को कम से कम किया जा सके। इस कड़ी में शुगर बीट माइक्रो सेटेलाइट डेटाबेस विश्व की अनुपम खोज है। जिसके अंतर्गत इसके सभी गुणसूत्र (9 हैप्लॉइड) के तमाम व्यवसायिक महत्व के जीन की खोज इन–सीलिको किया जाता है। भविष्य में इसके डेटाबेस के उपयोग से नित्य नए, अनूठे, तथा मानव उपयोगी उत्पादों के सृजन किया जा सकता है।

नोबेल पुरस्कार विजेता वाल्टर गिल्बर्ट ने सच ही कहा था कि 21वीं सदी में जीव विज्ञान की अधिकतर खोज कम्प्यूटर से/में (इन–सिलिको) होंगे। आर्थिक दृष्टिकोण से आज के दौर में वही राष्ट्र सबसे सम्पन्न और समृद्ध माना जाता है जिनके पास आँकड़ों का भण्डार सुरक्षित होता है। आने वाले समय में आँकड़ों की बाजीगरी ही हमें हर तरफ जीत दिलाएगी, आपका क्या ख्याल है?

भारत के विकास में हिंदी का योगदान अति महत्वपूर्ण हैं. यदि हम भारत को विकसित देश के रूप में देखना चाहते हैं तो हिंदी के महत्व को हम सबको समझना होगा।

चुकंदर के बीजोत्पादन की तकनीकी

धर्मेंद्र कुमार
भा.कृ.अनु.प. – भारतीय गन्ना अनुसंधन संस्थान, लखनऊ, उत्तर प्रदेश
संवादी लेखक का ई–मेलः dkumar2041989@gmail.com

चुकंदर एक द्विवर्षिय फसल है यानी इसे अपना जीवन चक्र पूरा करने के लिये दो मौसम की आवश्यकता पड़ती है। पहले मौसम में इसकी वानस्पतिक वृद्धि होती है और दूसरे में बीज बनते है। 20–21 डिग्री से 39–40 डिग्री सेल्यिसयस तापमान में केवल वानस्पतिक वृद्धि होती है जिसमें पत्तों का गुच्छा और मूसला जड़ बनती है। वही पौधे की बढ़वार को रोकने और फूल खिलने के लिए पौधे को कम से कम 2–4 महीनों तक 0 डिग्री सेल्सियस तापमान की आवश्यकता पड़ती है। इस लेख में चुकंदर के बीजोत्पादन की तकनीकी का विवरण किया गया है।

1. बीजोत्पादन की विधिः

व्यवसायिक स्तर पर चुकंदर के बीजोत्पादन की मुख्यतः दो विधियाँ है अभिशीतन विधि एवं स्टेकलिंग विधि

इन दोनों विधियों में से भारत में अभिशीतन विधि उपयुक्त पाई गई है। हालांकि स्टेकलिंग विधि द्वारा भी चुकंदर के बीजों का उत्पादन किया जाता है परन्तु इस विधि से उत्पादन करते समय यह अवश्य ध्यान देना पड़ता है कि मूसला जड़ भले ही समतल क्षेत्र में उगायी गई हो अपितु बीज उत्पादन हेतु चुकंदर की स्टेकलिंग को ठंड़े क्षेत्र में लगाना पड़ता है।

1.1 अभिशीतन विधिः इस विधि में निम्न चरणों में बीजोत्पादन किया जाता है,

(1) वर्षा ऋतु के पश्चात जून से सितम्बर माह में पहाड़ी क्षेत्रों में (कुमाऊ, मुक्तेश्वर, रानीखेत, सोलन, श्रीनगर) 2–3 जुताई करके खेत की तैयारी करनी चाहिए जहाँ शीतकाल में बर्फ गिरती हो ।

(2) अंतिम जुताई से पहले पर्याप्त खाद व उर्वरक मिट्टी में मिला देना चाहिए।

(3) नत्रजन 224–300 किलोग्राम/ हेक्टेयर का प्रयोग करना चाहिए। इस मात्रा का 1/3 बुवाई से पहले और शेष फरवरी–मार्च शीतकाल की समाप्ति पर करना चाहिए।

(4) 112–150 किलोग्राम फॉस्फोरस, 224 किलोग्राम पोटाश, 5 किलोग्राम बोरोन व मैग्नीशियम प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई से पहले मिट्टी में मिला लेना चाहिए।

(5) 10 किलोग्राम/ हेक्टेयर की दर से बीज कतारों में 50 से.मी. दूरी पर बोना चाहिए।

(6) संकर जाति के बीजोत्पादन के लिए 2 पंक्तियाँ नर व 8 पंक्तियाँ मादा जाति की बोनी चाहिए।

(7) अच्छी उपज के लिए पौधों की संख्या 250,000 से 3,50,000 प्रति हेक्टेयर होनी चाहिए।

(8) जो पौधे कमजोर हो या रोग से ग्रसित हो उनके फूल निकलने से पूर्व ही उखाड़ देना चाहिए। जिससे अन्य स्वस्थ पौधों में उनका संक्रमण न फैले।

(9) चुकंदर के खेत में दूसरी किसी भी जाति का पौधा नहीं होना चाहिए। ऐसे पौधों को फूल आने से पहले निकाल देना चाहिए। जिससे परागण के समय कोई दूसरे जाति के पौधे से उसका प्रजनन न हो सके।

(10) यदि किसी अन्य फसल का खेत चुकंदर के खेत के पास में हो जिसमें बीजोत्पादन होने वाला हो तो इन दोनों के खेत की दूरी मीटर होनी चाहिए।

(11) हिमपात कम होने की स्थिति में 2–3 सिचाइयां करनी चाहिए।

(12) जब पौधे हरे ही रहते है तब मादा पौधों को काटकर कतारों में 2–3 दिन तक रख देना चाहिए।

(13) बाद में बीज को अलग करके सुखाकर संसाधन संयंत्र को तुरन्त भेज देना चाहिए।

(14) फूल खिलने के दौरान फसल को वर्षा से बचाकर रखना चाहिए।

1.2 स्टेकलिंग विधिः इस विधि से चुकंदर का बीजोत्पादन ठंड़े स्थनों में किया जाता है। जहाँ शीतकाल में तापमान शून्य डिग्री सेल्सियस से नीचे चला जाता है। इस विधि से बीजोत्पादन तीन मुख्य भागों में विभाजित किया जा सकता है

(अ) **स्टेकलिंग का उत्पादनः** एक हेक्टेयर क्षेत्र में उत्पादित की गई स्टेकलिंग 8–10 हेक्टर बीज उत्पादन के लिए पर्याप्त होती है। उर्वरक निम्नलिखित मात्रा में प्रयोग करना चाहिए–

1. नत्रजन 120 किलोग्राम/हेक्टेयर
2. फास्फोरस 120 किलोग्राम/हेक्टेयर
3. पोटाश 120 से 250 किलोग्राम/हेक्टेयर

क्यारियों में 45 से.मी. की दूरी पर शीतकाल प्रारम्भ होने से 4–5 माह पूर्व बुवाई की जाती है। पौधों से पौधे की दूरी 10 से.मी. रखी जाती है। इस विधि से बीज उत्पादन हेतु 18–30 किलोग्राम बीज/हेक्टेयर बीज की आवश्यकता पड़ती है।

(ब) **स्टेकलिंग का उखाड़ना, चयन व भंडारणः**

बुवाई के 4–5 माह के बाद 3 से.मी. व्यास की जड़े तैयार हो जाती है। उस समय उनको उखाड़ लेना चाहिए। रोगमुक्त और बिना शाखा वाली जड़ों का चयन करना चाहिए। चयनित की गई जड़ों के क्राउन के हिस्से तक काटकर एवं पतली पूंछ को काटकर स्टेकलिंग बनायी जाती है जिसे ठंड़े क्षेत्र में बीज उत्पादन के लिए बोया जाता है। यदि समतल क्षेत्र में मूसला जड़ उत्पादित की गयी हो और उस जड़ की स्टेकलिंग बनायी गयी हो तो यह अवश्य ध्यान देना चाहिए कि उसकी कुछ पत्तियाँ जड़ से अलग नहीं की गयी हो जिससे वह पहाड़ी क्षेत्र तक पहुँचने पर सूखे नहीं। भंडारण के लिए भूमिगत 60–90 से भी गहरी नालियाँ खोद ली जाती है तथा इसमें भूसा या रेत बिछा दिया जाता है। स्टैकलिंग को नालियों में या भूमि के ऊपर पिरामिड में भंडारण करना जिससे शीतकाल के बर्फीले तापमान में यह जड़ें सुरक्षित रह सकें।

(स) **स्टेकलिंग को खेतों में रोपने के लिए**

एक दो बार हल एवं कल्टीवेटर को विपरीत दिशाओं में चलाकर खेत को तैयार किया जाता है। इसमें उपयुक्त अनुमोदित खाद को भूमि में मिलाया जाता है जिसकी मात्रा निम्नलिखित तालिका में अंकित है–

तालिका 1 उपयुक्त अनुमोदित खाद की मात्रा

पोषक तत्व	मात्रा (किलोग्राम प्रति हेक्टेयर)
नत्रजन	120–160
फॉस्फोरस	120–170
पोटाश	150–250
गंधक	122
मैग्नीशियम एवं बोरोन	5

स्टेकलिंग को क्यारिंयों में 70–80 से.मी. की दूरी पर रोपना चाहिए। वहीं पौधे से पौधे की दूरी 40–50 से.मी. की होनी चाहिए। खेत में 5 हजार से 6 हजार पौध संख्या स्थिर एवं सुरक्षित रहनी चाहिए।

अनुमोदित बीजोत्पादन तकनीकी

3.1 बुवाई का समयः भारत में चुकंदर का बीजोत्पादन पहाड़ी स्थानों में होता है। इन क्षेत्रों में जून से सितम्बर तक अभिशीतन विधि द्वारा बीजोत्पादन के लिए बुवाई कर देनी चाहिए। यदि स्टेकलिंग द्वारा बीजोत्पादन करना है तो फरवरी से अप्रैल तक रोपाई कर देना उचित रहता है।

3.2 बुवाई की विधि, बीज दर एवं पौधों की संख्याः अभिशीतन विधि से बीजोत्पादन हेतु 50–60 से.मी. दूरी पर क्यारियों में बीज की बुवाई करनी चाहिए। साधारण तथा 15–18 किलोग्राम बीज दर उपयुक्त होती है। जिसमें पौधों की बढ़ित संख्या 250–350 हजार तक उपलब्ध हो जाती है। कतार के अंदर पौधे से पौधे की दूरी 3–5 से.मी. रहती है तथा छटाई आवश्यकता नहीं होती।

स्टेकलिंग विधि द्वारा बीजोत्पादन के लिए कतारे 5 से.मी. दूरी पर बनाई जाती है। तथा स्टेकलिंग को 50 से.मी. दूरी पर लगाई जाती है। 1 हेक्टेयर में 5 हजार से 60 हजार पौध संख्या का लक्ष्य रखा जाता है।

3.3 खाद एवं उर्वरकः खाद एवं उर्वरक हेतु निम्नलिखित पोषक तत्व खेत में डालते है–

तालिका 2 उपयुक्त अनुमोदित खाद की मात्रा

पोषक तत्व	मात्रा (किलोग्राम प्रति हेक्टेयर)
नत्रजन	224–300
फॉस्फोरस	112–150
पोटाश	224
गंधक	120–122
मैग्नीशियम एवं बोरोन	5

नत्रजन की 1/3 मात्रा तथा अन्य पोषक तत्वों की सम्पूर्ण मात्रा बुवाई के समय भूमि में मिला देना चाहिए। नत्रजन की शेष मात्रा दूसरे साल बंसत ऋतु में जब ठंड समाप्त हो जाती है तब डालनी चाहिए।

अभिशीन विधि द्वारा बीज उत्पादन की फसल मई से जुलाई माह में काटने के लिए तैयार हो जाती है, कटाई के बाद फसल को कतारों में 2–3 दिन तक सुखने के लिए छोंड़ दिया जाता है। बीज के खेत में झड़ने की हानि को कम करने हेतु फसल की कटाई या तो सुबह या देर शाम को करनी चाहिए।

3.6 गहई और भंडारणः जब फसल सूख जाये तब बीज की गहई या तो थ्रेसर या टैक्टर द्वारा की जा सकती है। गहई के उपरान्त बीज को भालिभांति सुखाकर अनुमोदित विधि द्वारा भंडारण करना चाहिए। चुंकदर के बीज के संसाधन में सफाई, ग्रेडिंग, कीटनाशक एवं फॅफूदी नाशक दवाओं के उपचार के साथ–साथ बीज की घिसाई भी होती है जिससें अधिकत्तर बीज गुच्छा एकल बीज हो जाते है।

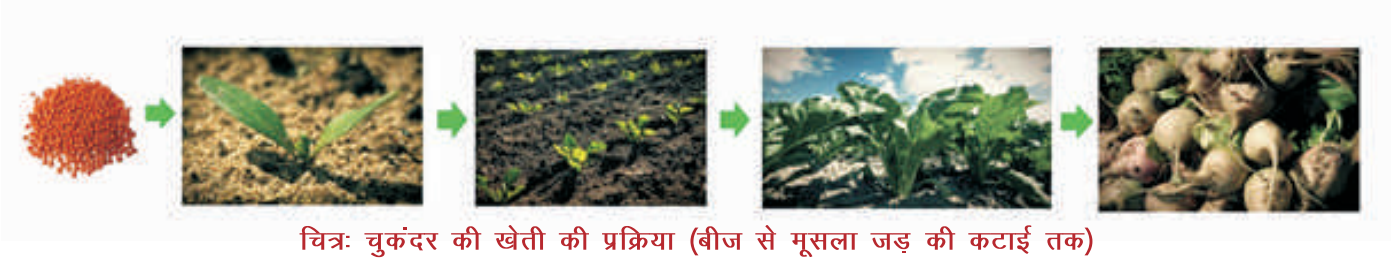

चित्रः चुकंदर की खेती की प्रक्रिया (बीज से मूसला जड़ की कटाई तक)

3.4 **सिंचाईः** यदि सिंचाई के लिए पानी उपलब्ध है तो 2–3 सिंचाई द्वारा अच्छी उपज सुरक्षित हो जाती है।

3.5 **बीज की परिपक्वता एवं कटाईः** पुष्पण के 2–3 माह बाद बीज परिपक्व हो जाता है। जब अधिकांश पौधों के बीज पक जाये तो फसल कटाई की उपयुक्त अवस्था मानी जाती है। भारत में

3.7 **उपजः** चुकंदर के बीज उत्पादक देशों में बीज की उपज 20–30 कुंतल प्रति हेक्टेयर हो जाती है। भारत में आसानी से 10 कुंतल प्रति हेक्टेयर की उपज मिल सकती है। यदि अनुमोदित उत्तम तकनीकी से बीजोत्पादन किया जाये तो पैदावार 15–20 कुंतल प्रति हेक्टेयर सम्भव है।

चुकंदर : एक बहू–उपयोगी फसल

संतेश्वरी, वरूचा मिश्रा, धर्मेद्र कुमार एवं आशुतोष कुमार मल्ल
भा.कृ.अनु.प. – भारतीय गन्ना अनुसंधन संसीान, लखनऊ, उत्तर प्रदेश
संवादी लेखक का ई–मेलः sanfrmvns@gmail.com

भारत गन्ना उत्पादक देशों में से एक है जहां इस स्त्रोत से ही चीनी उत्पादित होती है। जलवायु परिवर्तन के कारण से महाराष्ट्र, कनार्टक और आन्ध्र प्रदेश में लगातार सूखे की स्थिति बने रहने के कारण गन्ना उत्पादन में कमी आ जाने की वजह से चीनी मिलों को पेराई के लिए भरपूर गन्ना नहीं मिल पा रहा है। इसके फलस्वरूप कई चीनी मिलें बंद होने की स्थिति में है। अतः वर्तमान परिस्थिति में ऐसी फसल की आवश्यकता है जिसे कम पानी में भी उगाकर उससे चीनी बनाई जा सके । इस दृष्टि से चुकंदर एक उपयुक्त फसल है। यदि चुकंदर से चीनी तैयार करने की विधि अपनाई जाए, तो किसानों के साथ–साथ प्रदेशवासियों को अच्छा लाभ मिल सकता है। चुकंदर एक ऐसी फसल है जिससे कम खर्च पर चीनी का अधिक उत्पादन किया जा सकता है, इससे न केवल चीनी मिलों पर उत्पादन का बोझ कम होगा बल्कि चुकंदर की खेती को भी बढ़ावा मिलेगा। चुकंदर की खेती के कई मुख्य फायदे है जैसे गन्ने के फसल की अपेक्षा चुकंदर को 30 से 50 प्रतिशत कम पानी की आवश्यकता होती है इसमें सूखे को सहन करने की क्षमता अधिक होती है तथा इसे क्षारीय मृदा में आसानी से उगाया जा सकता है। इस लेख में चुकंदर के बहू उपयोगी उत्पाद के बारे में विवरण किया गया है।

चुकंदर विश्व की प्रमुख चीनी उत्पादक फसलों में से एक है। सतत् विकास एवं आर्थिक स्थिति को मजबूत बनाए रखने के लिए फसल का पूर्ण उपयोग बहुत आवश्यक होता है। चीनी के अलावा चुकंदर से पशु–चारा, जैविक ईंधन, मानव पोषण, प्लास्टिक और फार्मास्युटिकल आदि कई मूल्य वर्धित सह उत्पाद प्राप्त होते हैं। वर्तमान में, देश–विदेश में चुकंदर के ऊपर बहुत सारे शोध किए जा रहे हैं। चुकंदर विश्व की लगभग बीस प्रतिशत चीनी की मांग की आपूर्ति को पूर्ण करती है। चीनी उत्पादन के क्षेत्र में बहुत से देश महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं जिसमें यूरोपियन संघ एवं संयुक्त राष्ट्र संघ साथ मिलकर चीनी उत्पादन के क्षेत्र का वैश्विक नेतृत्व कर रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ विश्व की लगभग ग्यारह प्रतिशत चीनी आपूर्ति करता है। 2020 में विश्व में लगभग 1,138,500 एकड़ क्षेत्रफल में चुकंदर की खेती की जा रही है तथा 279,396,160 टन उत्पाद की प्राप्ति अब तक प्राप्त हुयी है। कुछ देशों में चुकंदर का पूर्ण उपयोग कर लिया जाता है जबकि कुछ स्थानों पर इसका पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता है।

चुकंदर का इतिहासः

1747 से पहले चीनी केवल गन्ने से ही निकाली जाती थी। उस समय चुकंदर केवल जानवरो के चारे के लिए ही प्रयोग में लायी जाती थी। तत्पश्चात जर्मन रसायनज्ञ एंडरीस मारग्राफ ने चुकंदर से चीनी निकाली। वृहद पैमाने पर चुकंदर से चीनी निकालने की पद्दति का विकास करने में कुल 50 वर्ष लग गए। विश्व युद्ध के पश्चात चीनी उत्पादन में भारी कमी आ गयी थी जिसको पूर्ण करने के लिए सर्वप्रथम यूरोप ने चुकंदर द्वारा चीनी निकालने के लिए कारखाने लगाए गए। चुकंदर की फसल विभिन्न जलवायु एवं भूमि के लिए सहिष्णु होने के कारण आसानी से लगाई जाने लगी। चुकंदर के सह–उत्पादो जैसे कि हरा चारा, शिरा एवं लुगदी अवशेष का उपयोग जानवरो के लिए चारे के अलावा एल्कोहल के उत्पादन में भी किया जा रहा है। विश्व मे कुल 1,138,500 टन क्षेत्रफल में चुकंदर की खेती की जाती है तथा 279,396,160 टन चुकंदर का उत्पादन होता है जिसमें सर्वश्रेष्ठ 51,366,830 टन का उत्पादन रूस द्वारा किया जाता है, जबकि 33,794,906 टन उत्पादन करके फ्रांस दूसरे स्थान पर है।

चीनी उत्पादन एवं सह–उत्पादः

चीनी (सुक्रोज) का निष्कर्षण चुकंदर के रस एवं गर्म जल से बहु कदम प्रक्रिया द्वारा होता है। प्राथमिक निष्कर्षण प्रक्रिया में चुकंदर के रस का सान्द्रिकरण किया जाता है साथ साथ धुलाई भी होती है तथा अंत में इसे सुखाकर शर्करा के क्रिस्टल प्राप्त किए जाते हैं। चुकंदर की नयी विकसित प्रजाति द्वारा इसके कुल वजन का लगभग 20 प्रतिशत चीनी निष्कर्षित किया जा सकता है। जो रस क्रिस्टल नहीं बन पाता है उसे शिरा कहते हैं। शिरा चुकंदर

के कुल वजन का 50 प्रतिशत होता है। मुख्यतः शिरा का उपयोग किण्वन प्रक्रिया द्वारा एल्कोहल बनाने के लिए किया जाता है। तत्पश्चात बचे हुए शिरे में नाइट्रोजन की मात्रा बहुत अधिक होती है जिसे पशु–चारा या खेतों में खाद के रूप में उपयोग कर लिया जाता है। चीनी निष्कर्षण प्रक्रिया के पश्चात शेष सूखी हुई लुगदी अवशेष में कोशिका भित्ति, पॉलीसैकेराइड़, प्रोटीन तथा पथ्य तन्तु होते है। इन्ही गुणों की वजह से लुगदी दबाकर ब्लॉक के रूप में परिवर्तित कर ली जाती है एवं इसे पशु–चारा के रूप में प्रयोग कर लिया जाता है। सह–उत्पादो का पूर्ण उपयोग होने के कारण हानि बहुत कम होती है एवं ये फसल की मूल्य में वृद्धि करता है।

पशुओं का चाराः

चुकंदर का प्राथमिक बाजार दूध देने वाले पशुओं के चारे के रूप में उपयोग किया जाता है। पशु चारे के रूप मे उपयोग हेतु चुकंदर शीर्ष के साथ या शीर्ष के बिना खेत में छोड़ दिया जाता है। चुकंदर के शीर्ष में अपरिष्कृत प्रोटीन लगभग 15 प्रतिशत होता है जबकि इसकी पाचन शक्ति का मान 55 होता है। चुकंदर की तुलना में गन्ने के शीर्ष से 6–8 प्रतिशत अपरिष्कृत प्रोटीन प्राप्त होता है जिसकी पाचन शक्ति का मान 57 होता है। यदि कटाई संभव न हो तो पूरे चुकंदर को खेत में पशु चारे के लिए छोड़ा जा सकता है तथा चीनी उत्पादन के पश्चात बची हुई चुकंदर की लुगदी को भी चारे के लिए उपयोग किया जाता है क्योकि लुगदी में 9 प्रतिशत तक अपरिष्कृत प्रोटीन तथा पाचन शक्ति का मान 75 होता है। चुकंदर पर शोध भी हो रहे है ताकि किण्वन के पश्चात इसमें प्रोटीन प्रतिशत बढ़ाया जा सके। यदि यह संभव हो जाता है तो पशुओं को भरपूर पोषण प्राप्त होगा।

खाद्य पदार्थः

चुकंदर की लुगदी से प्राप्त रेशें खाद्य के लिए पूर्णतः सुरक्षित होते हैं। इसमें कुल वजन का 8 प्रतिशत प्रोटीन, 67 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 28 प्रतिशत हेमीसेलुलोज, 19 प्रतिशत सेलुलोज तथा 18 प्रतिशत पेक्टिन होती हैं। इसमें मानव के खाद्य योग्य पाचक रेशे भी पाये जाते हैं जो कि 20 प्रतिशत तक या कभी कभी ज्यादा भी होते हैं। चुकंदर से प्राप्त रेशे कुल लुगदी भी हो सकती है या परिष्कृत पेक्टिक जैसे कि अरेबिनान भी होती है। अरेबिनान का प्रयोग मानव स्वास्थ्य के लिए भी लाभदायक होता है। चुकंदर की लुगदी का उपयोग कोलेस्टेरॉल स्तर को संतुलित करने में भी सकारात्मक भूमिका अदा करता है। डिब्बा बंद खाद्य पदार्थो में चुकंदर की लुगदी का प्रयोग इसके स्वाद तथा संरचना के कारण सीमित है। इसे मुख्यतः मीट पेटीज, बेकरी उत्पाद, अनाज एवं मिश्रित उत्पादों के उत्पादन में किया जाता हैं। लुगदी से प्राप्त फिनोलिक पदार्थ का उपयोग खाद्य पदार्थों में एंटीऑक्सीडेंट के रूप में किया जाता है। लुगदी का प्रयोग सूक्ष्म जीवों द्वारा जेन्थेनॉल के किण्वन के लिए भी किया जा सकता हैं। यह एक बहुत ही उपयोगी तत्व है जिसका उपयोग खाद्य पदार्थों के थिकेनिंग के लिए किया जाता है।

किसी भी फसल की स्थिरता एवं लाभप्रदता के लिए पूर्ण पौधे का उपयोग नितांत आवश्यक है। इसी के साथ–साथ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मिट्टी में इसके अवशेषों को वापस किया जाना भी आवश्यक है ताकि मिट्टी की गुणवत्ता बनी रहे। चुकंदर की लुगदी की संरचना के अध्ययन से पता चलता है कि इसे बहुत सारे मुल्य वर्धित उत्पाद बनाने में प्रयोग किया जा सकता है।

सारांशः

प्रतिस्पर्धी आर्थिक क्षेत्र में स्थायी आर्थिक एवं नैतिक तरीके से कृषि उत्पादों का उपयोग बहुत आवश्यक हैं। चुकंदर के वर्धित मुल्य उत्पाद का संक्षेप में वर्णन प्रस्तुत किया गया है। उद्योग के लिए अनुकूलतम मापदण्डों की चयन प्रक्रिया एवं इसकी जांच के आधार पर चुकंदर एक उपयुक्त फसल है। भविष्य में चीनी उत्पादन करने वाली फसलों को ध्यान में रखते हुये हमें एक ऐसी फसल की आवश्यकता है जो वैश्विक जलवायु परिवर्तन की स्थिति में भी आसानी से अंकुरित हो जाए। अतः हमें चुकंदर की खेती को गन्ने के विकल्प के रूप में विचार करना अत्यंत आवश्यक है जिससे भविष्य में हमें चीनी तथा अन्य उत्पाद जो कि गन्ने से प्राप्त होते हैं ऐसे उत्पादो के लिए हम किसी भी प्रकार की कठिनाई का सामना करने के लिए तैयार रहे। यह विचार गन्ने से चीनी उत्पादन को कम करने के लिए नहीं है बल्कि किसानों की आय को बढ़ाना है और मिलों के लिए एक अतिरिक्त राजस्व धारा प्रदान कराना है। हालांकि, चुकंदर की खेती को अभी भी व्यावसायिक खेती होने के लिए लंबा समय है।

पौष्टिक हरे चारे के लिए जई की खेती

डा. उत्तम कुमार
भा.कृ.अनु.प.– राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल
संवादी लेखक का ई–मेलः uttamndri@gmail.com

रबी मौसम में चारे के लिए उगायी जाने वाली फसलों में जई का एक महत्वपूर्ण फसल है । इसके चारे में औसतन शुश्क पदार्थ 30–35%, प्रोटीन 10–12%, रेशा 34–38%, कैलिशयम 0.30–0. 48% तथा फासफोरस 0.15–0.33% तक पाया जाता है । यह सिंचित व असिंचित दोनो क्षेत्रों में उगायी जा सकती है । यह उत्तर, पश्चिम एवं मध्य भारत में एक शीत ऋतु की फसल के रूप में उगायी जाती है। यह बडे पैमाने पर पंजाब , हरियाणा तथा उत्तर प्रदेश में उगायी जाती है । जई हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, मध्य प्रदेश, उडीसा, बिहार व पश्चिम बंगाल के कुछ सीमित क्षेत्रों में भी उगायी जाती है । जई मुख्य रूप से जानवरों के खिलाने के लिए उगायी जाती है। परन्तु यह अपनी सेहत संबंधी फायदों के कारण भी काफी प्रसिद्ध है। जई का खाना मशहूर खानों में गिना जाता है। जई में वसा, प्रोटीन विटामिन बी1, फॉसफोरस और लोहा प्रचुर मात्रा में पाया जाता है । इसमें रेशे की भी भरपूर मात्रा होती है। यह भार घटाने, ब्लड प्रैशर को नियंत्रित करने और बीमारियों से लड़ने की शक्ति को बढ़ाने में भी मदद करता है।

जलवायु

अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए जई को सिंचित स्थानों में उगाना चाहिए। यह पाला या अधिक ठंड को सहन करने में पूर्णतः सक्ष्म होती है। जई सामान्यता 15–25 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान वाले क्षेत्रों में उगाई जा सकती है । इसको जमाव के लिए ठडें मौसम की आवश्यकता होती है । जिन क्षेत्रों में वार्षिक वर्षा 45 सेमी. से 75 सेमी. समान रूप से होती है, वहॉ पर इसकी खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है ।

भूमि

अच्छी जल निकास तथा उपजाऊ भूमि दोमट अथवा चिकनी मिट्टी इस फसल को उगाने के लिए उपयुक्त मानी जाती है । इसके उगाने के लिए मिट्टी का पी0एच0 मान 5.5 से 8.0 तक अच्छा माना गया है । हल्की मिट्टी में बोये जाने पर इसे बार बार सिंचाई करने की आवश्यकता पडती है ।

उन्नत किस्में

पशुओं के चारे की उपलब्धता बनाये रखने के लिए जई की किस्मों सें अधिक मात्रा में पोषक तत्वों एवं अधिक मात्रा में चारा उत्पादन मिलना चाहिए । जई की किस्में आई0 जी0एफ आर0 आई0 2688 एक कटान वाली तथा आई0 जी0 एफ0 आर0 आई–3021 एक से अधिक कटान वाली अधिक चारा उगाने के लिए उचित पायी गयी हैं । पंजाब एवं हरियाणा के लिए ओ0एस0–6,ओ0एस0–9 तथा कैन्ट द्वारा एक से दो बार कटाई के लिए इन क्षेत्रों के लिए अनुमोदित की गयी हैं । इसके अतिरिक्त वेस्टन–11, यू0पी0ओ0 130 अधिक उपज देने व जल्दी पकने वाली किस्में हैं । मध्यम पकने वाली जातियों में केन्ट, बन्कर–10,

यू0पी0ओ0–50, यू0पी0ओ0–94, एच0एफ0ओ0 114 इत्यादि प्रमुख हैं । देर से पकने वाली किस्मों में यू0पी0ओ0–160, महत्वपूर्ण हैं । उपरोक्त सभी प्रजातियों में सर्वाधिक लोकाप्रिय कैन्ट है । यह मध्यवर्ती किस्म चारे एवं बीज दोनो के लिए अच्छी मानी जाती है । देर में बोई जाने वाली किस्मों से देर तक हरा चारा प्राप्त होता है ।

खेत की तैयारी

इसकी सबसे अच्छी उपज दोमट भूमि में पायी जाती है । जई की अच्छी खेती के लिए दोमट या बलुई दोमट भूमि सबसे अच्छी मानी जाती है । खेत की तैयारी अच्छी तरह करनी चाहिए इसके लिए एक बार गहरी जुताई करने के बाद 3–4 बार हैरो चलाकर उसके बाद पटेला चलाकर भूमि को भुरभरी एवं समतल बनाना चाहिए।

बोने का समय

उत्तर भारत में जई की बुवाई मध्य नवम्बर तक कर देनी चाहिए। सामान्य पैदावार के लिए इसकी बुवाई मध्य अक्टूबर से मध्य नवम्बर तक अव य करनी चाहिए । इस समय वातावरण का तापमान 18– 20 डिग्री से0ंग्रे0 होता है।

बीज दर एवं बिजाई

एक हेक्टेयर खेत बोने के लिए 100 कि0ग्रा0 बीज पर्याप्त होता है तथा प्रति एकड बोने के लिए 40 कि0ग्रा0 बीज की आवश्यकता पडती है। इसे सीड ड्रिल या केरा विधि से 20 से.मी. पंक्ति से पंक्ति की दूरी पर बोना चाहिए ।

स्मट रोग से मुक्ति पाने के लिए जई के बीज को विटावैक्स से 1 ग्राम कि. ग्रा. बीज को उपचारित करके बिजाई करनी चाहिए ।

शून्य भू–परिष्करण में बिजाई करना

धान की कटाई के उपरान्त जई को भी जीरो टिल सीड ड्रिल द्वारा बोया जा सकता है । अधिक खरपतवार वाले खेत में, ग्रामोजोन 500 मिली0 को 200 लीटर पानी में मिलाकर बिजाई के पहले दकत खेत में छिडकाव करना चाहिए । भून्य भूपरिश्करण से डीजल, समय, वातावरणीय प्रदूशण कम करना, पलेवा करने वाला पानी बचाने से इसके उत्पादन में आने वाली लागत को कम किया जा सकता है।बासमती धान लेने के तत्प ाचात् इस विधि द्वारा जई की बिजाई समय से की जा सकती है ।

उर्वरक

जई उच्च मृदा उर्वरता को काली सहन करती है। परन्तु नाइट्रोजन खुराक की बहुत अधिक मात्रा डालने पर चारे मे नाईट्रेट मात्रा ज्यादा होनेपर चारे की गुणत्ता जानवरों को खिलाने की दृष्टि से अंवचाछनीय होती है । अतः सामान्य अवस्था में नाइट्रोजन की मात्रा 30 कि0 ग्रा0 66 कि ग्रा0 यूरिया प्रति एकछ के हिसाब से डालनी चाहिए तथ नाईटोजन की आधी मात्रा बिजाई के समय अन्तिम हैरो चलाते समय देना चाहिए। बची हुई नाईटोजन की आधी मात्रा पहली या दूसरी सिंचाई के बाद देनी चाहिए । तथा अन्तिम हैरो चलाने के दौरान 8 कि0 ग्रा0 फास्फोरिक अम्ल 50 कि0 ग्रा0 सिंगल सुपर फास्फेट को खेत में डालनी चाहिए ।

उर्वरक डालने का समय

पहले दी गयी उर्वरक चारे की वृद्धि के लिए, जबकि देर से दी गई उर्वरक बीज एवं गुणवता के लिए खेत में दिया जाता है। अतः चारे वाली फसल में नाइट्रोजन को पहले ही देना पडता है, जोकि बोने के पहले तथा चारे की पहली या दूसरी कटान के बाद खेत में डालनी चाहिए ।

जई की अच्छी पैदावार के लिए नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश व अन्य महत्वपूर्ण तत्वों की आवश्यकता होती है । जई में नाईट्रोजन की मात्रा मिट्टी के प्रकार और उसमें उपस्थिति तत्वों के आधार पर देनी चाहिए । अगेती और मध्य अवधि वाली किस्मों के लिए 80–100 कि0ग्रा0 नाईट्रोजन/ हेक्टेयर के लिए पर्याप्त होती है । पछेती या दीर्ध अवधि की किस्मों के लिए 100–120 कि0 ग्रा0 नाईट्रोजन प्रति हे0 देने से अच्छी पैदावार होती है । नाईट्रोजन की ये मात्राएं यूरिया उर्वरक द्वारा देना चाहिए । नाईट्रोजन की कुल मात्रा का आधा अथवा दो तिहाई भाग बुवाई से पूर्व खेत में डालकर अन्तिम हैरो चलाने के समय उसे मिट्टी में मिला देना चाहिए । तथा शेष मात्रा 25–26 दिन पश्चात् प्रथम सिंचाई के समय तथा शेष मात्रा कटाई के पशचात छिटकवां विधि से देकर सिचाई करनी चाहिए । फॉस्फोरस और पोटाश से भी चारे

की पौष्टिकता बढती है । यदि भूमि में फॉसफोरस एवं पोटाश की कमी हो तो लगभग 40 कि. ग्रा. फा. तथा 30 कि. ग्रा. पोटाश प्रति हे. की दर से देना आव यक होता है । कटाई के बाद नाईट्रोजन को प्रयोग करने से फसल में पुर्न वृद्धि शीध्र एवं अच्छी होती है । यदि गोबर की खाद के साथ यूरिया का प्रयोग किया जाये तो उपज में अधिक वृद्धि होती है ।

जल प्रबन्धन

जई की फसल के लिए पलेवा करने को लेकर 3–4 सिंचाई की आवश्यकता होती है । सामान्य तौर पर प्रत्येक कताई के बाद सिंचाई करने से पौधे की पुर्न वृद्धि को काफी बढावा मिलता है । प्रथम सिंचाई बुवाई के 25 दिन बाद करनी चाहिए इसके बाद 15–20 दिनों की अवधि के अन्तर पर सिंचाई करनी चाहिए। वास्तव में समय व सही ढंग से सिंचाई करके पोषक तत्वों के क्षरण को रोका जा सकता है अतः आवश्यकता से अधिक ऊपरी सिंचाई नहीं करनी चाहिए । सिंचाई दौजियों को निकलने और पौध वृद्धि में काफी सहायक होती है । जहॉ पानी की कमी हो, एक–दो सिंचाई से अच्छी पैदावार ली जा सकती है। शुष्क क्षेत्रों के लिए रेड ओट की दो किस्में जिसका नाम कैलिफोर्नियारेतु व फुलधाम जिन्हें जलप्रभाव एवं अधिक तापमान में भी उगाया जा सकता है ।

खरपतवार प्रबन्धन

चारे के लिये बाई गई जई की फसल में निराई की आवश्यकता कम होती है। क्योंकि पौधों की संख्या अधिक होने के कारण खरपतवार पनप नहीं पाते हैं, किन्तु बीज उत्पादन के लिये ली जाने वाली फसल में खरपतवार नियंत्रण लाभप्रद होता है। चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के नियंत्रण के लिये 500 ग्राम 2, 4–डी का उपयोग 600 लीटर पानी में प्रति हेक्टेयर मिला कर छिड़काव करें।

कटाई

चारे हेतु उगायी गयी जई की फसल की प्रथम कटाई लगभग 50–55 दिन बुवाई के बाद उस समय जब पौधों की लम्बाई 60 सेमी0 तक हो जाय तब करनी चाहिए उसके उपरान्त दूसरी कटाई झण्डे निकलने के बाद जब उसके दाने में दूध निकलने लगे तब करनी चाहिए । इस समय पाचक प्रोटीन और कुल पाचक पोषक की मात्रा अधिक होती है । पहली कटान देर से लेने पर पौधों में पुर्न वृद्धि कम होती है तथा कुल चारे की उपज भी घट जाती है । चारे की उच्च गुणवता एवं पैदावार के लिए जई की केवल दो कटाई लेना अच्छा होता है । वहीं पर बीज उत्पादन की संतोषजनक पैदावार लेने के लिए जई की मात्र एक कटाई ही लेनी चाहिए । पहली कटाई पौधों की पुर्न वृद्धि के लिए पौधों को जमीन की सतह से 8–10 सेमी0 उपर काटनी चाहिए । साइलेज बनाने के लिए जई को पकने से पहले इस समय पौधों में उच्च प्रोटीन तथा रेशें की मात्रा कम पायी जाती है । जोकि जानवरों की पाचनशीलता के लिए उत्तम होती है । सूखी जई बनाने के लिए जई की संघि अवस्था पर कटाई करनी चाहिए ऐसा प्रेक्षण में पाया गया है । इस समय पौंधों में पोषक मान उच्चतम होता है, या इस समय को हम पुष्पावस्था भी कह सकते हैं ।

उपज

अच्छे प्रबन्धन के साथ चारा उपज की निर्भरता उसे उगाने वाले खेत की उर्वरता पर निर्भर करती है। बोई गयी फसल से लगभग 500–600 क्विंटल चारा प्रति है. प्राप्त किया जा सकता है । पहली कटान के बाद काटी गयी फसल से लगभग 250 क्विंटल चारा, 30–35 क्विंटल बीज और 25–30 क्विंटल भूसा प्रति है. खेत से प्राप्त किया जा सकता है । जहॉ पर चारे की अधिक से अधिक उपज लेनी हो वहॉ पर कम से कम दो कटाई वाली किस्मों का प्रयोग करते हुए उसके सभी फसल उत्पादन की तकनीकी का अच्छा इस्तेमाल करने से ज्यादा चारा और लम्बे समय तक प्राप्त किया जा सकता है ।

जीरे की खेती : मुख्य रोग एवं प्रबंधन

मंजु कुमारी, महेश कुमार पूनियाँ एवं शक्ति सिहं भाटी
कृषि महाविधालय, नगौर, कृषि विश्वविधालय, जोधपुर, राजस्थान
संवादी लेखक का ई–मेल : manjupawanda44@gmail.com

जीरा (क्युमिनम साइमिनम) एक मसाला रबी फसल है जो कम समय में पककर अधिक आमदनी देती है। मसालों के उत्पादन में जीरे का दुसरा प्रमुख स्थान है। जीरे के उत्पादन में भारत का विश्व में प्रथम व राजस्थान का देश मे दूसरा स्थान है। यह एक ऐसी फसल है जो सभी घरों की रसोई घर में पाई जाती है। एक मसाले एवं कई दवाइयों के रूप में इसका उपयोग किया जाता है, इसकी मांग पूरे देश भर में है तथा इसका निर्यात विदेशो में भी किया जाता है। देश कें विभिन्न जीरा उत्पन्न करने वाले क्षेत्रो के किसानों के लिये जीरे कि फसल अन्य फसलों की अपेक्षा ज्यादा लाभदायक है। इसकी फसल दोमट मिट्टी में अच्छी होती है तथा इसकी खेती सर्दी के मौसम (रबी) में की जाती है। जीरे की खेती अधिक तापमान में नहीं होती है।

जीरे की उन्नत किस्मे:

आरजेड–19: जीरे की यह किस्म 120–125 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इससे 9–11 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक उत्पादन प्राप्त होता है। इस किस्म में उखटा, छाछिया व झुलसा रोग कम लगता है।

आरजेड– 209: यह भी किस्म 120–125 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसके दाने मोटे होते हैं। इस किस्म से 7–8 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक उपज प्राप्त होती है। इस किस्म में भी छाछिया व झुलसा रोग कम लगता है।

जीसी– 4: जीरे की ये किस्म 105–110 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसके बीज बड़े आकार के होते हैं। इससे 7–9 क्विंटल तक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। यह किस्म उखटा रोग के प्रति कम संवेदशील है।

आरजेड– 223: यह किस्म 110–115 दिन में पककर तैयार हो जाती है। जीरे की इस किस्म से 6–8 क्विंटल तक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। ये किस्म उखटा रोग के प्रतिरोधक है। इसमें बीज में तेल की मात्रा 3.25 प्रतिशत होती है।

उर्वरक (खाद):

जीरे के खेत में प्रति हेक्टेयर 8 से 10 टन गोबर खाद का उपयोग करें तथा इसको अंतिम जुताई से पहले खेत में मिला देंवें। जीरे की फसल के लिए 28 किलो ग्राम नाइट्रोजन व 21 किलो ग्राम फास्फोरस प्रति हेक्टेयर का प्रयोग करे। फास्फोरस की पूरी मात्रा अंतिम बुवाई के समय भूमि में मिला देना चाहिए एवं नाइट्रोजन की आधी मात्रा बुवाई के 32 से 35 दिन बाद एवं आधी शेष 15 किलो ग्राम नाइट्रोजन बुवाई के 55 दिन बाद सिचाई के साथ देवें।

बीज दर एवं बुवाई का समय:

जीरा की बीज दर 12 किलो ग्राम प्रति हेक्टेयर होता है तथा इसकी बुवाई 1 से 1.5 सेमी. की गहराई तक ही करें। इससे ज्यादा की गहराई पर बोने से बीज का अंकुरण कम होता है। इसकी बुवाई के समय तापमान 24 से 28 डिग्री सेल्सीयस तथा पौधों की वृद्धि के समय 20 से 22 डिग्री सेल्सीयस होना चाहिए। बुवाई नवम्बर के तीसरे सप्ताह से दिसम्बर के पहले सप्ताह तक हो जाना चाहिए। सामन्य तौर पर बीज की बुवाई छिटककर की जाती है लेकिन अगर सीधी विधि से करें तो ज्यादा अच्छा रहता है । इससे खरपतवार निकासी में अच्छा रहता है। जीरे का प्रति एकड़ उत्पादन 6 से 7 किवंटल होता है लेकिन जीरे की खेती में सही तरीके से मौसम, बीज, खाद, सिंचाई तथा रोग एवं कीटों की जानकारी नहीं रहने पर नुकसान भी उठाना पड़ता है। प्रति वर्ष जीरे में रोगों के प्रकोप से बहुत हानि होती है। यदि फसल की बुवाई से बीजोपचार, भुमि उपचार तथा फसल उगने के बाद इन रोगों के लक्षणों कि पहचान कर रोकथाम की जाये तो किसानों को जीरे का भरपूर उत्पादन प्राप्त हो सकता है। यह फसल अत्यधिक संवेदनशीलता होने के कारण उगने के बाद एक महीने से लेकर

पकने कि अवधि तक विभिन्न प्रकार के रोगों से बहुत ज्यादा ग्रसित हो जाती हैं जिसकी वजह से इस पर आधारित पश्चिमी राजस्थान का एक लोकगीत भी गाया जाता है जीरो जीव रो बैरी रे.....जीरे की संवेदनशीलता के कारण यह फसल रोग से जल्दी प्रभावित होती है और खराब होकर किसान के सारे अरमानों को धो डालती है। इसी कारण खासतौर से पश्चिमी राजस्थान के लोकगीतों में भी इसे जीरो जीव रो बैरी रे... कहा गया है, लेकिन, आज के माहौल में यह कैश क्रॉप है।

जीरे की फसल में प्रमुख रोग

उखटा (विल्ट): यह रोग कवक (फ्यूजेरियम आक्सीस्पोरम कुमीनाइ) द्वारा होता है जो मिट्टी व बीज जनित है। इस रोग का प्रकोप पौधों की किसी भी अवस्था में हो सकता है परन्तु युवावस्था में ज्यादा होता है। जीरे में होने वाले रोगों में यह ज्यादा हानिकारक होता हैं क्योंकि इसके भयंकर प्रकोप से पूरी फसल नष्ट होती है। पहले वर्ष यह बीमारी कहीं कहीं पर खेत में आती है फिर प्रतिवर्ष बढ़ती रहती है और तीन वर्ष बाद उस क्षेत्र में जीरा की फसल लेना असम्भव हो जाता है।

लक्षण: यह बीमारी भूमि एंव बीज के साथ आती है। रोग के सर्वप्रथम लक्षण उगने वाले बीज पर आते हैं तथा पौधा भूमि से निकलने के पहले ही मर जाता है तथा बाद में हरा–भरा पौधा ऊपर से झुक जाता है। कुछ दिनों में सूख कर नष्ट हो जाता है। रोगग्रस्त पौधे की जड़ के अंदर रोग कारक कवक के संक्रमण से संवाहक उत्तकों का रंग भूरा पड़ जाता है। इससे पौधा मृदा से जल एवं पोषक तत्व नहीं ले पाता। रोग का प्रकोप फूल आने के बाद होता है तो कुछ बीज बन जाते है। ऐसे रोगग्रसित बीज हल्के, आकार में छोटे, पिचके हुए तथा उगने की क्षमता कम रखते है। रोगी पौधे कद में छोटे तथा दूर से पत्तियों पीली नजर आती हैं।

रोकथाम: एक ही खेत मै बार– बार जीरे कि फसल ना लेवें व रोगग्रसित खेत में जीरा न बोयें। स्वस्थ बीज को ही बोयें। ग्रीष्म कालीन गहरी जुताई करनी चाहिए। बीजों को कार्बेण्डाजिम 50 डब्ल्यू.पी. से 2 ग्राम प्रति किलो बीज से उपचारित कर बुवाई करें। कम से कम तीन वर्ष का फसल चक्र (ग्वार–जीरा–ग्वार– गेहू–ग्वार–सरसों) अपनायें। बुवाई पूर्व सरसों का भूसा, नीम की खलिया फलगटी जमीन में मिलाने से रोग में कमी आती है। ट्राइकोडर्मा विरिडी/हर्जियनम मित्र फफूंद 2.5 किलो प्रति हेक्टेयर100 किलो सड़ी हुयी गोबर खाद में मिलाकर बुवाई के 15 दिन पूर्व भूमि में देने से रोग में कमी होती है। इसके अलावा खेत के जिस क्षेत्र में जीरे के पौध में रोग के लक्षण दिखाई दे, उन क्यारियों में कारबेंडेजिम दवा 0.1 प्रतिशत की दर से घोल बनाकर पौधों की जड़ों के पास देनी चाहिए। साथ ही आधा किलोग्राम दवा प्रति हैक्टेयर की दर से खेत में भुरकाव कर सिंचाई करें। रोगरोधी किस्म जीसी–4 बोये।

झुलसा (ब्लाईट): यह रोगकवक (आल्टरनेरिया बुर्न्सी) से होता है जो जीरे की फसल का मुख्य रोग है। यह फसल में फूल आने शुरू होने के बाद व फल बनने के समय आकाश में बादल छाए रहें तो इस रोग का लगना निश्चित हो जाता है इसलिए सुरक्षात्मक उपाय पहले ही कर लेने चाहिए। फूल आने के बाद से लेकर फसल पकने तक यह रोग कमी भी हो सकता है। मौसम अनुकूल होने पर यह रोग बहुत तेजी से फैलता है।

लक्षणः रोग के सर्वप्रथम लक्षण पौधे की पत्तियों पर भूरे रंग के धब्बों के रूप में दिखाई देते है। धीरे–धीरे ये काले रंग में बदल जाते है। पत्तियों से वृत, तने एवं बीज पर इसका प्रकोप बढ़ता है। पौधों के सिरे झुके हुए नजर आते है। संक्रमण के बाद यदि आर्द्रता लगातार बनी रहें या वर्षा हो जाये तो रोग उग्र हो जाता है। रोग की उग्र अवस्था में पूरा पौधा सूखकर काला पड़ जाएगा। इसे कालिया रोग भी कहते हैं। यह रोग इतनी तेजी से फैलता है कि रोग के लक्षण दिखाई देते ही यदि नियंत्रण कार्य न कराया जाये तो फसल को नुकसान से बचाना मुश्किल होता है।

रोकथामः स्वस्थ बीजों को बोने के काम में लीजिए। फसल में अधिक सिंचाई नही करें। खेत में पानी भरा हुआ नहीं होना चहिए । प्रारंभिक रोग ग्रसित पौधों को खेत से उखाड़कर जला देवें। फूल आते समय लगभग 30–35 दिन की फसल अवस्था पर डाइफैनाक्वोनाजोल (सर्वांग कवकनाशी) आधा ग्राम प्रतिलीटर या मंकोजेब 0.2 प्रतिशत के घोल का छिड़काव करें आवश्यकतानुसार 10 से 15 दिन बाद दोहरायें। जैविक जीरा की खेती में इस रोग के नियंत्रण के लिए पंचामृत घोल का 0.5 प्रतिशत से छिड़काव करें।

छाछिया (पाउडरी मिल्डयू)ः यह रोग कवक (इरीसाईफी पोलीगोनी) से होता है।

लक्षणः इस रोग के लक्षण सर्वप्रथम पत्तियों पर सफेद चूर्ण के रूप में नजर आते है। धीरे–धीरे पौधे के तने एवं बीज पर रोग फेल जाता है एवं पूरा पौधा दूर से ही सफेद दिखाई पड़ता है। रोग बढने पर पौधा गंदला व कमजोर हो जाता है। रोग का प्रकोप जल्दी हो जाता है तो बीज नहीं बनते है। और देर से हो तो बीज बहुत छोटे एवं अध पके रह जाते हैं।

रोकथामः फसल में अगर छाछया रोग के लक्षण दिखाई दें तो उन खेतों में कैराथैन एक मिलीलीटर एक लीटर पानी में घोलकर या घुलनशील गंधक 25 किलो प्रतिहै/टेयर की दर से भुरकाव करें। आवश्यकतानुसार 10 से 15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव या भुरकाव दोहरावें। जैविक जीरा में इस रोग के नियंत्रण के लिए फसल पर गौमूत्र (10 प्रतिशत) व एनएसकेइ (2.5 प्रतिशत) व लहसुन अर्क (2.0 प्रतिशत) घोल का छिड़काव करें। अतिसंवेदनशील मानी जाने वाली जीरे की फसल को बादलों वाले मौसम में रोग लगने का खतरा रहता है। कोई भी लक्षण दिखने से पहले ही जीरे की फसल में उपाय शुरू कर देने चाहिए। इससे रोग की अवस्था आने से पहले ही इसका उपचार हो जाएगा। बादलों के कारण सबसे खतरनाक माना जाने वाला झुलसा रोग लग सकता है। इससे पूरी फसल काली पड़कर खराब हो सकती है। इन दिनों फसल में फूल बनने से लेकर दाना बनने की स्थिति बन रही है, इसी दौरान रोग का खतरा रहता है।

जिस देश को अपनी भाषा और साहित्य
के गौरव का अनुभव नहीं है,
वह उन्नत नहीं हो सकता।
–डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

चने की उन्नत खेती के लिए जरूरी नुक्से

सतपाल सिंह
भा.कृ.अनु.प.– केन्द्रीय कपास अनुसंधान केन्द्र, क्षे. कार्यालय सिरसा, हरियाणा
संवादी लेखक का ईमेलः satpalsngh070@gmail.com

चना, भारत देश में उगाई जाने वाली दलहनी फसलों में से एक प्रमुख फसल है। भारत देश में दलहनी फसलों की कुल पैदावार का लगभग 40–45 प्रतिशत हिस्सा चने से प्राप्त होता हैं। चने की दाल बहुत उपयोगी एवं पौश्टिक आहार है। चने में लगभग 18–22 प्रतिशत प्रोटीन व 60–62 प्रतिशत कार्बोहाइडेट पाया जाता है। चने की पतियों में आक्जेलिक अम्ल व मेलिक अम्ल होता है, जिससे पतियों में खट्टापन होता है, और पशु इसके भूसे को चारे के रुप में खाना बहुत ही पसन्द करतें हैं।

वर्गीकरण– चना की मुख्यतयाः दो जातियां उगाई जाती हैं–

साइसर एरेटिनम (देसी चना)– इस जाति के चने को देशी चना कहा जाता है। इसके दाने पीले, कत्थई या हल्के काले रंग के व आकार में छोटे होते है।

साइसर काबुलियम (काबुली चना)– इस जाति के चने को काबुली चना कहा जाता है। इसके दाने सफेद रंग के व आकार में बड़े होते है।

चना उत्पादन की उन्नत कृषि विधियां निम्नलिखित है –

जलवायुः– चना की फसल के लिए शुष्क व ठण्डे मौसम की आवश्यकता होती है। चना की खेती शुष्क फसल के रूप में रबी के मौसम में की जाती है। इसकी खेती कुछ क्षेत्र में सिंचित फसल के रूप में की जाती है। सामान्यतयाः मध्यम वर्षा वाले क्षेत्र चने की खेती के लिए सर्वाधिक उपयुक्त रहतें हैं । अधिक ठण्ड पड़ने पर चने की फसल पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। दिसम्बर, जनवरी माह में पाला पड़ने पर फसल को काफी नुकसान होता हैं। चने की खेती 600–950 मि.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों में आसानी से की जा सकती हैं।

मृदाः– चने की खेती सभी प्रकार की मृदाओं में की जा सकती है। परन्तु अच्छे जल निकास वाली हल्की दोमट या दोमट बालु मृदा उपयुक्त रहती है। चने के लिए जलमग्न, क्षारीय व लवणीय मृदा उपयुक्त नहीं रहती है। क्योंकि जलमग्न मृदा में नमी अधिक होने के कारण राईजोबियम जीवाणु की सक्रियता कम हो जाने से नाईट्रोजन स्थिरीकरण नहीं हो पाता है।

भूमि की तैयारीः– चने की फसल के लिए एक गहरी जुताई व एक–दो जुताई देशी हल या हैरो से करके भूमि को तैयार करना चाहिए। जिससे मृदा में वायु संचार अच्छा रहता है। सिंचित क्षेत्र में पलेवा करके एक–दो जुताईयां देशी हल या हैरो से करके पाटा/सुहागा लगाकर खेत तैयार कर लें।

भूमि उपचार :– जिन खेतों में दीमक व उखटा/उखेड़ा रोग का पिछले सालों में अधिक प्रकोप रहा हो उन खेतों में बीजाई से पहले भूमि उपचार कर लेना चाहिए।

1. दीमक व कटवर्म कीट के बचाव के लिए क्युनालफोस 1.5 प्रतिश्त चुर्ण 20–25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेर की दर से भूमि में आखरी जुताई के समय मिला देवें।

2. जिन खेतों में जड़ गलन रोग का प्रकोप अधिक है, उन खेतों में बुवाई से पूर्व 10–12 कि.ग्रा. टाइकोड्रर्मा हरजेनियम को 100 कि.ग्रा. नमी युक्त गोबर की खाद में अच्छी तरह मिला कर 10–15 दिन के लिए छाया में रख दें। इस मिश्रण को बुवाई से पूर्व प्रति हैक्टेर की दर से मिट्टी में पलेवा के समय मिला देवें।

बीजोपचार– 1.जड़गलन व उखटा/उखड़ा रोग की रोकथाम हेतु बीजों को 6–10 ग्राम टाईकोड्रर्मा या कार्बेण्डाजिम 2 ग्राम या कार्बेण्डाजिम 1.5 ग्राम व थायरम 1.5 ग्राम (1:1) प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करना चाहिए।

2. जिन क्षेत्रों में दीमक का प्रकोप हो वहां बीजों को 400 मिली. क्लोरोपापरीफोस 20 प्रतिशत ई.सी. या 200 ग्राम थायोमेथोक्जाम 70 डब्लयू. पी. या 200 मिली. ईमिडाक्लोपरीड 17. 8 प्रतिशत ई.सी. को 5 लीटर पानी में घोल बनाकर 100 कि.ग्रा. बीज को उपचारित करके, एक दिन धूप में सुखाकर अगले दिन

बुवाई करनी चाहिए।

3. बीजों को जीवाणु संवर्ध से उपचारित करने से उपज में वृद्धि होती है। अतः बीजों को 5 ग्राम राईजोबियम जीवाणु व 5 ग्राम पी. एस.बी. कल्चर प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करके बुवाई करनी चाहिए।

बीजों को उपयुक्त क्रम में ही उपचारित करके बुवाई करें अर्थात सबसे पहले फंफूदनाशी, उसके बाद कीटनाशी व अन्त में राईजोबियम जीवाणु व पी.एस.बी. कल्चर से बीजोपचार करें।

बीज दरः– देशी चने की बुवाई हेतु 70–80 कि.ग्रा. उपचारित बीज प्रति हैक्टेयर के लिए पर्याप्त है। काबुली चने की बुवाई हेतु 80–90 कि.ग्रा. उपचारित बीज प्रति हैक्टयेर लेवें।

चने की उन्नत किस्मे– भारत देश में चने की उन्नत खेती के लिए कई किस्में विकसित की गई है। परन्तु उतर भारत के राजस्थान, पंजाब, हरियाणा राज्यों में चने की उन्नत खेती के लिए निम्नलिखित किस्में उपयुक्त है–

फसल चक्र– चने की अच्छी पैदावार लेने के लिए फसल चक्र अपनाना बहुत जरूरी है। फसल चक्र अपनाने से मृदा जनित बीमारियों से बचा जा सकता है तथा भूमि की उपजाऊ शक्ति पर विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता हैं। चने के लिए निम्न एकवर्षीय फसल चक्र अपना सकतें हैं– पड़त/खाली चना या बाजरा चना या धान चना ।

राज्य	उन्नत किस्में	
	देशी चना	काबुली चना
हरियाणा*	1. हरियाणा चना न.–1 2. हरियाणा चना न.–3 3. हरियाणा चना न.–5 4. सी. 235 5 करनाल चना–1	1. हरियाणा काबुली–1 2. हरियाणा काबुली–2
पंजाब**	1. पी.बी.जी.– 7 2. पी.बी.जी.– 5 3. जी.पी.एफ.–2 (सिंचित क्षेत्र के लिए) 4. पी.डी.जी.–4 (असिंचित क्षेत्र के लिए)	1. एल–552
राजस्थान***	1. जी.एन.जी.1958 (मरूधर) 2. जी.एन.जी.1969 (त्रिवेणी) 3. जी.एन.जी.1581 (गणगौर) 4. जी.एन.जी.1488 (संगम) 5 जी.एन.जी.663 (वरदान) 6. जी.एन.जी.469 (सम्राट) 7. सी. 235 8. प्रताप चना–1 9. जी.एन.जी.2144 (तीज) 10. जी.एन.जी.2171 (मीरा)	1. जी.एन.जी.1292 (काबुली चना) 2. एल–550

स्त्रोत– कृषि विभाग राजस्थान खण्ड श्री गंगानगर, फसल संभाग कृषि मंत्रालय भारत सरकार

बुवाई का समय व विधि– चने की बुवाई असिंचित क्षेत्रों में अक्टुबर के प्रथम सप्ताह में शुरू कर देनी चाहिए। और सिंचित क्षेत्रों में चने की बुवाई 15 अक्टुबर से 15 नवम्बर तक की जा सकती है। धान उगाये जाने वाले खेतों में चने की बुवाई दिसम्बर के प्रथम सप्ताह तक की जा सकती है। चने की बुवाई के लिए कतार से कतार की दूरी 30 से.मी. रखें व बीज की गहराई सिंचित क्षेत्रों में 5–7 से.मी. व असिंचित क्षेत्रों में 7–10 से.मी. रखें।

सिंचाई– चने की खेती ज्यादातर वर्षा आधारित की जाती है। सिंचित क्षेत्रों में सिंचाई का पानी अगर उपलब्ध हो तो पहली सिंचाई शाखाएं बनतें समय व दुसरी सिंचाई फलियां बनतें समय करनी चाहिए। अगर एक सिंचाई का पानी उपलब्ध हो तो बुवाई के 60–65 दिन के बाद सिंचाई कर देंनी चाहिए।

खाद व उर्वरक– खाद व उर्वरक की मात्रा खेत की मृदा परीक्षण के आधार पर निर्धारित करनी चाहिए अगर मृदा परीक्षण नहीं करवाया हो तो, चने की फसल की अच्छी पैदावार के लिए सामान्यतयाः असिंचित क्षेत्रों में 10 कि.ग्रा. नत्रजन यानि 22 कि.ग्रा. यूरिया व 20 कि.ग्रा. फासफोरस यानि 125 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट या 44 कि.ग्रा डी.ए.पी. प्रति हैक्टेयर की दर से बुवाई से पहले डाल देंवें। सिंचित क्षेत्रों में 15–20 कि.ग्रा. नत्रजन यानि 32–43 कि.ग्रा. यूरिया व 40 कि.ग्रा. फासफोरस यानि 250 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट या 87 कि.ग्रा डी.ए.पी. प्रति हैक्टेयर की दर से बुवाई से पहले डाल देंवें।

* अगर फास्फोरस की मात्रा डी ए पी से दी जाती हैं तो निश्चित अनुपात में यूरिया कम कर देंवें।

* रासायनिक उर्वरक की मात्रा मृदा स्वास्थ्य कार्ड के हिसाब से भी दें सकतें हैं।

खरपतवार नियंत्रण– चने की फसल में प्रथम निराई–गुड़ाई बुवाई के 25–30 दिन बाद करनी चाहिए जिससे मृदा में वायु संचार बढ़ जाता है और फसल वृद्धि अच्छी होती है। आव आवश्कतानुसार दूसरी निराई–गुड़ाई ,प्रथम निराई–गुड़ाई के बाद 20–25 दिन बाद की जानी चाहिए। रासायनिक खरपतवार नियन्त्रण के लिए पेण्डिमेथालिन 30 प्रतिशत ई.सी. सक्रिय तत्व 750 ग्राम से 1.0 कि.ग्रा. मात्रा को 600–700 लीटर पानी में घोल करे, बुवाई के बाद व बीज उगने से पहले प्रति हैक्टेयर दर से छिड़काव कर दें। खरपतवारनाशी का छिड़काव करते समय मृदा में नमी होना जरूरी है।

पौधों की चुंटाई– चने की फसल में पौधों के अधिक बढ़ जाने पर शीर्ष भाखाओं का तोड़ने की क्रिया को निपिंग कहा जाता हैं। चने के पौधे की उंचाई लगभग 15–20 से.मी. हो जाए तो शीर्ष भाखाओं को तोड़ देना चाहिए। जिससे पौधों में फल–फूल वाली शाखाएं अधिक निकलती है, फलस्वरूप प्रति हैक्टेयर पैदावार में वृद्धि होती है।

पादप संरक्षण

कीट

कटवर्म– इस कीट की सुण्डियां (लार्वा) फसल को रात्रि के समय नुकसान पहुचाती है। इस कीट की सुण्डियां (लार्वा) फसल की पतियां, शाखा व तने को ही खा जाती है। जिससे फसल को बहुत भारी नुकसान होता है इस कीट के लिए निम्न उपाय अपनाकर इसकी रोकथाम की जा सकती है–

1. ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करें। **2.** फसल चक्र अपनायें। **3.** बुवाई से पहले फोरेट 10 जी. 10 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर दर से छिड़काव करें। **4.** क्युनालफोस 25 प्रतिशत ई.सी. 2 मिली. प्रति लीटर पानी या प्रोफेनोफोस 50 ई.सी. 2 मिली. प्रति लीटर पानी के साथ घोल बनाकर छिड़काव करें।

दीमक– चने की खड़ी फसल में दीमक का प्रकोप दिखाई देने पर क्लोरोपापरीफोस 20 प्रतिशत ई.सी. 4 लीटर या ईमिडाक्लोपरीड 17.8 प्रतिशत ई.सी. की 500 मिली. मात्रा का पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टेयर दर से सिंचाई के साथ दें या ड्रेंचिंग करें।।

फली छेदक (अमेरीकन सुण्डी)– फली छेदक की सुण्डियां (लार्वा) प्रारम्भ में पौधें की पतियों को खाती है और फली लगने पर, फलियों में छेद करकें दाना खाना शुरू कर देती है जिससे फसल को नुकसान होता है इस कीट के लिए निम्न उपाय अपनाकर इसकी रोकथाम की जा सकती है–

1. सबसे पहले निम्बिसिडिन (3 प्रतिशत या 300 पी.पी.एम.) के घोल का बिजाई के 20, 40, दिन बाद एवं फूल आने पर छिड़काव करें।

2. फली छेदक की निगरानी व नियंत्रण के लिए जनवरी–फरवरी माह में 8–10 फिरोमेन ट्रेप प्रति हैक्टेयर में लगायें। जब प्रति ट्रेप में 5–7 पतंगें आने लग जाए तो कीटनाशी का छिड़काव कर देवें।

3. फली छेदक कीट नियंत्रण के लिए प्रोफेनोफोस 50 ई.सी. 1.0

लीटर, लेम्बडा साइहलोथ्रिन 25 ई.सी. 500 मिली. या इण्डोक्साकार्ब 14.5 एस. सी. 500 मिली. प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें ।

4. जैव आधारित कीटनाशीयों में ईमामैक्टिन बैन्जोएट 5 एस.जी. 0. 5 ग्राम प्रति लीटर पानी या स्पाईनोसेड 45 एस. सी 0.33 मिली. प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव कर सकतें हैं।

5. समन्वित कीट नियंत्रण के लिए न्यूक्लियर पोलीहाईड्रोसिस वायरस 250 एल. ई. प्रति हैक्टेर दर से छिड़काव करें।

बीमारियां

झुलसा रोग– झुलसा रोग से ग्रसित पौधों के तना, पतियों व फलियों पर भूरे रंग के धब्बे बन जातें है और रोग बढ़ने पर पौधे सूखने लग जाते व डंठल नीचे गिरने लग जाते है। रोग के प्रारम्भिक लक्षण दिखाई देने पर क्लोरोथेलिन 75 घुलनशील चूर्ण की 1 ग्राम मात्रा प्रति लीटर पानी घोलकर छिड़काव करें। मौसम में नमी लगातार बनी रहें तो इस रसायन का छिड़काव 10–12 दिन के अन्तराल से दोबारा कर देवें।

उखटा (विल्ट) रोग– इस रोग से ग्रसित पौधों की पतियां खेत में पर्याप्त नमी होने के बाद भी पीली पड़नी शुरू हो जाती है और धीरे–धीरे पूरा पौधा सूख जाता है। इस रोग की रोकथाम के लिए उचित फसल चक्र अपनायें तथा रोगरोधी किस्मों का चयन कर, प्रति किलो बीज को 4 ग्राम टाइकोड्रर्मा विरिडी या थायरम 2 ग्राम और कार्बेण्डाजिम 1 ग्राम यानि दोनों रसायन कुल 3 ग्राम से उपचारित करकें बुवाई करें।

तना विगलन–इस रोग का प्रभाव से पौधे में जमीन के पास तने पर पड़ता हैं। और मुख्य तना जमीन के पास से खराब हो जाता है। फसल को इस रोग से बचाने के लिए ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई, उचित फसलचक्र व बिजाई 25 अक्टुबर से 10 नवम्बर के बीच कर देनी चाहिए।

ग्रे मोल्ड– इस रोग से ग्रसित पौधों की पतियों पर छोटे–छोटे आकार के जल आशिक्त धब्बे बन जाते हैं और मौसम में अधिक आर्द्रता व बादलों के छाये रहने से रोग तेज गति से फसल पर आक्रमण करता है। फसल को इस रोग से बचाने के लिए ग्रीष्मकालीन गहरी जूताई, रोग रोधी किस्मों का चुनाव करें, उचित फसलचक्र, रोग से प्रभावित बीजों की बिजाई करने से बचें व रोग से ग्रसित पौधों के अवशेष भागों को जला देवें।

कटाई– जब फसल पककर तैयार हो जाए और दानों में नमी 15 प्रतिशत हो तो फसल को काट लेना चाहिए। अगर फसल को समय पर नहीं काटा जाता है, तो फलियों से दाने झड़ने लग जाते हैं। फसल को काट कर 2–3 दिन धूप में सुखाकर थ्रेसर या बैल, ट्रैक्टर से गहाई करके दाने निकाल लेनें चाहिए।

भण्डारण– दानो को 2–3 दिन अच्छी धूप में सुखाकर, दानों में नमी 9–10 प्रतिशत हो जाए तो दानों को जूट के थैलों में भर कर भण्डारित करें।

उपज– उपरोक्त कृषि विधियों को अपनाकर असिंचित क्षेत्रों में औसत 8–12 क्विंटल व सिंचित क्षेत्रों में औसत 15–20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर चने की पैदावार ली जा सकती है।

जो सम्मान, संस्कृति और अपनापन हिंदी बोलने से आता हैं,
वह अंग्रेजी में दूर–दूर तक दिखाई नहीं देता हैं।
–अज्ञात

उन्नत तकनीकों द्वारा अमरूद से उच्च गुणवत्तायुक्त उत्पादन एवं अधिक आमदनी प्राप्त करें

नरेश बाबू, तरूण, सुभाष एवं अरविंद कुमार
भा.कृ.अनु.प.– केंद्रीय उपोष्ण बगावानी संस्थान, लखनऊ–, उत्तर प्रदेश
संवादी लेकख का ई–मेल : Naresh.Babu@icar.gov.in

अमरूद भारत का लोकप्रिय फल है। क्षेत्रफल एवं उत्पादन की दृष्टि से देश में उगाए जाने वाले फलों में अमरूद का चौथा स्थान है। यह विटामिन ''सी'' का मुख्य स्त्रोत है। इसको असिंचित एवं सिंचित क्षेत्रों में सभी प्रकार की भूमि में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। अमरूद की खेती 4.5 से 9.0 पी.एच मान वाली मिट्टी में की जा सकती है परंन्तु 7.5 पी.एच मान से ऊपर वाली मृदा में उकठा रोग के प्रकोप की संभावना अधिक हेाती है। अमरूद उष्ण तथा उपोष्ण जलवायु में सफलता पूर्वक उगाया जा सकता है। परंन्तु अधिक वर्षा वाले क्षेत्र अमरूद की खेती के लिए उपयुक्त नही होते है। यह सूखे को भी भली–भाँति सहन कर लेता है। यह पाया गया कि पारंपरिक विधि से अमरूद की पैदावार 15–20 टन प्रति हैक्टर होती है लेकिन उन्नत तकनीक अपनाकर इसकी पैदावार 30–35 टन प्रति हैक्टर तक ले सकते हैं यद्वपि सघन बागवानी अपनाकर अमरूद की पैदावार 50–60 टन प्रति हैक्टर तक बढ़ा सकते हैं।

लखनऊ में पोषक तत्वों के तहत गुणवत्ता वाले श्वेता फलों का उत्पादन

भूमि का चयन

अमरूद एक ऐसा फल है, जिसकी बागवानी कम उपजाऊ और लवणीय परिस्थितियों में भी बहुत कम देख–भाल द्वारा आसानी से की जा सकती है। यद्यपि यह 4.5 से 9.5 पी एच मान वाली मिट्टी में पैदा किया जा सकता हैद्य परन्तु इसकी सबसे अच्छी बागवानी दोमट मिट्टी में की जाती है। जिसका पी एच मान 5 से 7 के मध्य होता है। उत्तर प्रदेश की रेतीली दोमट मिट्टी में संतोषजनक अमरूद का उत्पादन होते है।

उन्नत किस्में

पिछले कुछ समय से अमरूद की इलाहाबाद सफेदा और लखनऊ– 49 (सरदार) किस्में व्यावसायिक तौर पर काफी प्रचलन में रही है। इसके अतिरिक्त अर्का मृदुला, अर्का अमूल्या, अर्का किरण, नवीन किस्में है, इन किस्मों के पौधे भा. कृ. अनु. प. –राष्ट्रीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बैंगलोर एवं ललित व श्वेता केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ से प्राप्त कर सकते है।

1.इलाहाबाद सफेदा– इस किस्म के पौधे सीधे बढ़ने वाले एवं मध्यम ऊँचाई वाले होते हैं और पत्तिया नुकीली होती है। फल का आकार मध्यम, गोलाकार, चमकदार सतह, सफेद गूदे वाले तथा मीठे एवं औसत वजन 180 से 200 ग्राम होता है। बीज बड़े एवं कड़े होते हैं। इस किस्म की भंडारण क्षमता अच्छी होती है। उपज प्रति वृक्ष 40 से 50 किलोग्राम प्राप्त होती है।

2. लखनऊ– 49 इस किस्म के पेड़ मध्यम ऊँचाई के, फलने वाले, पत्तियाँ चौड़ी तथा अधिक शाखाओं वाले होते हैं। फल मध्यम से बडे, गोल, अंडाकार, खुरदुरी सतह वाले एवं पीले रंग के होते हैं। गूदा मूलायम, सफेद तथा स्वाद खटास लिये हुये मीठा होता है। इसकी गंध व स्वाद उत्तम पाया गया है। इसकी भंडारण क्षमता

अन्य जातियों की तुलना में अच्छी होती है, और इसमें उकठा रोग का प्रकोप अपेक्षाकृत कम होता है। इस किस्म के पौधों से 50 से 60 किलोग्राम फल प्रति वृक्ष प्राप्त होते हैं।

3. श्वेता– केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान लखनऊ द्वारा विकसित की गयी यह किस्म व्यावसायिक बागवानी के लिए उपयुक्त है। इसके फल बड़े, गोल, श्वेत एवं आभायुक्त पीले होते हैं। फल कम बीज वाले, मुलायम तथा सफेद गूदायुक्त होते हैं। इसके फल सुस्वादयुक्त मीठे एवं विटामिन–सी (300 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम) वाले होते हैं। यह अच्छी उपज वाली किस्म है।

4. ललित– फल मध्यम आकार एवं केशरनुमा आकर्षक पीले रंग के होते हैं। गूदा गुलाबी रंग का होता है। जिसके कारण यह किस्म संरक्षित पदार्थों को बनाने हेतु उपयुक्त होती है। यह किस्म इलाहाबाद सफेदा की अपेक्षा 24 प्रतिशत तक अधिक उत्पादन देती है। फल का वजन 250 से 300 ग्राम तक होता है। यह किस्म सी.आई.एस.एच. लखनऊ द्वारा विकसित की गई है।

5. अर्का–मृदुला– यह किस्म इलाहाबाद सफेदा से पौधे चुनाव विधि के द्वारा विकसित की गई है। फल बिकने, मध्यम आकार, मुलायम बीज, गूदा सफेद एवं मीठा होता है। इस किस्म में प्रचुर मात्रा में विटामिन–सी पाई जाती है। फलों की भंडारण क्षमता अच्छी होती है।

6.अर्का अमूल्या– यह जाति बीज रहित एंव इलाहाबाद सफेदा के संकरण से तैयार की गई है। इसके वृक्ष मध्यम आकार के एवं अधिक उत्पादन देने वाले होते हैं। फल मध्यम आकार 180 से 200 ग्राम, सफेद रंग, गूदा मीठा, मुलायम एवं बीज छोटे होते हैं। फलों की भंडारण क्षमता अच्छी होती है।

लखनऊ में जल प्रबंधन के तहत अमरूद उत्पादन में नमी संरक्षण

सघन बागवानी

अमरूद की सघन बागवानी आजकल अधिक प्रचलित हो रही है। इस विधि में पौधों को लगभग 2 X 1 मी0 की दूरी पर लगाया जाता है। इस प्रकार एक हैक्टेयर भूमि में लगभग 5000 पौधे लगाये जा सकते हैं। समय समय पर कटाई–छटाई करके एवं वृद्धि नियंत्रकों का प्रयोग करके पौधों का आकार छोटा रखें इस प्रकार की बागवानी से करीब 40- 50 टन उत्पादन प्रति हैक्टेयर लिया जा सकता है जबकि पारम्परिक विधि से लगाये गयें बगीचे से लगभग 15-.20 टन प्रति हैक्टेयर उत्पादन होता है।

मल्चिंग / बिछावन

कटाई–छटाई: प्रारंभिक अवस्था में कटाई–छटाई का मुख्य कार्य पौधों को आकार देना होता है। पौधो को समुचित आकार देने के लिये सबसे पहले उन्हें करीब 90 सेमी0 तक सीधा बढ़ने दें फिर इस ऊंचाई के बाद 15.20 सेमी के अंतर पर 3–4 शाखायें चुन लें इसके बाद मुख्य तने के शीर्ष एवं किनारे की शाखाओं की कटाई एवं छटाई कर दें जिससे पेड़ का आकार नियंत्रित रहे। बड़े पेड़ों की कटाई छटाई का सूखी तथा रोगग्रस्त शाखाओं को अलग कर दें। प्रायः देखा गया है कि पौधों को पांरम्परिक तरीकें से (लगभग पौधों की दूरी 5 X 5 मीटर) लगाने पर 5–6 वर्ष के बाद पेड़ों की डालियॉ एक दूसरे को छूने लगती है। इससे बगीचे में कृषि कार्य करने में कठिनाई आती है। पेड़ो की बीच में छाया रहती है तथा हवा एवं धूप ठीक से लग नही पाती। परिणाम स्वरूप अमरूद के वृक्षों में विभिन्न प्रकार के कीड़े एवं बीमारियां लग जाती है। इससे फल उत्पादन काफी कम हो जाता है।

अन्तरवर्तीय फसलें: प्रारंभ के दो– तीन वर्षो में बगीचे में रिक्त स्थानों में फ्रेंचबीन, लोबिया, मूंग, भिण्डी इत्यादि की फसलें सफलतापूर्वक उगा कर अतिरिक्त आय प्राप्त कर सकते हैं। भुवनेश्वर में एक प्रयोग मे देखा गया कि लोबिया की उत्कल मनिका किस्म लेने से अच्छे परिणाम प्राप्त हुए। इसमें लगभग 8–10 क्विन्टल हरी फलियॉ प्राप्त हुई एवं बचे हुए भाग को जुताई करके खेंत में मिला दिया गया इससें बगीचे की उर्वरा शक्ति में

लखनऊ में पोषक तत्वों और जल प्रबंधन के तहत गुणवत्तापूर्ण ललित फल उत्पादन

लखनऊ में किसानों को बेहतर अमरूद उत्पादन तकनीक के लिए प्रशिक्षण

वृद्धि देखी गई तथा अगले वर्ष फल उत्पादन में लगभग 10 प्रतिशत की वृद्धि देखी गई।

खाद देने का समय व विधिः अमरूद में पोषक तत्व लेने वाली जड़े तने के आस–पास एवं करीब 30 सेमी. की गहराई में पायी जाती है। इसलिये पेड़ के फैलाव में 15– 20 सेमीं की गहराई में नालियॉ बना कर निम्नलिखित तालिका के अनुसार खाद डालें। गोबर की सड़ी हुई खाद, सुपर फास्फेट एवं पोटाश की पूरी मात्रा तथा नत्रजन की आधी मात्रा जून–जूलाई में वर्षा होने पर तथा शेष नत्रजन की आधी मात्रा सितम्बर– अक्टूबर में वर्षा समाप्त होने से पहले दें। दस वर्ष एवं ऊपर के पौधों में लगभग 50 किग्रा. गोबर की सड़ी हुई खाद, 300 ग्रा0 नत्रजन, 1000 ग्राम सुपर फॉसफेट तथा 400 ग्राम म्युरेट ऑफ पोटाश का प्रयोग करना चाहिए।

अमरूद के पुराने एवं अनुत्पादन वृक्षों का जीर्णोद्धार करेः जीर्णोद्धार तकनीक को मुख्यतः उन बागो में अपनाना चाहियें जिनमें उत्पादन न्यूनतम स्तर पर पहुॅच गया है। इन बागों के वृक्षों की अत्यधिक बढवार के फलस्वरूप पूर्ण अच्छादन हो जाता है। इस कारण निचली शाखाओं पर सूर्य का प्रकाश की प्रवष्टि न होने के कारण प्रकाश संश्लेषण की किया अच्छे ढंग से नही हो पाती है। इससे पेड़ के निचले स्तर पर कल्ले विकसित नही होते और कीट एंव रोगों का अत्यधिक प्रकोप हो जाता है, जिसकें फल स्वरूप उत्पादन में कमी हो जाती है। इन वृक्षों से अच्छी एवं व्यावसायिक गुणवत्ता युक्त उत्पादन लेने के लिये पेड़ो को जमीन से 1. 0 –1.5 मी0 की ऊॅचाई से धारदार आरी की सहायता से

तालिका 1. अमरूद के पौधों के लिए खाद एवं उर्वरक की मात्रा

पौधों की आयु (वर्ष में)	गोबर की खाद (कि.ग्रा.)	यूरिया(46%N) (ग्रा.)	सुपर फॉस्फेट, ($16\%P_2O_5$)(ग्रा.)	मुरिट ऑफ पोटाश ($60\%K_2O$) (ग्रा.)
1-3	10-20	40-120	100-300	40-120
4-6	25-40	150-200	400-600	150-200
7-10	40-50	250-300	700-1000	250-300
10वर्ष एवं ऊपर	50	300	1000	400

कटाई की जाती है। कटाई का अनुकूल समय मई–जून या दिसम्बर–फरवरी का महीना होता है। काटने के समय यह सावधानी रखनी चाहिये कि शाखायें न फट जायें इसलिए शाखाओं को पहले नीचे की तरफ से काटना चाहियें। इसके बाद कटे भाग पर कॉपर आक्सी क्लोराइड (5 प्रतिशत) का लेप लगाना चाहियें। कटाई के उपरान्त पौधों में थालें बनाकर 50 किग्रा. गोबर की सड़ी हुई खाद डाल कर सिंचाई की जाती है। कटाई के 4–5 महीने बाद नये कल्ले आने लगतें है। इन कल्लों में 4–5 स्वस्थ कल्लों को छोड़कर बाकी सभी को तोड़ देना चाहियें जब इन स्वस्थ कल्लों की लम्बाई 40.50 सेमी हो जायें तब इनकी लम्बाई का 50 प्रतिशत भाग काटा जाता है। जिससे काटे गये स्थान के नीचे नयें कल्ले निकल आतें है। द्वितीय कटाई के फलस्वरूप विकसित कल्ले फलतः कलिकाओं के विकास में सहायक होते हैं।

व्यापारिक एवं अधिक से अधिक शुद्ध लाभ के लियें शरद ऋतु में फल लेने चाहिए। इसकें लिये मई माह में 50 प्रतिशत कल्लों की पुनः कटाई–छंटाई करनी चाहियें। इस प्रकार से नये कल्लों का सृजन होने से शीत ऋतु में भरपूर फसल प्राप्त करने की अपार सम्भावनाएं होती हैं ।

सिंचाई प्रबंधन : अमरूद के बागों में विशेषकर जीर्णोद्धार वृक्षों में आवश्यकतानुसार सिंचाई का विशेष महत्व है अन्यथा नये कल्ले सूख सकते हैं। गर्मियों में 10–15 दिनों तथा

लखनऊ में प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन के तहत बेहतर अमरूद फल उत्पादन

सर्दियों में एक माह के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहियें। प्रयोगों द्वारा पाया गया है कि सिंचाई के विभिन्न तरीकों में टपक सिंचाई द्वारा अच्छे परिणाम मिले हैं ।

इस विधि द्वारा सिंचाई करने से फलों की संख्या, उत्पादन एवं फलों की गुणवत्ता में गुणात्मक वृद्धि पायी गयी है। टपक सिंचाई करने से पौधे की ऊचाई एवं कैनोपी का फैलाव, तनें की मोटाई तथा सक्रिय जड़ों का विकास अच्छा होता है तथा खरपतवार नियंत्रण में सहायता मिलती है। वृक्षों की कटाई–छटाई के उपरान्त मिली पत्तियों एंव कोमल शाखाओं को विछावन (मल्चिंग) करने से विशेषकर गर्मियों में लम्बें समय तक नमी बनी रहती है तथा सिंचाई की आवश्यकता कम होती है।

फलन उपचार (बहार ट्रीटमेंट)

अमरूद में एक वर्ष में तीन फसलें ली जा सकती है लेकिन आमतौर पर वर्ष में एक फसल लेने का सुझाव दिया जाता है। फल तोड़ने के मौसम के अनुसार इसे तीन मौसमों, बरसात, जाड़ा, एव बंसत में विभाजित किया जाता है। स्थान एवं फसल के बाजार भाव को ध्यान में रखतें हुए इनमें से कोई एक फसल ही लें । उत्तरी भारत में अमरूद में फूल तीन मौसम में आता है। प्रायः देखा गया है कि वर्षा ऋतु के फूलों से फल ठंड में तथा शरद ऋतु के फूलों से फल बसंत में आते है। वर्षा कालीन फसल के फल उत्तम गुण वाले नही होते है तथा कीट एवं रोगों का प्रकोप भी अधिक होता है। जाड़े की फसल के फल उत्तम गुणवत्तायुक्त होते है तथा फलों में विटामिन–सी की मात्रा सबसे अधिक पाई जाती है। वर्षाकालीन फलों में विटामिन, "सी" की मात्रा ठंड के फलों की लगभग आधी होती है।

अतः ठंड की फसल लेने की सिफारिश की जाती है क्योंकि इस ऋतु में पैदा होने वाले फल उच्च गुणवत्तायुक्त होने के साथ बाजार में अच्छा मूल्य मिलता है।

ठंड की फसल प्राप्त करने हेतु निम्नलिखित उपाय कर सकते हैं।

1. अप्रैल से जून तक पौधों की सिंचाई न करें यह। क्रिया 4 वर्ष से

अधिक उम्र के पौधों में ही करें जिससे बसंत ऋतु में आये फूल गिर जाते हैं तथा वर्षा ऋतु में फूल काफी संख्या में आते हैं।

2. यूरिया का 5–10 प्रतिशत घोल का छिड़काव अप्रैल माह में करनें से बंसत ऋतु में आये फूल झड़ जाते हैं तथा बरसात में फूल अच्छे आते हैं।

3. बंसत ऋतु में आयें फूलों को गिराने के लियें 100–.200 पी.पी. एम नेफ्थलीन एसटिक एसिड के घोल का छिड़काव 20 दिन के अंतराल पर दो बार करें।

कीट नियंत्रणः अमरूद के पेड़ों में कई प्रकार के कीड़े हानि पहुचातें है। लेकिन सबसे अधिक नुकसान छाल भक्षक इल्ली के द्वारा होता है। यदि पुराने वृक्षों को अनदेखा छोड़ दिया जायें तब इसका प्रकोप बहुत ही भंयकर होता है और लगभग सभी वृक्षों को उनकी छाल खाकर नुकसान पहुंचाता है। इस कीट की इल्ली तने की छाल को खाती है तथा तनें मे छेद कर देती है। छाल खाने के बाद एक प्रकार का काला अवशेष छोडती है जो कि प्रभावित हिस्सों पर चिपका रहता है। इसकी रोकथाम के लियें अमरूद के बगीचें को साफ सुथरा रखें, प्रभावित तनें की कटाई छंटाई करें। उसके बाद छिद्रों में मिट्टी का तेल या पेट्रोल में भीगी रूई या कार्बोफुरोन 3जी की 6ग्रा. मात्रा प्रति छेद में डाल कर ऊपर से छेद कें मुंह को गीली मिट्टी से बंद कर दें। अधिक प्रकोप की स्थिति में डाईक्लोरवास 76 ई.सी. के 0.05 प्रतिशत घोल को छिद्रों के अन्दर प्रवाहित कर छेद को बन्द कर दें। यदि यह संभव न हों तो मिथाइल पेराथ्यान का 0.1 प्रतिशत घोल बनाकर प्रभावित तनें पर 15 दिन कें अन्तराल पर दो बार छिड़काव करना चाहिए।

लखनऊ में अमरूद के बाग में अमरूद का छाल खाने वाला कीट

उखटा रोग एवं नियंत्रणः यह अमरूद का सबसे बिनाशकारी रोग है। इस रोग के लक्षण सर्वप्रथम वर्षा में दिखाई देते हैं। रोगी पेड़ों की पत्तियॉ भूरे रंग की हो जाती है एवं पेड़ मुरझा जाता है। प्रभावित पेड़ो की डालियॉ एक–एक करकें सूखने लगती है। इस बीमारी को भारत में सबसे पहले इलाहाबाद में 1935 में देखा गया था। उत्तर प्रदेश के 12 जिलों में हर साल इससे 5.15 प्रतिशत तक नुकसान होता है। पश्चिम बंगाल में 80 प्रतिशत तक नुकसान पाया गया है। अमरूद के बाग में काफी दिनों तक पानी भरा रहनें के कारण साथ ही समय पर नियंत्रण न करनें के कारण भी यह रोग अधिक होता है। यहः रोग उन क्षेत्रों में अधिक तीव्र गति से फैलता है जहां की मृदा का पी.एच. मान 7.5 से अधिक होता है। मृदा की नमी भी रोग के फैलने में सहायक होती है। मृदा आर्द्रता के 60–80 प्रतिशत होने पर रोग का प्रकोप बढ़ जाता है। यह रोग लाल लैटराइट एवं एल्यूवियल भूमि में तीव्रता से फैलता है। इस रोग के नियंत्रण हेतु रोगी पौधों को निकालकर जला दें तथा रोगी पौधों को निकालने के बाद मिट्टी को दो ग्राम बैबिस्टीन प्रति लीटर पानी में घोल कर 20 लीटर प्रति गड्ढा उपचारित करें। भूमि में चूना, जिप्सम 1.80 कि.ग्रा. प्रति पेड़ तथा नीम की खली करीब 5–6 किग्रा प्रति पौधा मिलाकर भी रोग के प्रकोप कों कम करनें में सहायता मिलती है। अमरूद की लखनऊ–49 किस्म में यह रोग कम लगता है। यह भी देखा गया कि गेंदा की फसल को भी इसकें साथ उगाकर रोग का प्रकोप कम होता है।

जैविक खेती का समगतिशील खेती/टिकाऊ खेती/ सस्टेनेबल एग्रीकल्चर में महत्व एवं प्रोत्साहन

सतीश कुमार सिंह, मनीष बी. पटेल, कानुभाई एच. पटेल एवं पिनाकिन के. परमार
मुख्य मक्का अनुसंधान केन्द्र, आनंद कृषि विश्वविद्यलय, गोधरा
संवादी लेखक का ई–मेलः singh.sk30@gmail.com

पिछले कुछ दशकों में विश्व बहुत तेजी से सामाजिक, राजनितिक, आर्थिक, प्रौद्योगिकी एवं सस्य पर्यावरणीय स्तर पर बदला है। साथ ही साथ बढ़ती हुई मानवीय भोजन, वस्त्र, मकान आदि की पूर्ति के लिए भूमि, जल एवं पर्यावरण का भरपूर शोषण हुआ जिस कारण से सस्टेनेबल एग्रीकल्चर की आवश्यकता महसूस हुई अर्थात मानव की बदलती आवश्यकताओं की आपूर्ति हेतु कृषि में लगने वाले साधनों का इस प्रकार सफल व्यवस्थित उपयोग किया जाना ताकि प्राकृतिक संसाधनों का ह्रास न हो और पर्यावरण भी सुरक्षित रहे। इसे ही सस्टेनेबल एग्रीकल्चर या समगतिशील खेती या टिकाऊ खेती कहतें है।

बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ हमारी विवशता केवल कृषि उत्पादन का स्थायित्व ही नही बल्कि इनका समगतिशील/टिकाऊ/सस्टेनेबल तरीके से उत्पादन बढ़ाना है। अतः वैज्ञानिकों ने अनुभव किया कि हरित क्रांति में अधिक संश्लेषित निवेशो (रासायनिक उर्वरक, कीटनाशी, कवकनाशी एवं खरपतवारनाशीयों, आदि) से अधिक उत्पादन प्राप्त किया गया। खेती में उर्वरकों, कीटनाशीयों, कवकनाशीयों, खरपतवारनाशीयों अर्थात रसायनों के अत्यधिक प्रयोग से भूमि की दशा बहुत खराब हुई है। जिससे भूमि के लाभदायक कीट, केंचुए, जीवाणुओं की संख्या तथा पोषक तत्वों में बहुत कमी आई है। इस प्रकार हमें प्राकृतिक संतुलन के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए भरसक प्रयास करने होगें। अतः जीवांश खादों (जैव उर्वरक, गोबर की खाद, कम्पोस्ट, खली, हरी खाद आदि) के प्रयोग से इसे रोका जा सकता है तथा उचित फसल चक्र, अन्तरा सस्यन, सहचरी सस्यन एवं उर्वरकों का संतुलित उपयोग किया जाए। इसके साथ ही भू–जल का दोहन, पर्यावरण असंतुलन तथा जंगलों का काटा जाना कम किया जाये।

जैविक खेती का परिदृश्य

अकार्बनिक उर्वरकों एवं रासायनिक व्याधिनाशीयों की खोज से पहले भारतीय किसान मुख्यतः जैविक किसान थें। इन संश्लेषित उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग से वातावरण तथा मानव स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा। बाद में, इस पुरानी जैविक कृषि क्रिया की आवश्यकता को न केवल असंदूषित खाद्य पदार्थो के उत्पादन में बल्कि भूमि को स्वस्थ एवं कृषि को टिकाऊ बनाये रखने में महसूस की गयी। हाल ही में यह एक प्रमुख व्यवसाय बन चुका है जहाँ उपभोक्ताओं द्वारा बिना रसायनों से उत्पादित जैविक उत्पाद की माँग में वृद्वि हुई है। जैविक खेती को सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि हमें इसे विकसित तथा किसान को इससे जुड़े सभी तथ्यों से अवगत कराना होगा ताकि हम इस पारिस्थितिक मित्र प्रौद्योगिकी से कृषि उत्पादनों को बढ़ा एवं कायम रख सकें।

जैविक खाद्य उत्पाद मुख्यतः फल एवं सब्जियॉ आदि विदेशी बाजार जैसे यू0एस0ए0, यूरोप और जापान में धीमी गति से सफल हो रहे है। रसायनों का हमारे वातावरण एवं मानव स्वास्थ्य पर पड़ने वाले कुप्रभाव की जानकारी के साथ जैविक खेती का क्षेत्रफल भी धीरे–धीरे बढ़ रहा है।

वर्ष 2000 में विश्व व्यापार में जैविक उत्पादों का मूल्य 17–5 बिलियन यू0,स0 डॉलर ऑका गया था, जो वर्ष 2019 में बढ़कर 110.25 बिलियन यू0,स0 डॉलर हो गया है। जो पिछले 18 वर्षो मे बढ़कर 5 गुना हो गया है। जिसमें 39–7, 9–5 और 6–1 बिलियन यू0,स0 डॉलर क्रमशः अमेरिका, जर्मनी तथा फ्रांस का है। यह आंकड़े संकेत देते है कि जैविक उत्पादों का बाजार मुख्यतः यूरोपीय देशों, अमेरिमा तथा जर्मनी में वास्तविक रूप से वृद्धि हुई है। यूरोपीय देशों में जर्मनी जैविक उत्पादन में अग्रणीय है तथा उसके बाद इटली एवं फ्रांस है। विश्व स्तर पर अभी जैविक उत्पादों का कृषि उत्पादन में हिस्सा 1.1 से 3–0 प्रतिशत तक है। जबकि विश्व जैविक कृषि रिपोर्ट 2018 के अनुसार, भारत मे दुनिया के कुल जैविक उत्पादकों का 30% भागीदारी है, लेकिन 57.8 मिलियन हक्टेयर के कुल जैविक खेती क्षेत्र का सिर्फ 2.59% (1.5 मिलियन हक्टेयर) ही है ।

भारत में जैविक खेती

भारत में 60 प्रतिशत से अधिक कृषि योग्य भूमि पर पारम्परिक विधियों द्वारा खेती की जाती है जहॉ संश्लेषित रासायनों का प्रयोग नही किया जाता हैं। यद्यपि अभी तक इस पद्धति के अर्न्तगत उत्पादित उत्पाद को जैविक उत्पाद की भाँति परिभाषित नही किया गया है जबकि ये सभी तरह से शुद्धजैविक उत्पाद है। इनकी इन क्षेत्रों में उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि अधिक उत्पादन के लिए इनका उत्पाद बढ़ाये। दुर्भाग्य से, ये किसान अपने जीवनयापन के लिए इतने संधर्षशील है, जिससे उनके पास इतना समय नही है कि वे सोच सके कि जैविक खेती क्या है और क्या नही?

बिचौलिए इन जैविक उत्पादों को खरीदकर इनका विपणन रसायनों द्वारा उत्पादित उत्पाद के साथ करते है। हमारे देश के उपभोक्ताओं को जैविक उत्पाद के बारे में जानकारी कम होने के कारण रसायनो द्वारा उत्पादित उत्पाद देखने में स्वस्थ एवं आकर्षक लगते है तथा अपेक्षाकृत अच्छे न दिखने वाले जैविक उत्पादों से उच्च कीमतों पर बिकतें है। जबकि इनमें रासायनिक अवशेषों का स्तर अधिक होता है। जैविक उत्पादकों के लिए न ही छूट एवं न ही जैविक खेती के प्रोत्साहन पर बहुत ज्यादा ध्यान दिया जा रहा है।

हमारे देश में बहुत से ऐसे क्षेत्र है। जहाँ फसल अवशेषों, खादों, फलीदार फसलो और नीम का प्रयोग फसलों को उगानें के लिए करते है और वे फसल–चक्र एवं अन्तरा सस्यन पर विश्वास तथा उनको अपनाते है। किसानो की ये क्रियाये जैविक खेती के अन्तर्गत आती है अतः अब आवश्यक हो गया है कि इन जैविक क्रियाओं द्वारा उत्पादित उत्पादों के वर्गीकरण पर भी ध्यान देना होगा और यदि ऐसा हो गया तो गरीब किसानो को उनके जैविक उत्पादों के लिए अधिक मूल्य मिल सकेगा तथा यह गरीबी को कम करने एवं ग्रामीणों के रहन–सहन के स्तर को बढ़ाने में मील का पत्थर साबित होगा। अतः हम इस तरह के घरेलू एवं निर्यात बाजार की व्यवस्था करके इन जैविक उत्पादों से अधिक लाभ प्राप्त कर पायेगें।

जैविक खेती की अभिधारण

हमारे देश में जैविक खेती कोई नई पद्धति नही है, बल्कि यह प्राचीनकाल से ही होती आ रही है। जैविक खेती प्रक्षेत्र प्रणाली की एक विधि है। जिसमें हमारा उद्देश्य यह होता है कि फसलों को इस तरह से उगाये कि मृदा सजीव तथा अच्छी दशा में रहें। जिसमें कार्बनिक पदार्थों (फसल, पशु, प्रक्षेत्र, कूड़ा–करकट और जलीय बेकार पदार्थो) के प्रयोग तथा अन्य जैविक पदार्थो जैसें हरी खाद, लाभदायक सूक्ष्मजीवों (जैव उर्वरक) द्वारा जो पौधे की पोषक तत्वों को मृदा मे मुक्त कर देते है और समगतिशील या स्स्टेनेबल उत्पादन को बढ़ातें है तथा साथ ही साथ पारिस्थितिक मित्र एवं प्रदूषण मुक्त वातावरण प्रदान करते है।

यूनाइटेड स्टेट डवलपमेंट एग्रीकल्चर (यू0एस0डी0ए0) के अनुसार, ''जैविक खेती एक प्रणाली है जो संश्लेषित निवेश (जैसे उर्वरक, कीटनाशी, कवकनाशी, शाकनाशी, हार्मोन आदि) के प्रयोग को अत्यधिक बहिष्कार अथवा टालना है तथा फसल चक्र, अन्तरासस्यन, सहचरी सस्यन फसल अवशेष, कार्बनिक खाद, गोबर की खाद, कम्पोस्ट, हरी खाद, जैव उर्वरक एवं पोषक तत्वों को गतिशील और पादप सुरक्षा के लिए जीवीय पद्धति या एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन का प्रयोग करना है।''

विश्व खाद्य संगठन (एफ0ए0ओ0) ने जैविक खेती पर सलाह दिया कि ''जैविक कृषि एक अच्छी उत्पादन प्रबन्धन प्रणाली है जो कृषि पारिस्थितिक स्वास्थ्य को प्रोत्साहित तथा बढ़ाती है जिसके अन्तगर्त जैव विभिन्ता, जीवीय जीवन चक्रों एवं मृदा जीवीय सक्रियता आते है और इनकी पूर्ति अच्छी सस्य क्रियाओं, जीवीय तथा यांत्रिक विधियों के प्रयोग और सभी संश्लेषित निवेशों का बहिष्करण करना है।''

जैविक खेती आवश्यक क्यों?

- बढ़ती जनसंख्या के लिए कृषि उत्पादन का स्थायित्व करना।
- जीवन की सुरक्षा के लिए प्रकृति को संतुलन बनाते है तथा पारिस्थितिक मित्र होते है।
- कृषि रसायन जीवाश्म से बनाये जाते है जिनकी प्रकृति में उपलब्धता बहुत कम है।
- जैविक खेती के उत्पाद से हम भविष्य में विदेशी विनिमय भी प्राप्त कर सकते हैं।
- उर्वरकों के प्रयोग से पौधे सरस हो जाते है जिससे उन पर कीटों एवं रोगों का प्रकोप अधिक हो जाता हैं।
- पादप खाध पदार्थो में व्याधिनाशकों का विषाक्तता अवशेष होने के कारण।
- विषाक्त्ता अवशेष का प्रभाव पशुओं के उत्पाद जैसे दूध, दूध

उत्पाद, मछली, मांस एवं अण्डों में होने के कारण।

- पोषण सुरक्षा के लिए आवश्यक है क्योंकि जैविक खेती से प्राप्त उत्पाद में पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में होते हैं।

जैविक खेती के अवयव

मुख्यतः जैविक खेती के अवयवों को 5 वर्गो में विभाजित कर सकते है।

(1) हरी खाद

(2) फसल चक्र, अन्तरा सस्यन, सहचरी सस्यन

(3) जीवांश खाद (गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, आदि)

(4) जैव व्याधिमारी/एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन

(5) जैव उर्वरक

जैविक खेती के मूलभूत सिद्धान्त

जैविक खेती के अन्तर्गत निम्नलिखित 5 सिद्धान्तों आतें हैं।

(1) पारम्परिक प्रबन्धन से जैविक प्रबन्धन में भूमि का परिवर्तन

(2) फसल उत्पादन की प्रणाली को इस तरह से व्यवस्थित करना ताकि जैव विभिन्नता एवं समगतिशीलता प्रणाली निश्चित रहें।

(3) फसल उत्पादन के लिए एकान्तरित स्त्रोतों के पोषक तत्वों का प्रयोग करना जैसे फसल चक्र, अवशेष प्रबन्धन, जीवांश खादों एवं जीवीय निवेशों आदि।

(4) खरपतवारों, रोगों एवं कीटों का प्रबन्धन अच्छी प्रबन्धन क्रियाओं द्वारा करना जैसे भौतिक एवं कृषि क्रियाओं तथा जैविक पद्धति आदि।

(5) जैविक अभिधारणा के साथ पशु समुदाय की रखरखाव और उन्हें इस पद्वति का अभिन्न अंग बनाये रखना।

जैविक खेती में फसल उत्पादन की रूपरेखा

- कार्बनिक पदार्थो का पुनः चक्रीयकरण करना।
- उचित फसल चक्र, अन्तरा सस्यन, मिश्रित एवं बहु–फसली खेती का प्रयोग।
- फसलों में हरी खाद का प्रयोग।
- जैव उर्वरक का प्रयोग
- मृदा को खरपतवारों द्वारा अच्छादित करना ताकि मृदा नमी, लाभदायक सूक्ष्मजीव आदि जीवित रहें।
- एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन
- सिंचाई जल का विवेकपूर्ण उपयोग
- अच्छी तरह से सड़ी हुई जीवांश खादों का प्रयोग

जैविक खेती के लाभ

1. पर्यावरण को स्वच्छ बनाये रखने में सहायक है जिससे प्रदूशण का स्तर कम होता है।
2. उत्पाद में विषक्तता अवषेश के स्तर को कम करतें है जिससे मनुष्यों एवं जानवरों के स्वास्थ्य पर घातक प्रभाव नही पड़ता है।
3. कृषि उत्पादों का उत्पादन उच्च एवं टिकाऊ बनाये रखने में सहायक है।
4. कृषि उत्पादन की लागत को कम एवं मृदा स्वास्थ्य में सुधार भी करते है।
5. छोटे लाभों के लिए प्राकृतिक स्त्रोतो की उचित उपयोगिता सुनिश्चित एवं भविष्य के लिए उनकों संरक्षित करते है।
6. यह न केवल पशुओं एवं मशीनों की ऊर्जा बचाते है बल्कि फसल के खराब होने के खतरे को कम करते हैं।
7. मृदा की भौतिक गुण जैसे मृदा को दानेदार, भूरभूरी, मृदा रन्ध्रावकाश, मृदा वायु अच्छी, जड़ मृदा में आसानी से प्रवेश तथा जल धारण क्षमता में सुधार कर देते है।
8. मृदा के रासायनिक गुण को सुधारते है जैसे मृदा पोषक तत्वों की आपूर्ति एवं धारणशक्ति तथा रासायनिक क्रियाओं को प्रोत्साहित कर पौधे के लिए उपयोगी बनाते है।
9. भूमि की जुताई में कमी करतें हैं।
10. एकीकृत कृषि प्रणाली को समन्यवित करतें है।

इनके अतिरिक्त जैविक खेती द्वारा उत्पादित उत्पाद गुण में टिकाऊ तथा अच्छे होते है। जैसे आकार में बड़ा, अच्छा दिखना, अच्छा स्वाद एवं सुगन्ध तथा जानवरों से उत्पादित उत्पाद अच्छा होता है क्योकि वे जैविक रूप से उत्पादित चारा तथा दाना खाते है। जहाँ जैविक खेती अपनायी जाती है वहाँ का भू–जल विषाक्त रसायनों से मुक्त होता है।

भारत में जैविक खेती की बाधाएँ

- भारत में बहुत सी संस्था है जो जैविक सब्जियों, फलों, बागवानी फसलों, मसालों एवं चाय का निर्यात नीदरलैण्ड तथा जर्मनी में करते है। किसान अक्सर बड़े निर्यातकों से जुड़े होते है जो इनके उत्पाद की खरीद एवं उनकी प्रमाणीकरण को लेकर परेशान करते है जिससे छोटे तथा सीमान्त किसान इससे बहुत दुःखी होते है।
- जैविक उत्पादों के लिए खरीददार न होना मुख्य कारण है।
- लोगो के मध्य जैविक उत्पादों की जानकारी न होने से इनके उत्पादों को बेचने में बाधा आती है।
- जैविक उत्पादों का मूल्य अधिक होने से इनकों केवल श्रेष्ठ जनगण एवं विदेशी लोग खरीदने की क्षमता रखते है।
- अधिकतर देशों में कृषि क्षेत्र के जैविक उत्पादों का बाजार लगभग कम एवं औसत दर्जे में है।

भारत में जैविक उत्पादों के उत्पादन एवं व्यापार के लिए प्रोत्साहन

जैविक खेती के उत्पादों को प्रोत्साहित एवं निर्यात करने के लिए वाणिज्य एवं औद्योगिक मंत्रालय के वाणिज्य विभाग, नई दिल्ली पहले से ही ''राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम'' को मई 2001 में प्रारम्भ किया जा चुका है। इस कार्यक्रम के तहत, वाणिज्य मंत्रालयों जैविक खेती को निर्यात के उद्देश्यों से इसे प्रोत्साहित एवं इनके संचालन पद्धति को स्थापित किया। जैसे जैविक खेती के मानक को निर्धारित करना तथा प्रमाणीकरण एवं निरीक्षण का अधिकार प्राप्त है। इस समय ऐपेडा (APEDA) तथा पाँच व्यावसायिक बोर्ड एवं चार प्रमाणीकरण संस्थाओं को मान्यता प्रदान की गयी है।

कृषि मंत्रालय के कृषि एवं सहकारिता विभाग ने अपनी दसवीं पंचवर्षीय योजना सें ही जैविक खेती को विशेष स्थान दिया है। इस योजना के अन्तर्गत जैविक खेती के प्रोत्साहन एवं इनके मानकों को निर्धारित किया गया तथा इनके विस्तार के लिए छोटे एवं सीमान्त किसानों की आवश्यकताओं की पूर्ति किया जाना है और साथ ही साथ वाणिज्य मंत्रालय एवं इनकी संस्था निर्यात की दृष्टि से लगातार प्रोत्साहित कर रही है।

भारत में जैविक उत्पादों के उत्पादन के लिए संचालित व्यवस्था

उत्पादकों को जैविक खेती को अपनाने के लिए निम्नलिखित क्रम अपनाने की आवश्यकता है जो प्रमाणीकरण संस्था द्वारा प्रमाणित एवं निरिक्षित है। भारत सरकार एवं राज्य सरकार द्वारा इसको प्रारम्भ करने के लिए निम्नलिखित प्रयास किया गया है।

1. जैविक खेती के लिए किसानों का समूह बनाना।
2. जिला स्तर पर इन समूहों का पंजीकरण करना।
3. व्यक्तिगत फार्म/किसानों को जैविक खेती से सम्बन्धित दस्तावेज देना।
4. कृषि विज्ञान केन्द्र, राज्य कृषि विश्वविद्यालयों, एग्री–क्लीनिक, निजी संस्थाओं एवं केन्द्रीय संस्थाओं द्वारा किसानों को हर तरह की सेवायें उपलब्ध कराना।
5. कुल 6 संस्थाएँ जैसे कृषि एवं खाद्य उत्पाद प्रसंस्करण विकास प्राधिकरण (ऐपेडा), कॉफी बोर्ड, मसालें बोर्ड, चाय बोर्ड, नारियल विकास बोर्ड, कोको एवं काजू बोर्ड, को प्रामाणीकरण एवं निरीक्षण का अधिकार वाणिज्य मंत्रालय द्वारा प्राप्त है।
6. वर्तमान समय में ऐपेडा के अन्तर्गत केवल 4 प्रमाणीकृत संस्थाओं को प्रमाणीकरण एवं निरीक्षण का अधिकार प्राप्त है जिनके नाम इस्टिट्यूट ऑफ मार्केटोलोजी (आई.एम.ओ.), बंगलौर; एस.के.ए.एल. इण्डिया, बंगलौर; ई.सी.ओ.सी.ई.आर.टी. इन्टरनेशनल, औरंगाबाद; एस.जी.एस. इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड, गुड़गॉव है।
7. समय–समय पर इन जैविक प्रक्षेत्रों का इन संस्थाओं के द्वारा नियुक्त व्यक्तियों से मृदा, जल एवं जैविक निवेशो आदि नमूनों से प्रयोगशाला में जैविक खेती के मानको का निरिक्षण करना।

अधिक जानकारी के लिए अपने स्थानीय कृषि विज्ञान केन्द्र, राज्य कृषि विश्वविद्यालय, राज्य कृषि विभाग, निजी संस्थाओं, केन्द्रिय संस्थाओं एवं साथ ही साथ इसकी जानकारी भारत के वाणिज्य एवं ओद्यौगिक मंत्रालय तथा कृषि एवं सहकारिता मंत्रालय की वेबसाइट से भी प्राप्त की जा सकती है।

''पत्रिका में प्रकाशन हेतु लेखकों के लिए दिशा-निर्देश''

भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना (पंजाब) द्वारा हिंदी भाषा में वार्षिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया गया है जिसमें सभी रचनाएँ जैसे आलेख, कहानियां, कवितायेँ इत्यादि प्रकाशित की जाती है।

1. पत्रिका में प्रकाशन के लिये लेखकगण कृषि एवं कृषि सम्बंधित -आर्थिक, -सामाजिक, विषयों पर आलेख भेज सकते है।
2. आलेख के लिए निम्नलिखित दिशा निर्देश हैः

क. आलेख में सामग्री को इस क्रम में व्यस्थित करेंः शीर्षक, लेखकों के नाम व पते, संवादी लेखक का ई-मेल, परिचय, परिचर्चा, निष्कर्ष/सारांश, आभार (यदि आवश्यक हो तो), एवं सन्दर्भ।

ख. परिचयः परिचय में लगभग 250-300 शब्द होने चाहिये तथा इसमें विषय की सामान्य जानकारी के साथ इसके महत्त्व तथा उपयोग के बारे में लिखें।

ग. परिचर्चाः इस भाग में लगभग 1500-2000 शब्द होने चाहिये, जिसमें सारणी, ग्राफ इत्यादि सम्मिलित है।

घ. निष्कर्षः इस भाग में लगभग 100-150 शब्द होने चाहिए, तथा साथ ही विषय-वस्तु का भावी परिपेक्ष भी सम्मिलित हो।

ङ. सन्दर्भः इस सूची में किसी भी सन्दर्भ का अनुवाद करके ना लिखें, अर्थात संदर्भो को उनकी मूल भाषा में ही रहने दें। यदि सन्दर्भ हिंदी व अंग्रेजी दोनों भाषाओँ के हो तो पहले हिंदी वाले सन्दर्भ लिखें तथा इन्हें हिंदी वर्णमाला के अनुसार, तथा बाद में अंग्रेजी वाले सन्दर्भ अंग्रेजी वर्णमाला के अनुसार सूचीबद्ध करें।

च. सारणी तथा चित्रः सारणियों तथा चित्रों को उनके शीर्षक के साथ आलेख में क्रमांकित करके यथास्थान पर सम्मिलित करें तथा पाठय में उल्लिखित करें।

3. आलेख किसी अन्य स्रोत द्वारा पहले प्रकाशित नहीं होना चाहिए तथा ना ही अन्य भाषा में प्रकाशित आलेख का अनुवाद होना चाहिये।
4. इस पत्रिका में प्रकाशन के लिए लघु नोट, कवितायेँ तथा कहानियां भी भेज सकते है, बशर्ते ये रचनायें स्वयं द्वारा रचित होनी चाहिये।
5. आपकी रचनायें यूनिकोड फान्ट या कुण्डली फान्ट में टाइप करके भेजें, ताकि वो आसानी से किसी भी कंप्यूटर में पढी जा सके व सम्पादित की जा सके।
6. संपादन व सुधार का अंतिम अधिकार संपादकगण के पास सुरक्षित है।
7. प्रकाशन के लिए भेजी गयी रचनाओं पर अंतिम निर्णय प्रकाशक यानी निदेशक, भाकृअनुप- भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना (पंजाब) का रहेगा।
8. आलेखों में चित्र, ग्राफ, तथ्यों की सत्यता या नकल/असल, एवं कहानियों व कविताओं इत्यादि रचनाओं के लिए लेखक स्वयं जिम्मेदार होंगे।
9. लेखकगण अपनी रचनाएँ, krishichetna.iimr@gmail.com पर ईमेल द्वारा भेज सकते है।
10. पत्र व्यवहार के लिए पता।

निदेशक

भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान

पंजाब कृषि विश्वविद्यालय परिसर

लुधियाना- 141004 (पंजाब)

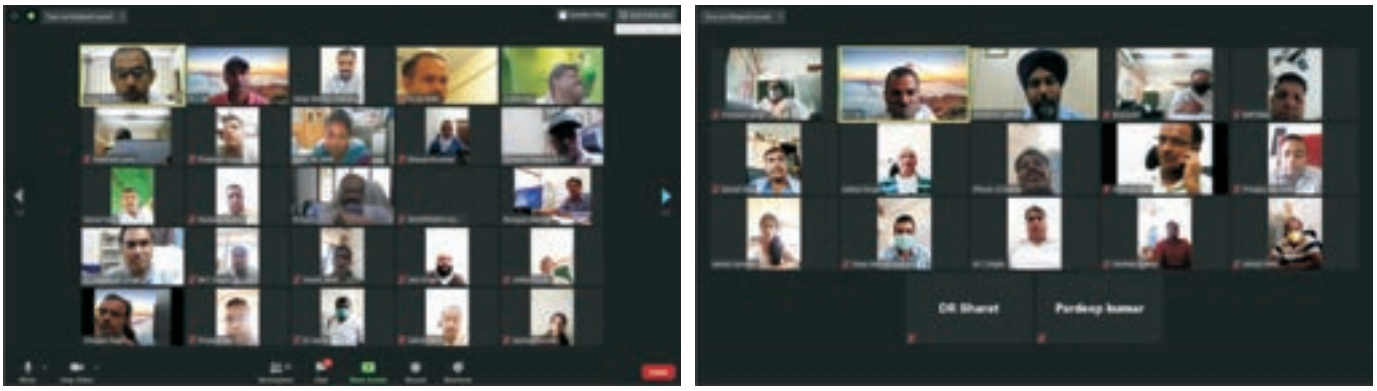

संस्थान द्वारा हिंदी के प्रचार-पसार के लिए ऑनलाईन गतिविधियां

संस्थान की हिंदी पत्रिका ''कृषि चेतना'' अंक-3 नराकास, लुधियाना द्वारा सम्मानित

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर

Agrisearch with a human touch